ग्रामीण तेल उद्योग

विषय-सूची

भाग—१

तिलहन उत्पादन और बाजार व्यवस्था

अध्याय—१

अध्याय—२

अध्याय—३

भाग–२

ग्रामीण तेल उद्योग की अर्थ व्यवस्था

अध्याय–४

ग्रामीण तेल उद्योग की अर्थ व्यवस्था

अध्याय–५

घानियों से आमदनी

भाग–३

प्राविधिक पहलू

अध्याय–६

घानियों की प्राविधिक किस्में

अध्याय–७

वर्धा घानी

अध्याय–८

घानी रचना के साधन

अध्याय–९

घानी निर्माण और प्रस्थापन

अध्याय–१०

तेल पेराई

अध्याय-१४

खादी और ग्रामोद्योग कमीशन की योजनाएं

तालिकाओं की सूची

तालिका

ग्रामीण तेल उद्योग

विषय-सूची

भाग–२

ग्रामीण तेल उद्योग की अर्थ व्यवस्था

अध्याय–४

अध्याय–५

भाग–३

प्राविधिक पहलू

अध्याय–६

अध्याय–७

वर्धा घानी

अध्याय–८

घानी रचना के साधन

अध्याय–९

घानी निर्माण और प्रस्थापना

अध्याय–१०

तेल पेराई

परिशिष्ट

प्रस्तावना

ग्रामीण तेल उद्योग इस बात का एक दृष्टांत प्रस्तुत करता है कि किस प्रकार सर्वोदय अर्थ-व्यवस्था पूंजी-प्रधान अर्थ-व्यवस्था से भिन्न है। एक में समाज की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कच्चे सामान का उपयोग सेवा और उपादेयता की दृष्टि से आयोजित किया जाता है, जबकि दूसरी में व्यक्तिगत लाभ प्रधान उद्देश्य बन जाता है। एक में उद्योग गांवों में प्रस्थापित रहते हैं और दूसरी में वे शहरी क्षेत्रों में केन्द्रित हो जाते हैं। फिर एक में दस्तकार और उपभोक्ता के बीच निकट और सीधा संबंध होता है, लेन-देन सरल होता है और इसमें भ्रष्टाचार का अवसर न्यूनतम रहता है। दूसरी में ऐसे मध्यस्थ लोगों की लंबी शृंखला रहती है, जो कच्चे माल और तैयार माल दोनों में हाथ डालते हैं और उत्पादक तथा उपभोक्ता के बीच जटिल और घुमावदार संबंध उपस्थित करते हैं तथा भ्रष्टाचार के लिए कहीं ज्यादा विस्तृत क्षेत्र प्रस्तुत करते हैं। एक में, मानव और पशु दोनों की सेवा का ध्येय होने के कारण तिलहन से तेल समुचित अनुपात में निकाला जाता है और खली स्थानीय पशुओं की खुराक के रूप में प्रयुक्त होती है, किन्तु दूसरी में मुनाफाखोरी की प्रवृत्ति मानव के स्वार्थ पर, पशुओं के हित को कुर्बान कर देती है। इसमें अधिकतम अनुपात में तेल निकालना लक्ष्य बन जाता है और खली के ढेर औद्योगिक संस्थानों को खाद के रूप में बेच दिये जाते हैं। तात्पर्य यह कि ग्रामीणों के हितार्थ ग्रामीण अर्थ-व्यवस्थान के लिए काम करती है और दूसरी व्यक्तिगत लाभ के लिए कार्य करती है तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था को दरिद्र बना देती है।

उद्देश्य ही किसी चीज की सुयोग्यता की कसौटी है। यहां उद्देश्य यदि ग्रामीणों और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के हित का है तो ग्रामीण घानी ही सुयोग्य है। यह उपभोक्ताओं को शुद्ध और ताजा तेल देती है, लाभदायक रोजगारी के जरिये यह लोगों की क्रय-शक्ति को कायम रखती है और यह शक्ति ही

अन्ततोगत्वा तैयार माल के लिए बाजार उपस्थित करती है। घानी तथा अन्य ग्रामोद्योगों के ह्रास के साथ ही साथ गावों की क्रय शक्ति भी क्षीण हो गयी है। इसी कारण उचित भाव पर भी घानी तेल के लिए पर्याप्त माग का अभाव है। क्रय-शक्ति के साथ बाजार भी नगरों को स्थानान्तरित हो गये हैं। अत गावों में उत्पादित घानी तेल के लिए भी नगरों में बाजार खोजना पड़ता है। यह स्थिति किसी भी तरह तेल मिलों की वृहत्तर सुयोग्यता का परिचायक नहीं है, बल्कि यह उस आर्थिक विन्यास का द्योतक है, जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था को क्षति पहुचाते हुए केन्द्रीकरण के पथ में काम कर रहा है। वह दशा उद्योगों के आरम्भ से ही नहीं उत्पन्न होती बल्कि व्यापार से भी उत्पन्न होती है। आज ग्रामीण व्यापार शहरी मनोवृत्ति का है और शहरों द्वारा नियन्त्रित होता है और कच्चे माल का निष्कासित करके तथा तैयार माल गावों में जमा करके यह दोहरे ढग से ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आहत करता है। इस प्रकार घानी उद्योग का विकास तभी हो सकता है, जब कि सारी अर्थव्यवस्था का रास्ता ही नया बनाया जाये यानी मुनाफाखोरी की प्रवृत्ति को सेवा की प्रवृत्ति में बदल दिया जाये। सेवा-प्रधान अर्थव्यवस्था वस्तुत बर्बादी उत्पन्न नहीं करती। यह केवल इसी बात पर जोर देती है कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था का हित अधिक होना चाहिए। इसके विपरीत मुनाफाखोरी की नीति इस उद्योग में कई अधिक माल की बर्बादी के लिए उत्तरदायी है। खेतों से कारखानों तक स्थानान्तरित करने और बार-बार माल की भरा-उठाई में माल की छीजन होती है और उसका स्तर भी गिरता है। तिल्ली और सरसों जैसे छोटे-छोटे बीज बोरियों से झर जाते हैं। मूगफली को छीलना पड़ता है, ताकि रेल के डिब्बे में वह कम जगह घेरे और भाड़ा कम लगे और उसे उसी दशा में गोदामों में वर्ष भर रखना पड़ता है और फफूदी आदि लगने से उसकी किस्म घटिया हो जाती है। ये दोनों बातें तेल की वास्तविक प्राप्ति में कमी कर देती हैं। मध्यस्थों की लबी शृखला के कारण मिल का तेल भी ग्रामीण क्षेत्रों में वास्तविक उपभोक्ता तक पहुचते-पहुचते कुछ दुर्गन्धित हो जाता है। इस प्रकार सामाजिक दृष्टिकोण से तेल मिले सक्षम नहीं हैं। लेकिन शक्ति की होड़ में साधन सम्पन्न लोग साधन-हीनों को व्यथित करते हुए उद्योग को दलित कर रहे हैं।

इस तरह शक्ति की खींच-तान में घानिया अपनी जगह पर कायम नहीं

रह सकीं । उनकी संख्या में बहुत कमी हो गयी है और फलस्वरूप उनकी उत्पादन क्षमता में भी इस क्षमता को बढ़ाना ही इस उद्योग को विकसित करने में मुख्य समस्या है । पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत तेलियों को आर्थिक सहायता देकर, इस बात का प्रयास किया जा रहा है, ताकि घानियों की निष्क्रिय क्षमता का उपभोग किया जा सके । फिर भी अनुभव से ज्ञात हुआ है कि वर्तमान घानियों की जगह उन्नत घानियां लगाना अवश्य ही एक धीमी प्रणाली है । तेलियों का पहले उनकी घानियों के अधिक उपयोग द्वारा पुनर्स्थापित करने की आवश्यकता है और तब फिर उन्हें उन्नत घानियों के प्रयोग में लगाना चाहिए । इसलिए मौजूदा घानियों के बहत्तर उपयोग के लिए सहायक क्रियाशीलताओं का आयोजन किया जा रहा है । प्रमाणीकरण की एक व्यवस्था के जरिये उपभोक्ताओं को घानी तेल की विशुद्धता का विश्वास कराया जाता है । इससे घानी तेल की मांग बढ़ जाती है । ग्राम संकल्प के आयोजन द्वारा ग्रामवासियों को आत्मनिर्भरता के लिए अपना तिलहन संचित कर रखने के लिए प्रेरित किया जाता है । ये दोनों युक्तियां घानी उद्योग को बहुत प्रोत्साहन देनेवाली सिद्ध हो रही हैं ।

यदि सहकारिता के आधार पर तेल उद्योग का गठन किया जाये, तो उसका भविष्य उज्ज्वल है । इसीलिए योजना के अंतर्गत आर्थिक सहायता की प्राप्ति में सहकारी संगठन पर जोर दिया जाता है । तेलियों ने भी इस व्यवस्था का स्वागत किया है । अब तक तेलियों की लगभग १७०० प्राथमिक सहकारी समितियां बन चुकी हैं और कुछ जिलास्तरीय तथा राज्यस्तरीय संघ भी हैं । यदि प्रगति की यह रफ्तार कायम रही, तो वस्तुतः दस वर्ष में यह सम्पूर्ण उद्योग, जिसके अंतर्गत ३ लाख घानियां आती हैं, सहकारिता के क्षेत्र में लाया जा सकता है । आज तेली नहीं, बल्कि दूसरे लोग इस उद्योग का गठन कर रहे हैं । यदि चतुर युवा तेलियों को क्षेत्र-गठन का कार्यभार सम्भालने के लिए प्रशिक्षित किया जाय, तो सहकारी समितियों के गठन में शीघ्रता हो सकती है । उन्हें केवल तेल पेरने की प्रणाली का प्रशिक्षण ही नहीं, बल्कि तेल पर आधारित अन्य सह-उद्योगों का प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए, ताकि तेल पेराई के काम में किफायत हो सके । उन्हें संगठन कार्य की विधियों का प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए । तेल पेराई और तेल उद्योग में लगे इस प्रकार

तेलकार दूसरे तेलकारों के लिए आदर्श उपस्थित कर सकते हैं और उद्योग में सगठनात्मक शक्ति का आविर्भाव कर सकते हैं। ग्रामीण तेल उद्योग के विकास का यह दूसरा चरण है।

प्रस्तुत पुस्तक 'तेल–पेराई' (आयल एक्सट्रैक्शन) शीर्षक उस पुस्तक का बृहत्तर और सशोधित सस्करण है, जो सन् १९४७ में वर्धा के अखिल भारत ग्रामोद्योग द्वारा प्रकाशित की गयी थी। उन्नत घानी के निर्माण और वर्धा घानी के नवीनतम रूप को प्रतिष्ठित करने के लिए आवश्यक सुधारों के सबध में प्राविधिक पहलुओंवाले अध्याय इसमें बनाये रखे गये हैं। लेकिन तिलहनों और तेल के उत्पादन और विक्रय से सबधित तथ्याक आदि के कुछ नये अनुभाग इसमें जोड़े गये हैं। खादी ग्रामोद्योग कमीशन के लिए ग्रामीण तेल उद्योग योजना कार्यान्वित करने में प्राप्त हुए अनुभवों का भी इसमें समावेश किया गया है। वस्तुत योजना के कार्यकर्ताओं के मार्गदर्शन हेतु अब इसे तैयार किया गया है।

यहा मैं सधन्यवाद उस सहायता का आभार स्वीकार करता हू, जो योजना आयोग के श्री के० पी० परमेश्वरन् और श्री एम० पी० धर ने ऊपर सकेतित अधिकांश तथ्याकों को प्राप्त करने में प्रदान की है। अपने सहकर्मी श्री वी० एन० वेंकूमल्ला के प्रति, इन तथ्याकों को समुचित रूप से प्रस्तुत करने और दूसरे सहकर्मी श्री वी० एस० मूर्ति के प्रति घानी के नवीनतम रूपों के रेखा–चित्र अकित करने और सह उद्योगों के सबध में सूचना एकत्रित करने के लिए आभारी हू।

नयी दिल्ली
२८–१०–५८

—झवेरभाई पटेल

भाग १

तिलहन उत्पादन और बाजार व्यवस्था

अध्याय १

तिलहन उत्पादन

संसार में तिलहन उत्पादन में भारत का दूसरा स्थान है। मूंगफली के उत्पादन में इसका तीसरा स्थान है तथा अण्डी और तिल के उत्पादन में चौथा। इसके अलावा अन्य प्रकार के तिलहनों का भी काफी उत्पादन होता है।

खेत और उत्पादन

संसार में तिलहन उत्पादन में सबसे अधिक जमीन भारत में ही लगी है, पर उत्पादन में इसका स्थान अमेरिका के बाद आता है। (तालिका-१)

पिछली ९ शताब्दियों से भारत में तिलहन की खेती बढ़ती गयी और वह भी खास कर मूंगफली की खेती। तालिका-२ से प्रकट है कि सन् १९२०-२१ से सन् १९३९-४० के बीच की अवधि में तिलहन उत्पादन में लगी भूमि १६६ ३ लाख एकड़ से बढ़कर २३३ ९ लाख एकड़ हो गयी और उत्पादन बढ़कर ३० ६ लाख टन से बढ़कर ४९ २ लाख टन हो गया अर्थात् तिलहन खेत में ३९ प्रतिशत बढ़ती हुई और उत्पादन में करीब ६० प्रतिशत। फिर भी ऐसा लगता है कि हाल के वर्षों में जमीन के अनुसार उत्पादन नहीं हुआ। सन् १९५४-५५ में विभिन्न फसलों में सन् १९५५-५६ के मुकाबले १ करोड़ टन की वृद्धि हुई, जबकि ३० लाख एकड़ कम भूमि में खेती हुई। उसी साल तिलहन की फसल में सिर्फ ५० लाख टन की वृद्धि हुई, जबकि पिछले वर्ष से २१ ७ एकड़ ज्यादा जमीन में खेती की गयी थी। इसके लिए दो मुख्य कारण बताये गये हैं। तिलहन की खेती में बारिश की जरूरत होती है। देश के कुछ भागों में खराब मौसम और मानसून के कारण फसल पर असर पड़ा। फिर उत्पादन भी कम होता जा रहा है।

भारत में मुख्य तिलहन उत्पादक क्षेत्र हैं—उत्तर प्रदेश, हैदराबाद, बम्बई,

आंध्र, मद्रास और मध्य प्रदेश। तिलहन की खेती में, जो करीब ३०० लाख एकड़ जमीन लगी है, उनमें से उत्तर प्रदेश में ५८ लाख, हैदराबाद में ४३ लाख, बम्बई में ३२ लाख एकड़ जमीन है। उन राज्यों में, जिनमें कि विभिन्न प्रकार के तिलहनों का उत्पादन होता है, उत्तर प्रदेश में ९,८७,००० टन तिलहन पैदा होता है, जो और राज्यों की पैदावार से अधिक है। इसके बाद तिलहन की अधिक पैदावार होती है हैदराबाद (८,३८,००० टन), मद्रास (८,२८,००० टन), आंध्र (७,५९,००० टन) तथा बम्बई (७,३४,००० टन) में, जैसा कि तालिका—३ में सन १९५४–५५ की पैदावार के सम्बंध में दिखाया गया है। इस तालिका से यह भी ज्ञात होगा कि मद्रास में और राज्यों की अपेक्षा अधिक मूंगफली की पैदावार होती है। मद्रास में ७,३४,००० टन हैदराबाद में ७,२९,००० टन, आंध्र में ७,०७,००० टन और बम्बई में ६,४४,००० टन मूंगफली पैदा होती है। उत्तर प्रदेश में सरसों और राइ की पैदावार ५,९६,००० टन है, जो देश की कुल पैदावार की आध से अधिक है। तिल की पैदावार उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान में अधिक होती है। दोनों राज्यों में क्रमशः १,१६००० टन तथा १,०१,००० टन की पैदावार होती है।

भारत में पैदा होनेवाले तिलहन की किस्में

तिलहन की कई किस्मों में से ५ किस्में मुख्य हैं—मूंगफली, तिल, राई और सरसों तीसी तथा अण्डी। भारत में इन्हीं की सर्वाधिक पैदावार होती है और इनके सम्बंध में कुछ आंकड़े भी उपलब्ध हैं। इन पांचों मुख्य किस्मों के अलावा कुछ अन्य तिलहन भी हैं, जैसे नाइगर, कर्डी, महुआ, बिनौले, खोपरा तथा नीम, जिनकी पैदावार यद्यपि कम नहीं होती है, फिर भी उनका अदाज ठीक–ठीक नहीं लगाया जा सकता है।

जिन तिलहनों की पैदावार अधिक होती है, उनमें मूंगफली का स्थान सर्वोच्च है, क्योंकि देश में सन् १९५४–५५ में जितना क्षेत्र तिलहन के अन्तर्गत था, उसका ४३ प्रतिशत मूंगफली के अन्तर्गत था, तिलहन की कुल पैदावार में मूंगफली की पैदावार ६५ प्रतिशत थी। मूंगफली के पश्चात् तिल की खेती अधिक क्षेत्रों में होती है। लेकिन पैदावार के लिहाज से सरसों तथा राइ का स्थान ही मूंगफली के पश्चात् आता है,

जिनका कि विवरण तालिका–४ में दिया गया है। तीसी की पैदावार क्षेत्र तथा उत्पादन दोनों की ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। अण्डी का स्थान देश में अन्य तिलहनों की पैदावार को देखते हुए महत्वपूर्ण नहीं है, यद्यपि क्षेत्रफल के लिहाज से संसार में इसको प्रथम और पैदावार में दूसरा स्थान प्राप्त है। ब्राजील में ही सबसे ज्यादा अण्डी पैदा होती है।

तिलहन की फसल का वितरण

जबकि तिलहन की पैदावार प्रत्येक बड़े राज्य में होती है, फिर भी कुछ किस्मों की पैदावार कुछ विशेष राज्यों में ही होती है, जैसा कि तालिका–३ में दिखाया गया है। मूगफली दक्षिण के अन्तर–द्वीपीय भाग में अधिक पैदा होती है और क्षेत्र तथा उत्पादन की दृष्टि से मूगफली का उत्पादन सर्वाधिक होता है, विशेषकर बम्बई, आंध्र तथा मद्रास में। तिल ज्यादातर उत्तर प्रदेश में और फिर हैदराबाद, राजस्थान और मध्य प्रदेश में पैदा होता है, जबकि सरसों तथा राई ज्यादातर उत्तर प्रदेश, बगाल और पजाब में पैदा होती है। तीसी की अधिक पैदावार मध्य प्रदेश, हैदराबाद और बिहार में होती है। हैदराबाद में अण्डी की पैदावार सबसे ज्यादा होती है। और यह पैदावार समस्त देश की अण्डी पैदावार की आधी है। तालिका–५ में, गत कुछ वर्षों की तिलहन–क्षेत्र के आधार पर, कुछ राज्यों की तिलहन सबंधी प्रमुखता दिखायी गयी है।

फसल बोने तथा काटने का समय

भारतवर्ष में तिलहन की खेती ज्यादातर वर्षा पर निर्भर रहती है और बहुत ही कम क्षेत्र की सिंचाई होती है। उदाहरण के लिए ऐसा अंदाज लगाया गया है कि मूगफली के अन्तर्गत जितना क्षेत्र है, उसके २ प्रतिशत से अधिक की सिंचाई नहीं होती है। तिलहन विभिन्न राज्यों में पैदा होता है और इसकी शुद्ध फसल तथा मिश्रित दोनों ही किस्म की फसलें होती हैं, यद्यपि एक का क्षेत्र एक राज्य में दूसरे राज्य के क्षेत्र से भिन्न होता है। लगभग ५४ प्रतिशत तिल की फसल शुद्ध होती है, विशेषकर पश्चिम बगाल, उड़ीसा और मद्रास में। इसी प्रकार बिहार तथा बगाल में अण्डी की फसल शुद्ध होती हैं। जहा तिलहन बतौर मिश्रित फसल में बोया जाता है, वहा इसकी बुवाई ज्वार, बाजरा या दालों के साथ ही, करीब–करीब सभी राज्यों में होती है। अण्डी

भी फसल कभी-कभी झाड़ियों, बधियों तथा मेड़ों के किनारे-किनारे भी बोई जाती है।

ज्यादातर तिल्हन की बुआई खरीफ की फसल में ही हो जाती है, हालांकि रबी की फसल में भी तिल्हन की पैदावार होती है। जहा कहीं, की सिंचाई की सुविधाए विद्यमान होती हैं, कुछ तिल्हन गरमी के मौसम में भी बोये जाते हैं, जैसा कि मुगफली मद्रास में फरवरी मार्च में बोयी जाती है। बुआई का समय राज्यवार ही भिन्न नहीं होता है, बल्कि तिल्हन की किस्मों के लिहाज से भी बुआई का मौसम भिन्न हो जाता है।

१ मूगफली —मूगफली की बुआई मई में आरम्भ हो जाती है और अगस्त तक जारी रहती है और इस फसल की कटाई सितम्बर से जनवरी तक होती है। ज्यादातर फसल जून-जुलाई में बोयी जाती है और नवम्बर-दिसम्बर में काटी जाती है। मद्रास में सिंचाई की फसल फरवरी-मार्च में बोयी जाती है और मई से जुलाई तक काटी जाती है।

२ तिल — इसकी फसल खरीफ में मई से अगस्त तक और जनवरी से फरवरी तक रबी की फसल के साथ बोयी जाती है। पहली फसल अगस्त तथा दिसम्बर के बीच काटी जाती है, जब कि बादवाली फरवरी तथा मई में काटी जाती है। फसल तयार होने में ८० से १५० दिन तक लगते हैं (३ ½ से ४ महीने खरीफ में तथा लगभग ६ महीने रबी में)। फसल उसी समय काटी जाती है, जबकि फली पीली पड़ जाती है।

३ राई तथा सरसों —तोरिया थोड़े दिनों म उगनेवाली फसल है। यह अगस्त तथा सितम्बर में बोयी जाती है और दिसम्बर-जनवरी में काटी जाती है, जबकि सरसों तथा राइ और तारामिया साधारणत अक्तूबर तथा नवम्बर में बोयी जाती है और फरवरी-अप्रैल तक काट ली जाती है।

४ तीसी — इसकी फसल अगस्त-नवम्बर तक बोयी जाती है और ज्यादातर सितम्बर में बोई जाती है। साधारणत फसल की कटाई जनवरी से अप्रैल तक होती है लेकिन फरवरी-मार्च में भी कटाई होती है। तीसी रबी की फसल में पैदा होती है और खेत में ५ से ५½ महीने तक खड़ी रहती है।

५ अण्डी :– बहुत से राज्यों में अण्डी की फसल के साथ ही जून से अगस्त तक बोयी जाती है और नवम्बर तथा मार्च के मध्य काट ली जाती है। लेकिन ज्यादातर फसल दिसम्बर– फरवरी में ही काटी जाती है। रबी की फसल बम्बई तथा बिहार आदि राज्यों में अप्रैल–मई में काटी जाती है। मगर मैसूर में इसकी बुआई अप्रैल में ही शुरू जाती है और कटाई अक्तूबर–नवम्बर में की जाती है।

विभिन्न किस्मों के तिलहन

आकार–प्रकार तथा तेल के प्रतिशत्य आदि के लिहाज से भारत में कई प्रकार के तिलहनों की पैदावार होती है।

मूंगफली

मूंगफली की किस्में केवल आकार–प्रकार, मोटाई और तेल के अनुपात पर ही नहीं, बल्कि छिलके की मोटाई और उसके वजन, फलियों के दानों के आकार और उनकी संख्या तथा उनके रंग पर भी निर्भर होती है। व्यवसायी मूंगफली की चार खास किस्में परिचित हैं –

अ) कारोमंडल –छोटी फली और मोटा छिलका। बड़ा दाना। शक्ल में अंडाकार, हल्के लाल रंग के छिलके से ढका हुआ, जो कालान्तर में श्यामल हो जाता है। तेल का अनुपात पीनट्स के मुकाबले कम होता है, लेकिन बोल्ड की अपेक्षा प्राय: अधिक होता है।

आ) बोल्ड – इसे बिग जापान भी कहते हैं। इसका छिलका कारोमंडल के बनिस्बत मोटा होता है और दाने बड़े तथा सुगठित आकृति के होते हैं। दाने अंडाकार और कारोमंडल से बड़े होते हैं और उस पर हल्का लाल रंग का छिलका चढ़ा होता है, जो जल्दी ही श्याम वर्ण हो जाता है।

इ) पीनट्स –इसे स्पैनिश पीनट्स या नेटाल कहते हैं। दाने कारोमंडल और बोल्ड से छोटे होते हैं। गिरी गोल और छोटी तथा हल्के लाल रंग के छिलके से ढकी होती हैं। छिलका आसानी से अलग हो जाता है। इसका रंग समय बीतने पर श्यामल हो जाता है। इसमें तेल का अनुपात सर्वाधिक होता है।

इ) लाल दाना (रेड नाटाल)—इसे बम्बई में लाल बोरियो; मध्य प्रदेश में लाल दाना और मद्रास में पोलाची लाल और कालीकट लाल भी कहते हैं। गिरी गोल होती है और रंग श्यामल लाल होता है। इसमें पीनट्स की अपेक्षा तेल का अनुपात कम होता है।

कुछ छोटी किस्में खानदेश, सुपीरियर बोल्ड, करड, वर्जीना, ए० के० १० और जे० ए० के० ८ हैं।

विभिन्न किस्म की मूंगफली के क्षेत्र

भूमि की किस्म तथा वर्षा की स्थिति के अनुसार विभिन्न किस्म की मूंगफली विभिन्न क्षेत्रों में पैदा की जाती है। नीचे खास क्षेत्रों का जिक्र है—

अ) मद्रास—लगभग ८० प्रतिशत क्षेत्र में कारोमंडल पैदा की जाती है। पीनट्स भी उगायी जाती है।

आ) बम्बई—चारों ही किस्में यहां बोयी जाती हैं। लेकिन राज्य के कुल मूंगफली क्षेत्र के आधे में पीनट्स लगती है।

इ) मध्य प्रदेश—लाल नाटाल (छोटा जापान) लगभग २२ प्रतिशत और पीनट्स राज्य के लगभग आधे मूंगफली-क्षेत्र में पैदा होता है।

ई) हैदराबाद—बोल्ड लगभग आधे से अधिक मूंगफली क्षेत्र में होता है और पीनट्स ४० प्रतिशत से अधिक में। कारोमंडल भी पैदा होता है।

उ) मैसूर—खास तौर पर काफी परिणाम में कारोमंडल और लाल नाटाल उगायी जाती है।

ऊ) सौराष्ट्र—क्षेत्र के लगभग ८० प्रतिशत भाग में बोल्ड पैदा होता है और लगभग १० प्रतिशत में पीनट्स होती है।

देश की समग्र रूप से स्थिति यह है कि अनुमानतः कुल मूंगफली के उत्पादन में ५१.४ प्रतिशत कारोमंडल, २३.२ प्रतिशत पीनट्स, १७.१ प्रतिशत बोल्ड, ३.४ प्रतिशत लाल नाटाल और ४.९ प्रतिशत दूसरी किस्में होती हैं।

तिल

इसकी दो विशिष्ट किस्में हैं—सफेद और काली। सफेद अधिकांशत उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश में होती है और दूसरी किस्म प्रमुख रूप से पश्चिम बगाल और उड़ीसा में होती है। एक मिश्रित किस्म भी है, जो खास तौर पर दक्षिण में मद्रास, मैसूर और हैदराबाद में पैदा होती है। इसका रग अरुण से गुलाबी तक या भूरे से सफेद तक हो जाता है। औसतन भारत में ३२ प्रतिशत सफेद, १५ प्रतिशत काली और ५३ प्रतिशत मिश्रित किस्में उगायी जाती हैं। दानों का वर्गीकरण बोल्ड और छोटी किस्म में भी किया जा सकता है, जो कि उनमें तेल के अनुपात के अनुसार है। यह अनुपात दाने के वजन के ४० और ५१ प्रतिशत के बीच होता है।

राई और सरसों

व्यवसायी तीन खास किस्मों से परिचित हैं—सरसों और तोरिया तथा राइ। दो मामूली किस्में भी प्राय बनारसी या असली राई तथा पहाड़ी राई कही जाती हैं। इन सभी किस्मों के आकार, रग और उनमें तेल के अनुपात में काफी अतर पाया जाता है। मसलन सरसों बड़ा होता है और उसमें राई या तोरिया की बनिस्बत तेल अधिक होता है। इन खास किस्मों में से सभी की उप-किस्में होती हैं, जिनमें बहुत थोड़ा अन्तर होता है और इसलिए केवल उनकी नैसर्गिक विशेषताएं देखकर उनकी किस्म पहचान लेना आसान नहीं होता। इस काम के लिए खुर्दबीन से निरीक्षण करना जरूरी होता है। विभिन्न किस्मों में तेल का अनुपात आयोडीन तथा सारभूत तेल के प्रतिशत के अनुसार विभिन्न होता है।

अलसी

भारत में अलसी की लगभग २६ विभिन्न किस्में पायी जाती हैं। उनके रग, आकार तथा वानस्पतिक विशेषताओं म अन्तर होता है। लेकिन व्यवसायियों को दो खास किस्मों से काम पड़ता है। बड़ी भूरी किस्म और छोटी भूरी किस्म। छोटी किस्म उत्तरी उत्तर प्रदेश, उत्तरी बिहार, मध्य प्रदेश, मध्य भारत, राजस्थान, उड़ीसा और बगाल में पैदा होती है। बड़ी किस्म दक्षिणी उत्तर प्रदेश, उत्तरी बिहार, हैदराबाद और बम्बई में होती है। समग्र रूप से फसल को देखें, तो छोटी किस्में कुल उत्पादन का ५१ प्रतिशत और बड़ी किस्म ३९ प्रतिशत होती है और

आ) करडी – करडी मुख्य रूप में मद्रास और बम्बई में उगायी जाती है तथा गेहू और चने की फसल के साथ मिश्रित रूप में बोयी जाती है। इसकी वार्षिक उपज कोई ७०,००० टन है। इसके पौधे से तेल तथा रंग प्राप्त होता है। करडी के बीजों से २५ से ३० प्रतिशत मात्रा में तेल मिलता है तथा इसका उपयोग खाने के काम में और मोमबत्ती बनाने के काम में होता है। इसके बीजों तथा तेल का कुछ मात्रा में निर्यात किया जाता है।

इ) नीम – नीम भारत में सभी जगह होता है, पर मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश, मद्रास, खानदेश, बरार, राजस्थान, महाराष्ट्र, मध्य भारत और पंजाब में पाया जाता है। नीम का वार्षिक उत्पादन कोई २५ हजार टन के करीब आंका गया है। नीम की बाबत में मुख्य समस्या है—उसके बीजों को व्यवस्थित रूप में एकत्रित करने की तथा उन्हें पेरने की। इसके बीजों से कोई ४० से ४५ प्रतिशत तेल प्राप्त होता है। इसके तेल का उपयोग जलाने, प्रसाधन, दवाइयों, चिकनाहट तथा साबुन उद्योग के लिए होता है।

ई) महुआ – महुआ पेड़ पर पैदा होनेवाला तिलहन है, जो सौराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, मध्य प्रदेश, उड़ीसा आदि के जंगलों में होते हैं। इसका उत्पादन अनुमानतः ४१,७०० टन प्रति वर्ष होता है। इसके फल की गिरी से तेल निकाला जाता है जो ३३ से ४३ प्रतिशत के बीच होता है। इसका तेल सामान्य तापक्रम में जमा रहता है तथा इसका सबसे ज्यादा महत्व साबुन बनाने में होता है, जिसके लिए नारियल तेल का सबसे ज्यादा महत्व है। पिछड़े हुए भागों में इसका उपयोग खाने के लिए भी किया जाता है।

उ) बिनौला – भारत में यह तिलहन काफी मात्रा में होता है। देश में कपास के उत्पादन के साथ–साथ इस तिलहन ने भी प्रगति की है। सन् १९५२–५३ में यह ११,१९,००० टन पैदा हुआ था, जबकि सन् १९५४–५५ में १५,०४,००० टन हुआ। इस तिलहन का काफी कम भाग पेरा जाता है। योजना आयोग के [illegible] सन् १९५५–५६ के दौरान में केवल [illegible],००० टन बिनौले का तेल उ[illegible]न किया गया।

सभी गौण तिल[illegible] की म[illegible] अलग–अलग प्राप्य

नहीं है किन्तु अनुमान है कि इसका वार्षिक उत्पादन कोई २,१६,००० टन होता है। (देखिये 'भारत में तिलहन'-पृष्ठ ७४)। इसके अलावा वनस्पति नारियल तेल के उत्पादन की राशि १,३१,००० टन आंकी गयी है।

तिलहन उत्पादन में वृद्धि

वनस्पतिक तिलहनों के उत्पादन में वृद्धि करने के इरादे से योजना आयोग ने जो पञ्चवर्षिक योजना बनायी थी, उसमें सन् १९४९-५० के उत्पादन स्तर में केवल ४ लाख टन की वृद्धि सन् १९५५-५६ के लिए निरूपित की गयी। इसके उत्पादन में वृद्धि को रोकने वाला जो सबसे बड़ा पहलू था, वह था—अन्य महत्वपूर्ण सह-फसलों के विस्तार को कोई हानि न पहुंचाना, जैसे कि खाद्यान्न और कपास। इसलिए यह बात कही गयी थी कि इसके उत्पादन में वृद्धि केवल सघन खेती द्वारा प्राप्त की जानी चाहिए। इस बारे में सौराष्ट्र, मद्रास आदि राज्यों में योजनाएं कार्यान्वित की गयीं तथा वहां पर कृषि सम्बंधी समस्याओं, जैसे बीज की मात्रा, फसल की अवधि, खाद डालना तथा बीमारी की रोकथाम के बारे में काफी प्रयोग किये गये। वहां पर समग्र रूप से इतना काम किया गया कि कार्यक्रम का लक्ष्य सन् १९५४-५५ में ही प्राप्त कर लिया गया।

चूंकि प्रथम योजना के अन्तर्गत कार्यक्रम के सन्तोषजनक परिणाम निकले, इसलिए यह प्रस्तावित किया गया कि द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना के दौरान में प्रगति का अनुकरण किया जाये। उत्पादन क्षमता के विस्तार की दृष्टि से, फिर भी, वह गौण है। द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना के अन्तर्गत प्रमुख तिलहनों का उत्पादन ७० लाख टन तक बढ़ाने का निश्चय किया गया, जैसा कि नीचे दिखाया गया है —

मूंगफली	४७ ००	लाख टन
तिल्ली	६ ५१	,,
अल्सी	४ २८	,,
राई और सरसों	१० ६०	,,
एण्डी	१ ६१	,,
योग	७० ००	,,

ऊंचे स्तर के अच्छे बीजों के उत्पादन और वितरण की योजना चा
रहेगी तथा अच्छे बीजों को सघन स्तर पर लोकप्रिय बनाया जायेगा। अ
योजनाएं हैं—खाद और रसायनिक खादों का प्रयोग, कीटाणुओं पर नियंत्रण औ
अच्छी तथा नयी किस्में इजाद करने के लिए अनुसंधान। द्वितीय पंचवर्षीय योज
के अन्तगत कार्य सन् १९५६–५७ से चल रहा है।

अध्याय २

उपयोग

१ वानस्पतिक तेलों के उपयोग

प्राय देश के प्रत्येक भाग में ही तिलहन, तेल और खली का खाद्य के रूप में तथा औद्योगिक कामों में उपयोग होता है।

अ) **खाद्य उपयोग** – प्राय देश के सभी भागों में खासकर मध्य प्रदेश, पंजाब, बम्बई व आंध्र प्रदेश में, मूंगफली और तिल्ली को भूनकर या इनकी मिठाइयां, चटनी आदि बनाकर खाया जाता है। आंध्र में मसालों से युक्त तिल्ली के चूर्ण का बहुत प्रयोग होता है। साग-भाजी व अन्य प्रकार के स्वादिष्ट भोजन के लिए राई और सरसों का छौंक के रूप में उपयोग होता है। अधिकांश राज्यों में मूंगफली और तिल्ली के तेल का पाकशाला में उपयोग किया जाता है, जबकि उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार और पंजाब में अलसी और सरसों के तेल का भोजन तैयार करने के लिए बहुतायत से उपयोग किया जाता है। मध्य प्रदेश, विंध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा पंजाब और काश्मीर में अलसी के तेल का भी भोजन बनाने के लिए काफी प्रयोग होता है। एण्डी का तेल एक अच्छी जुलाब है।

मूंगफली और तिल्ली की खली प्राय सभी राज्यों में पशुओं के खाद्य के रूप में काम में लायी जाती है, जबकि उत्तर प्रदेश और पंजाब में सरसों और अलसी की खली का भी व्यवहार होता है। आंध्र, मद्रास और उड़ीसा जैसे अनेक राज्यों में अच्छी मूंगफली और तिल्ली की खली को मानव भोजन के रूप में भी व्यवहार में लाया जाता है।

आ) **औद्योगिक उपयोग** –सभी प्रमुख तेलों का औद्योगिक उपयोग, खासकर वनस्पति उत्पादन में होता है। मूंगफली के तेल का काफी मात्रा में और

तिल्ली तथा अलसी के तेल का अपने कुछ कम मात्रा में वनस्पति उत्पादित करने के लिए उपयोग किया जाता है। मूंगफली, तिल्ली और अलसी के तेल मे साबुन व अन्य प्रसाधन सामग्रियां उत्पादित की जाती हैं, जबकि पेंट और वार्निश सभी तेलों से किये जाते हैं। कुछ तेलों के विशेष उपयोगों में से खाद्य-यकृत तेल के उत्पादन में मूंगफली के तेल का और दवाइयां बनाने में तिल्ली व सरसों के तेल का नाम लिया जा सकता है। सरसों के पाउडर या लोशन चर्म को मुलायम बनानेवाली सामग्री के रूप में चेहरे और शरीर पर मलने के काम म प्रयोग होता है। अलसी के तेल का 'लिनोलियम' व क्रिकेट के बल्लों जैसी खेल-कूद की सामग्री में व्यवहार होता है। एण्डी के तेल का गाड़ियों व कोल्हुओं को चिकनाने के काम में उपयोग किया जाता है।

इ) अन्य उपयोग - नीची किस्म का मूंगफली और एण्डी का तेल दीप आदि जलाने के काम में लिया जाता है। उत्तर प्रदेश के कुछ भागों में एण्डी के बीजों को गुड़ और गन्ना बनाने के लिए गन्ने के रस को निमलीकृत करने के काम में लाया जाता है। अपेक्षाकृत सस्ते होने की वजह से मूंगफली और अलसी के तेलों का सिद्धान्त विहीन व्यवसायी मिलावट करने के काम में भी लेते हैं। मूंगफली के तेल का घी में मिलाने के लिए और अलसी के तेल का सरसों और तिल्ली के तेल म मिलाने के लिए उपयोग किया जाता है। सभी प्रकार की खली अच्छी खाद तो होती ही है।

तेलों के उपयोग की एक विशेष बात यह है कि जहां खाद्य उपयोगों के लिए मानक आदि के संबंध म कोई विशिष्टताएं निश्चित नहीं हैं, वहां उनके तेलों के गुण आदि की विशिष्टताएं हैं, जिसका औद्योगिक उपयोग होता है।

मांग के स्रोत

भारतीय तिलहनों और तेलों की मांग के दो मुख्य स्रोत हैं - (१) आन्तरिक और (२) बाह्य। आन्तरिक मांग में देश में बोआई करने, खाद्य उपयोग और औद्योगिक प्रयोजनों की मांग शामिल है, जबकि बाह्य स्रोतों में तिलहनों का आयात करने वाले देशों से होनेवाली मांग शामिल है।

आवश्यकताएं

अ) बीजारोपण के लिए - बोने के लिए बीज की आवश्यकता, उसकी

किस्म और उसके प्रकार के अनुसार घटती–बढ़ती है। यह कुल उत्पादन का १ ५ से लेकर ७ प्रतिशत तक हो सकता है। (देखिये 'बाजार व्यवस्था' अध्याय–३)

आ) **खाद्य उपयोग** – पोषण सलाहकार समिति के निश्चित स्तर के अनुसार एक प्रौढ़ को प्रतिदिन २ आंस चिकनाइ और तेल की आवश्यकता होती है। देश में समुचित राशि में दूध और दूध से बनी चीजों की अप्राप्यता होने से आवश्यक चिकनाइ की कमी वनस्पति तेलों द्वारा पूरी की जाती है। प्रति वयस्क २ औंस तेल से आज भारत को केवल खाने के लिए ७३ लाख टन तेल की आवश्यकता है। सन् १९६०–६१ तक यह राशि ८२ लाख टन की हो सकती है।

इ) **औद्योगिक उपयोग**

(१) **वनस्पति** – आजकाल वनस्पति उद्योग २,७० ००० टन उद्जनित चीजें बना रही हैं और इनके उत्पादन के लिए उसे २,५९,००० टन\ तेल की जरूरत होती है। द्वितीय पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सन् १९६०–६१ तक ४ लाख टन वनस्पति और उद्जनित तेलों के उत्पादन का अनुमान किया गया है, जिनके उत्पादन में ४,२०,००० टन तेल की आवश्यकता पड़ेगी।

(२) **साबुन** – सन् १९६०–६१ तक, आज के लगभग २ लाख टन के साबुन के उत्पादन को ३,००,००० लाख टन तक बढ़ाने का विचार किया गया है। साबुन म तेल की मात्रा के ६० प्रतिशत होने के आधार पर यह अनुमान लगाया गया है कि इस उत्पादन के लिए १,८०,००० टन तेल की जरूरत होगी।

(३) **रंगरोगन** –द्वितीय पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत ६०,००० टन रंग और रोगनों के उत्पादन का अन्दाज लगाया गया है और इसके लिए मुख्यत (अलसी के तेल) ५५,००० टन तेल की आवश्यकता होगी।

(४) **चिकनाई और विभिन्न आवश्यकताए** –चिकनाने के काम में लाने और प्रकाश के लिए जलाने में काम आने वाले वनस्पति तेलों (खासकर अरंडी के तेल) का अनुमान लगाना बहुत कठिन है, क्योंकि इस काम के लिए बदले में कुछ खनिज पदार्थ भी काम में लाये जाते हैं। सन् १९५३–५४ म चिकनाने के काम म आने वाले वनस्पति तेल की राशि लगभग ४,००० टन थी और यह आशा की जाती है कि सन् १९६०–६१ तक यह मांग १० हजार टन के करीब हो जायेगी।

है कि मूंगफली की खली का ५० प्रतिशत केवल पशुओं के खिलाने के काम में लाया जाता है। अलसी, तिल, गई और सरसों की खली भी पशुओं को खिलाने के काम में लायी जाती है, जबकि अरंडी, महुआ आदि की खली का इस्तेमाल खाद बनाने में किया जाता है, क्योंकि ये अखाद्य हैं।

तेल उपयोग की समस्या

वनस्पति तेल उद्योग की दो मुख्य समस्याएं हैं —

अ) तेल सप्लाई में वृद्धि और

आ) विभिन्न तेलों का उपयुक्त उपयोग।

अ) तेल सप्लाई में वृद्धि —

यद्यपि देश को तेल और चिकनाई की आवश्यकता की पूर्ति वनस्पति तेल से ही करनी होती है, किन्तु अभी ये स्रोत विभिन्न कारणों से अपर्याप्त हैं। पहला—वनस्पति तेल की कुल सप्लाई कोई/ज्यादा नहीं है। दूसरा—मूंगफली जैसे तेलों का का काफी हिस्सा निर्यात कर दिया जाता है। खाद्य और अखाद्य तेलों की सप्लाई इतनी तो बढ़ा ही देनी चाहिए, ताकि प्रति व्यक्ति को वनस्पति तेल अधिक मिल सके।

आ) विभिन्न तेलों का सदुपयोग —

वर्तमान उत्पादन का सही उपयोग न होने से भी वनस्पति तेल की प्राप्ति पर भी, जिसका उपयोग खाने के लिए होता है, असर पड़ता है।

लगभग एक लाख टन वनस्पति तेल का, जो अधिकांशतः खाद्य है, साबुन बनाने, रंग और रोगन बनाने जैसे उद्योगों में लग जाता है। इनके लिए अखाद्य तेल का भी उपयोग किया जा सकता है। दूसरी बात यह है कि वनस्पति तेल जैसे खाद्य उत्पादन में भी काफी मात्रा में खाद्य तेल बरबाद होते हुए देखा गया है। १०० टन वनस्पति (उद्जनित तेल) बनाने में मूल पदार्थ के रूप में १०० टन वनस्पति तेल उपयोग में लाया जाता है ताकि इसकी सारी सुविधाओं के पश्चात् १०० टन वनस्पति तेल प्राप्त किया जा सके। तीसरी बात यह है कि मिलों द्वारा अधिक

लम्बी अवधि तक खाद्य तेलों के रखने से जो दुर्गंध हो जाती है, उससे और अज्ञानी व्यापारियों द्वारा मिलावट देने पर इसकी किस्म खराब हो जाती है और खाद्य तेल मानव उपयोग के उपयुक्त नहीं रह जाते। इस प्रकार भी तेल की सप्लाई कम हो जाती है।

समस्याओं के हल

इन समस्याओं का हल, केवल उत्पादन के अभिनवीकरण और देश में उत्पादित विभिन्न प्रकार के तेलों के उपयोग से हो सकता है। ये दोनों निम्न प्रकार से सम्भव हैं।

प्रथमतः वनस्पति तेल के उत्पादन में पूर्णतया वृद्धि की जानी चाहिए। यह तिलहन की खेती और प्रति एकड़ उपज में वृद्धि कर की जानी चाहिए। जैसा कि अध्याय--१ में बताया गया है। बिनौले और नीम जैसे स्रोतों से तेल प्राप्त करने की कोशिश की जानी चाहिए। दूसरे खाद्य तेलों का उपयोग सिर्फ खाने के लिए किया जाना चाहिए और अखाद्य तेल का उपयोग साबुन बनाने जैसे औद्योगिक कार्यों के लिए। तीसरे जहां तक सम्भव हो, अखाद्य तेलों का ही निर्यात करना चाहिए, क्योंकि आयात करने वाले देश उनका उपयोग सिर्फ औद्योगिक कार्यों में करते हैं। चौथे यह कि वनस्पति उद्योग का पुनर्गठन किया जाना चाहिए, ताकि अमेरिका की तरह बिनौले का तेल भी उपयोग के काम आ सके और अखाद्य तेलों को औद्योगिक कार्य के लिए परिष्कृत किया जा सके। इससे खाद्य तेल और चिकनाई की प्राप्ति में वृद्धि होगी।

अध्याय ३

विषय

अ) व्यवसाय को प्रभावित करनेवाले तथ्य

भारत में तिल्हन-व्यवसाय निम्नलिखित बातों पर निर्भर रहता है –

१) तिल्हनों का परिमाणिक और स्तरीय उत्पादन,
२) बिक्री योग्य अतिरिक्त माल जो उपलब्ध हो,
३) तिल्हनों और उनसे उत्पादित माल की देश में मांग,
४) बाहरी मांग,
५) यातायात की उपलब्ध सुविधाएं,
६) एकत्र में व्यवहृत मालों के प्रति उपभोक्ता का झुकाव,
७) उत्पादकों की आर्थिक स्थिति,
८) बिचवानी एजेंसियां,
९) तिल्हनों और उनके उत्पादनों के मूल्यों में होता रहने वाला परिवर्तन,
१०) सरकार की व्यापार-नीति ।

(१) उत्पादन –तिल्हनों का परिमाणिक उत्पादन विभिन्न बातों जैसे बोई गयी भूमि के क्षेत्रफल तथा मिट्टी की हालत, बीज का किस्म और खादों, मौसमी दशाओं आदि पर निर्भर रहता है और उत्पादित तिल्हन में निहित तेल के अनुपात प्रकट होता है ।

(२) बिक्री योग्य अतिरिक्त उत्पादन –खेतिहर प्राय पैदावार का कुल भाग मजदूरी के रूप में देने, बीज के रूप में प्रयुक्त करने तथा उपभोग के लिए रख लेने हैं और केवल बचा हुआ माल ही बेचते हैं ।

(३) घरेलू मांग –उपयोगी अतिरिक्त माल की आवश्यकता खाद्य तेल

प्राप्त करने के लिए उसे पेरने या वार्निश, रंग, चिकनाई, साबुन और उद्जनित तेलों के उत्पादन में हो सकती है । द्वितीय विश्व युद्ध में यूरोपीय बाजारों म भारत का माल जाना बन्द हो जाने और पशुओं तथा मनुष्य के इस्तेमाल क लिए तथा औद्योगिक कामों में तेल और खली का उपयोग होने के कारण पिछले दशक में तिलहनों की आन्तरिक माग उल्लेखनीय रूप से बढ गयी है ।

(४) बाहरी माग – विदेशों में तिलहनों की माग, मुख्यत तेल और खली के खाने के लिए तथा या औद्योगिक कामों की माग पर निर्भर रहती है । सामान्य दशाओं में यह माग अनेक जटिल तत्वों पर निर्भर रहती है, जिनमें कुछ हैं—वनस्पति तेलों, खनिज तेलों और पशुओं की चर्बी की उपलब्ध मात्रा और उनके तुलनात्मक मूल्य तथा आयात करनेवाले देशों की क्रय-नीति ।

(५) यातायात – उत्पादक क्षेत्र अपने उत्पादन का कुछ भाग बीज खाद्य सामग्री या तिलहन के रूप में प्रयोग करने क लिए रख छोड़ते हैं और केवल बचे हुए माल को ही अन्य राज्यों के लिए अथवा विदेशों में निर्यात के लिए भेजते हैं। एक क्षेत्र से दूसरे मिल मजदूरों के सिर पर तथा बैल गाड़ी, लारी, रेल, मोटर या स्टीमर में ढोया जाता है। तिलहनों के मौसमी आवागमन और उस समय की यातायात सम्बन्धी कठिनाइयों से ही तिलहन व्यवसाय का परिणाम प्रभावित होता है ।

(६) उपभोक्ता की पसन्द – वानस्पतिक तेल विशुद्ध रूप से केवल खाद्य-सम्बन्धी और औद्योगिक उपयोग म ही नहीं प्रयुक्त होते, बल्कि महंगे तेलों क मिश्रण के लिए भी प्रयुक्त होते हैं । तेलों का उपयोग, जिसके लिए उसकी माग है और उसके एवज में इस्तेमाल होने वाली चीजों की उपलब्धि पर निर्भर रहता है ।

(७) उत्पादकों की आर्थिक स्थिति – अधिकाश किसान अच्छी कीमत मिलने की प्रतीक्षा में माल रोके रहने की स्थिति में नहीं होते, इसलिए फसल कटने के पश्चात् कुछ महीनों के भीतर ही उसका अधिकांश हिस्सा बेच दिया जाता है । कुछ तो ऐसे होते हैं कि बीज के लिए भी बचा नहीं सकते । उत्पादन का बड़ा भाग व्यापारियों और मिल-मालिकों के हाथ में आ जाता है और वे उत्पादक और उपभोक्ता का शोषण करते हैं ।

(८) मध्यस्थ एजेंसियाँ – जबकि लगभग ५० प्रतिशत तिलहन का व्यवसाय स्वयं उत्पादक द्वारा स्थानीय रूप से ही सम्पन्न होता है, शेष भाग ग्रामीण महाजनों, व्यापारियों, मिल-मालिकों और आयात करने वाले प्रतिष्ठानों के एजेन्टों द्वारा सभाला जाता है। प्राय मध्यस्थ एजेंसियाँ इतनी ज्यादा हो जाती हैं कि एकत्रीकरण और वितरण की लागतें चीज के उपभोक्ता-मूल्य से ७५ प्रतिशत तक ज्यादा हो जाती हैं।

(९) मूल्यों का उतार-चढ़ाव – तिलहन-व्यवसाय माल की मांग और उसके परिवहन पर निर्भर है। उत्पादन का अधिकांश फसल कटने के बाद शीघ्र ही बेच दिया जाता है। व्यापारी माल जमा रखते हैं और उसे समय तथा आवश्यकता के अनुसार निकालते हैं। फलस्वरूप फसली और ऊंचे बाजार भावों में बहुत अन्तर हो जाता है। यह अन्तर कभी-कभी ३० प्रतिशत तक होता है।

(१०) सरकार की व्यापार-नीति – द्वितीय विश्व युद्ध के प्रारंभ काल से ही तिलहनों और उनके खाद्य, औद्योगिक और खाद-सम्बन्धी उत्पादनों की घरेलू मांग में निरन्तर वृद्धि हुई है। परिणाम स्वरूप तिलहनों, तेल और खली के आयात-निर्यात पर सरकारी नियंत्रण बना दिया जा रहा है। उदाहरणार्थ सरकार तिलहन के बजाय तेल के निर्यात को प्रोत्साहन देती है, ताकि पेराई उद्योग विकसित हो सके और खली पशुओं के चारे तथा खाद के रूप में देश में व्यवहृत हो सके। सरकार की नीति से तिलहन व्यवसाय बहुत कुछ प्रभावित है।

चूंकि प्रमुख तिलहनों में उनके उत्पादन, उपयोग, मात्रा, मांग वाले क्षेत्रों, मूल्य-स्तरों और परिवहन की अवधियों के सम्बन्ध में कुछ अन्तर पाये जाते हैं, इसलिए किस्मवार स्थितियों का विवरण, जहां भी वह आवश्यक है, तिलहन-व्यवसाय की सामान्य अवस्था के साथ दिया गया है।

आ) प्रमुख तिलहनों की विक्रय-स्थिति

१ बिकने योग्य उपलब्ध माल

भारत के कुल उत्पादन में, उत्पादक प्राय कुछ भाग विभिन्न कामों के लिए बचा लेते हैं, जैसा कि नीचे बताया गया है और शेष भाग व्यापार के लिए प्रस्तुत करते हैं।

(अ) मूगफली – अनुमानत उत्पादक लगभग कटाई की मजदूरी के लिए १६ प्रतिशत बीज के लिए, १२ प्रतिशत खाने के इस्तेमाल के लिए १ प्रतिशत और घरेलू काम के लिए व पेराइ कराने के लिए २ प्रतिशत रहते हैं। व्यवसाय के लिए कुल उत्पादन का लगभग ८६ प्रतिशत रहता है।

(आ) तिल – उत्पादक लगभग ४४ ४ प्रतिशत रख लेते हैं, जिसमें से २ ३ प्रतिशत बीज के लिए, खाने के इस्तेमाल के लिए ९ ३ प्रतिशत और निजी काम के लिए व तेल-पेराइ के लिए ३२ ८ प्रतिशत रहता है। इस तरह व्यवसाय के लिए ५५ ६ प्रतिशत बचता है।

(इ) राई और सरसों – उत्पादक लगभग १४ प्रतिशत रख लेते हैं, जिसमें से बीज के लिए १ ६ प्रतिशत, अचार आदि घरेलू चीजों में प्रयुक्त होने के लिए २ प्रतिशत और पेराई के लिए १० प्रतिशत रहता है। लगभग ८६ प्रतिशत व्यापार के लिए बच जाता है।

(ई) अलसी – करीब २० प्रतिशत किसानों द्वारा ही रख ली जाती है। बीजों के लिए ७ प्रतिशत, भोजन व पशुओं के चारे जैसे घरेलू उपयोग के लिए २ प्रतिशत, स्थानीय सप्लाइ के लिए घानियों में पेरने हेतु ११ प्रतिशत और ५० प्रतिशत बेचने के लिए प्राप्त है।

(उ) अण्डी – उत्पादक अण्डी को बोने के लिए, जलानेवाला तेल, गुलाब तथा गुड़ और शक्कर बनाते समय गन्ने के रस को साफ करने के कामों म इस्तेमाल करने के लिए रख लेते है। रख लिये जाने वाले तिलहनों का अनुपात हर राज्य में हर वर्ष किये गये उत्पादन के परिमाण पर निर्भर करता है। लेकिन समस्त देश में सामूहिक रूप से उत्पादकों द्वारा रख लिये जानेवाला परिमाण अनुमानत ६ प्रतिशत होता है।

२ बिक्री का मौसम

बिक्री का मौसम, फसल कटने का समय और माग की मियाद आदि तथ्यों पर निभर रहता है तथा बीज की विभिन्नता के अनुसार इसमें भी परिवर्तन होता है।

(अ) मूगफली – आमतौर से इसकी बिक्री का मौसम या समय अक्तूबर

महीने से शुरू होता है और फरवरी तक समाप्त हो जाता है। अत्यंत क्रियाशील समय विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की मूगफली उत्पत्ति के अनुसार आता है। तालिका—१४, मद्रास, बम्बई, मध्य प्रदेश तथा हैदराबाद के विभिन्न बाजारों में माहवारी कितना माल आता है, प्रस्तुत करती है। मद्रास और बम्बई में अक्तूबर महीने में ही आमद में वृद्धि होने लगती है और दिसम्बर के महीने में बाजार में पहुच जाता है। नवम्बर से जनवरी तक बहुत ज्यादा काम होता है। हैदराबाद में अक्तूबर के महीने के मध्य में फसल आना शुरू हो जाती है और नवम्बर से जनवरी तक के समय में बिल्कुल तैयार हो जाती है। मध्य प्रदेश में ६७ प्रतिशत फसल अक्तूबर और नवम्बर के महीने में ही आती है। अन्य राज्यों में भी नवम्बर और जनवरी के महीने में ही ज्यादा फसल बाजार में आती है। मद्रास, बम्बई, हैदराबाद, सौराष्ट्र, मैसूर, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश, इन सात राज्यों में समस्त देश की कुल उत्पत्ति का ९८ प्रतिशत पैदा होता है। अन्य राज्यों के माग की पूर्ति इन राज्यों के अधिक उत्पादन से की जाती है। अधिकतर माल रेल तथा मद्रास, बम्बई और बगाल में तटीय स्टीमरों द्वारा मगाया और भेजा जाता है। रेल द्वारा विभिन्न राज्यों को जितना माल भेजा जाता है, उसका ५० प्रतिशत चार महीने, नवम्बर से फरवरी तक, में भेजा जाता है, वैसे साल भर यह कार्य होता रहता है। एक राज्य से दूसरे राज्य में मूंगफली भेजने की गतिविधियों का विवरण तालिका १५—में दिया गया है।

(आ) तिल —उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में इसकी बिक्री का समय नवम्बर महीने से शुरू होता है और मार्च तक रहता है। ७० से ८० प्रतिशत व्यापार इन्हीं महीनों के अन्दर होता है। बम्बई और अन्तर्द्वीपीय क्षेत्रों में इसका मौसम सितम्बर महीने से शुरू होता है। तालिका—१६, जो मध्य प्रदेश के बिक्री के सम्बन्ध में दी गयी है, को देखने से पता चलता है कि मार्च महीने में बहुत ही अधिक गतिविधि थी तथा अन्य महीनों में यह अनियमित थी।

(इ) राई और सरसों —इसकी बिक्री का समय विभिन्न क्षेत्रों में एक साथ नहीं होता है, क्योंकि इस फसल के कटने का समय विभिन्न प्रकार के बीजों की उत्पत्ति पर निर्भर करता है। दिसम्बर–जनवरी महीने में 'टारिया' किस्म और फरवरी–अप्रैल महीने में मौसमी तथा राई किस्म की बिक्री होती है। तालिका—

१७ से उत्तर प्रदेश, बिहार, बगाल, पजाब, मध्य प्रदेश और बम्बई में राई और सरसों की आमद का पता चलता है । उत्तर प्रदेश और बिहार में अधिकतर माल मार्च से मई महीने तक आता है तथा अप्रैल महीने में अपनी चोटी तक पहुच जाता है, जब कि इसका मौसम दिसम्बर–जनवरी से अप्रैल–मइ तक रहता है । आढ़त बाजारों में बीज पहुचने के तुरन्त ही बाद पेरने के केन्द्रों तथा बन्दरगाहों को भेज दिया जाता है और यह गतिविधि बिक्री के मौसम के साथ–साथ ही चलती है ।

(इ) अलसी – अलसी की फसल का अधिक भाग फरवरी–मार्च और मई–जून के बीच बाजार में आता है । आमद के सर्वोत्कृष्ठ मौसम से बचा हुआ माल बरसात के बाद सितम्बर माह से फरवरी तक बाजार में आता है । द्वितीय महायुद्ध के पहले और बाद के आकड़ों से पता चलता है कि फसल की अधिकतर बिक्री हो जाने के कारण मइ के अन्त तक आमद कम हो जाती है । यहा तक कि अलसी का जो थोड़ा बहुत (करीब ३,००० टन) आयात किया जाता है, वह स्थलीय माग से ही होता और वह भी, उन्हीं महीनों में किया जाता है, जबकि भारतीय फसल की बिक्री होती है । आयात का ५२ प्रतिशत भाग अप्रैल से जुलाई के अन्दर ही आता है ।

(उ) अण्डी –इस फसल की बिक्री का सर्वोत्कृष्ट समय दक्षिण भारत में फरवरी से अप्रैल तक और उत्तर भारत में अप्रैल से जून तक होता है । उदाहरण के तौर पर बिहार में फसल का ६५ प्रतिशत भाग अप्रैल से जून महीने के अन्दर बाजार में आता है और २० से २५ प्रतिशत भाग अक्तूबर से फरवरी तक आता है । बरसात के मौसम में जो फसल इकट्ठी की जाती है, उसकी मात्रा बहुत ही कम होती है ।

३ माग का समय और मात्रा

माग के समय और मात्रा की विभिन्नता न केवल बीज की विभिन्नता पर ही निर्भर करती है, बल्कि युद्ध के बाद के विभिन्न समयों पर भी निर्भर करती है । विभिन्न बीजों के अनुसार आम परिस्थिति का चित्रण नीचे किया जाता है ।

(अ) मूगफली – द्वितीय विश्व युद्ध के पहले उत्पादन का पचास

प्रतिशत भाग निर्यात किया जाता था । युद्ध के समय में बाह्य बिक्री के मन्द हो जाने तथा साथ ही मूगफली के तेल और खली की घरेलू माग में वृद्धि हो जाने के कारण बाहरी माग कम हो गयी । सन् १९४८–४९ और १९४९–५० में कुल उत्पादन का केवल ३.२ प्रतिशत ही निर्यात किया गया, जब कि ९६ प्रतिशत भाग घरेलू माग की पूर्ति के लिए भारत में ही रह गया, जिसमे खाद्य बीज और तेल निकालने के लिए रखा गया बीज दोनों सम्मिलित हैं । मई से जुलाई तक बोने के समय ही इसके बीज की माग रहती है । बीज बोने के समय म माग के अधिक भाग की पूर्ति उत्पादकों द्वारा रखे हुए माल से हो जाती है और बहुत थोड़ा हिस्सा ही बाजार से मगाया जाता है । खाने के लिए इसके बीज की माग दक्षिण भारत में साल भर रहती है, परन्तु उत्तर भारत में केवल ठण्ड के मौसम में ही इसकी अधिक माग होती है । तेल पेरने का काम भी अधिकतर साल भर चलता है, परन्तु दिसम्बर से फरवरी तक पेरने की क्रियाशीलता अधिक हो जाती है । मद्रास, बम्बई, हैदराबाद, मैसूर और सौराष्ट्र, ये मुख्य क्षेत्र हैं, जहां पर मूगफली के तेल का अधिक उत्पादन होता है । घानी का तेल अधिकतर स्थानीय तौर पर ही खप जाता है और अच्छी किस्म का तेल दूसरे राज्यों में तथा कुछ माल बाहर के देशों में भी भेजा जाता है । मिल के तेल का वितरण समूचे देश म होता है और इसका निर्यात ब्रिटेन, इटली, पश्चिमी जर्मनी, नीदरलैण्ड, बेलजियम, कनाडा, बर्मा आदि देशों को भी होता है । साधारण स्थिति में फरवरी से अप्रैल तक निर्यात अधिक मात्रा में होता है और जून में इसकी मात्रा न्यूनतम रहती है । द्वितीय विश्व युद्ध के पहले प्रति वर्ष ३६,००० टन तेल का निर्यात होता था, परन्तु धीरे-धीरे इसका ह्रास होने लगा और सन् १९४९–५० में २५,००० टन तेल निर्यात हुआ । परन्तु अब निर्यात बढ़ गया है और सन् १९५४–५५ में ९१,८८६ टन तेल का निर्यात हुआ । तालिका— १८ में दिये गये आकड़े के अनुसार युद्ध के समय रेल तथा नदियों द्वारा तेल का व्यापार १,२३,००० टन हुआ था । सन् १९३९ से पहले मूगफली की खली भी बड़ी मात्रा में निर्यात की जाती थी और सन् १९३८–३९ में ३,६५,००० टन खली का निर्यात हुआ । परन्तु द्वितीय महायुद्ध छिड़ जाने के कारण निर्यात में कमी होने लगी और सन् १९४३–४४ में केवल १४,००० टन का निर्यात हुआ । सन् १९४४ में भारत सरकार ने खली का उपयोग खाद एवं पशुओं आदि में करने के कारण इसके निर्यात पर प्रतिबन्ध लगा दिया और

तब से इसका कभी निर्यात नहीं हुआ। १० से १२ लाख टन मूगफली की खली का उत्पादन घरेलू खपत के लिए इस समय भारत में होता है। परन्तु इसकी गतिविधियों और मूल्य पर मध्य प्रदेश, बम्बई, हैदराबाद और मद्रास का ही नियन्त्रण रहता है। तेल उद्योग जांच-समिति सन् (१९५६) ने भारतीय तेल-खली की विदेशी माग एव देश में उसकी खपत पर पूर्णरूप से विचार किया और सिफारिश की कि यद्यपि वे अधिक मात्रा म खली का निर्यात करने के पक्ष म नहीं हैं, परन्तु यदि देश की आवश्यकता की पूर्ति करके थोड़ा माल बाहर भेजा जाये, तो इसमें कोइ हर्ज नहीं है।

आ) तिल – सन् १९४० से १९४६ के बीच में तिल का निर्यात २,००० टन से ११,००८ टन तक रहा। सन् १९४८ में इसके निर्यात पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया, परन्तु दूसरे वर्ष फिर शुरू कर दिया गया। इधर कई वर्षों से कोइ निर्यात नहीं हुआ, सिर्फ सन् १९५२-५३ में केवल २,३४८ टन बीज का निर्यात हुआ था। इसका निर्यात अधिकतर जनवरी और मार्च महीने में होता है। सन् १९४९-५० में अमेरिका इसका सबसे बड़ा आयात तक था। तिल की अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधि बहुत अधिक नहीं है (तालिका १९)। तेल एक राज्य से दूसरे राज्य में नहीं भेजा जाता। यदि किसी राज्य में तेल की कमी होती है, तो वह तिलहन ही घानी में पेरने के लिए मगाता है। बीज का आवागमन रेल सड़क और तटीय जलपोतों द्वारा किया जाता है।

इ) **राई और सरसों** – आज से पचीसों वर्ष पहले राई और सरसों के निर्यात का प्रति वर्ष औसत दो लाख टन था। परन्तु द्वितीय विश्व युद्ध में यह गिर कर ४०,००० टन प्रति वर्ष रह गया। विगत वर्षों म इसका निर्यात एक तरह से नगण्य सा रहा है और केवल १०० टन से कुछ अधिक बीज और करीब ४०० टन तेल का सन् १९५४-५५ में खत्म होने वाले वर्षों में हुआ। राइ और सरसों की अधिक मात्रा भारत में ही रह जाती है और मिल तथा घानी में पेरी जाती है। इन बीजों को पेरने वाले मुख्य क्षेत्र हैं—उत्तर प्रदेश, बगाल, बिहार, पजाब और आसाम। अन्य राज्यों म मिलों तथा घानी द्वारा बहुत कम मात्रा में तेल की पेराइ होती है। पशुओं के चारे के रूप म राइ और सरसों की माग केवल पजाब और उत्तर प्रदेश तक ही सीमित है। सरसों के उत्पादक क्षेत्रों में इसका

प्रयोग कुछ हद तक शरीर की स्वच्छता के लिए उबटन और दवा के रूप में होता है। मसाले के रूप में तो इसका प्रयोग समस्त देश में होता है। अधिक उत्पादन करनेवाले क्षेत्रों से कम उत्पादन वाले क्षेत्र—जैसे बगाल, बिहार और मद्रास को माल रेल, सड़क, तटीय जलपोत और देशी नौकाओं से भेजा जाता है, परन्तु अधिक माल रेल द्वारा ही भेजा जाता है।

यद्यपि राइ और सरसों का निर्यात पूरे वर्ष भर होता रहता है, परन्तु अधिकतर माल की खरीद जनवरी और मई महीने के अन्दर ही होती है। चूकि तेलियों के पास इतना पैसा नहीं होता कि एक साथ ही अधिक माल खरीद सकें, इसलिए ,वे लोग जनवरी से जून तक रोजाना स्थानीय उत्पादन से अपनी जरूरत के लिए खरीदते रहते हैं। चूकि इसी समय अन्य तिलहनों की भी पेराइ होती है, इसलिए वे लोग रुक-रुक कर सरसों खरीदते हैं। बरसात के समय तेल की पेराइ बिल्कुल नहीं होती। शक्ति-चालित मशीनें फसल कटने के समय ही बहुत मात्रा में तिलहन खरीद लेती हैं। सन् १९४१-४२ के आकड़ों से मालूम होता है कि जबकि उत्तर प्रदेश में मिलें, मई-जून में, जबकि गर्मी अपनी चरम सीमा पर होती है तथा जनवरी में, जो सर्दी का महीना है, अधिक मात्रा में तेल की पेराइ करती हैं। बिहार और बगाल की मिलें दुर्गा पूजा के कारण उत्पन्न हुई माग की पूर्ति के लिए सितम्बर और अक्तूबर में तेल पेरती हैं। बोने के लिए बीज की माग अगस्त और नवम्बर महीने के बीच में होती है, जबकि मसाले और प्रसाधन इत्यादि के उपयोग में लाने के लिए इसकी मांग पूरे वर्ष भर रहती है। जो कुछ सीमित आंकड़े उपलब्ध हुए हैं उनसे पता चलता है कि अप्रैल और जून महीने में मांग अपनी चरम सीमा पर पहुच जाती है तथा पूरे वर्ष चलती रहती है। मांग पर निम्नलिखित तथ्यों का प्रभाव पड़ता है —

(क) खाद्य अथवा औद्योगिक कार्यों के लिए सरसों के तेल की माग की सीमा

(ख) व्यापारियों द्वारा मिश्रण करने की सीमा।

ई) अलसी — विगत महायुद्ध के पहले अलसी ने भारत के निर्यात-व्यापार में अच्छा हाथ बटाया। परन्तु देश में अलसी की पेराइ उद्योग में उन्नति होने तथा अलसी के बीज के निर्यात पर प्रतिबन्ध लग जाने के कारण द्वितीय

महायुद्ध के बाद इसके निर्यात में बहुत कमी हो गयी। सन् १९५२–५३ में केवल ६८ टन अलसी का निर्यात हुआ था और सन् १९५२ के बाद कोई निर्यात ही नहीं हुआ। परन्तु सन् १९५२–५३ और १९५४–५५ के वर्षों में अलसी के तेल का औसतन ११,००० टन प्रति वर्ष निर्यात हुआ। मध्य प्रदेश, विन्ध्य प्रदेश में मुख्य खाद्य तेल होने के कारण इस की माग सदैव बनी रहती है। सरसों के तेल में मिश्रण करने के लिए पजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार तथा बगाल में भी इसकी मांग रहती है। स्थानीय उद्योगों की आवश्यकता पूर्ति कर लेने के बाद ही बची हुइ फसल अन्य राज्यों में भेजी जाती है। बम्बइ और पश्चिमी बगाल ये दो राज्य सबसे अधिक अलसी मगाते हैं। स्थानीय खपत में वृद्धि हो जाने के कारण अन्तर्राज्यीय व्यापार की सन् १९४९–५० से सन् १९५२–५३ की मात्रा में सन् १९३४–३५ से १९३६–३७ की मात्रा से एक तिहाइ की कमी हो गयी है। यद्यपि घरेलू खपत के लिए इसकी मांग अधिकतर सर्दी के मौसम में ही होती है, परन्तु तेल निकालने के लिए कोइ समय निश्चित नहीं है। बड़ी मिलें बड़ी मात्रा में तथा छोटी मिलें फुटकर रूप में बीज को खरीद लेती हैं और उनका कार्य साल भर चलता रहता है।

उ) **अण्डी** – विगत शताब्दी के पश्चात् अण्डी का विदेशी व्यापार बहुत अधिक हुआ है। अण्डी के तेल की चिकनाई के रूप में वृद्धि हो जाने के कारण यूरोप के देशों में इसके निर्यात में वृद्धि हुई। प्रथम विश्व युद्ध के पहले औसतन १,१४,००० टन तेल का निर्यात होता था तथा मन्दी के समय के पहले इसका औसत १,२०,००० टन प्रति वर्ष था। इस समय के बीच दो तथ्यों में अण्डी के निर्यात के ऊपर अधिक प्रभाव डाला। प्रथम अण्डी के बीज का भारी होने के कारण उसके तेल के निर्यात को ही प्रधानता दी जाती थी। दूसरे अपने देश में ही चिकनाइ और जुलाब के रूप में तेल की माग बहुत अधिक बढ़ गयी।

खनिज तेल तथा ब्राजील अण्डी की प्रतिस्पर्धा के कारण आर्थिक मन्दी के दिनों में अण्डी के निर्यात–व्यापार में बहुत मन्दी आ गयी और औसत निर्यात ६०,००० टन सालाना आ गया। विश्व युद्ध के बाद इसमें और भी कमी हुइ। इग्लैण्ड और अमेरिका भारतीय अण्डी के मुख्य खरीदार रहे हैं। बिना किसी विशेष मौसम के इसका निर्यात साल भर जारी रहता है। सन् १९४३ में अण्डी की

खली के ऊपर प्रतिबन्ध लगा दिया गया, उसके पहले बहुत कम मात्रा कुछ सौ टनों में ही इसका निर्यात होता था।

जहां तक अन्तर्राज्यीय माग का प्रश्न है, बिहार, हैदराबाद और उत्तर प्रदेश ये तीन राज्य अधिक उत्पादन के क्षेत्र हैं और बगाल, बिहार, बम्बई, मद्रास, उत्तर प्रदेश तथा हैदराबाद में सबसे अधिक इसकी खपत होती है।

(४) मूल्य में विभिन्नता

विभिन्न प्रकार के तिलहनों का मूल्य निम्नलिखित पांच तथ्यों के आधार पर अलग-अलग होता है –

तिलहन के सम्बन्ध में निम्नलिखित पांच तथ्य इसके आधार हैं –

अ) तिलहन किस किस्म, कितने आकार तथा उसमें तेल की मात्रा कितनी है,

आ) उसी किस्म के तिलहन में नमी तथा कूड़ा-करकट,

इ) जिस मात्रा में कूड़ा-करकट हो, उसके आधार पर मूल्य-निर्धारण,

ई) विक्रेता (जोकि कर्जदार हो सकता है) तथा खरीदार (जोकि ऋणदाता-साहूकार हो सकता है के बीच सम्बन्ध,

उ) मौसमी चढ़ाव-उतार,

तेल और खली की विभिन्नता निम्नलिखित ६ तथ्यों पर निर्भर करती है –

अ) अन्य वानस्पतिक तेलों की प्रतिस्पर्धा,

आ) एक ही समय पर विभिन्न बाजारों में विशेष मांग और पूर्ति की परिस्थिति

इ) तेल और खली की किस्म, क्योंकि घानी का तेल और खली मिल की खली और तेल से उत्तम समझा जाता है, इसलिए उसकी कीमत अधिक होती है।

ई) फुटकर और थोक [illegible] की गतिविधियां,

उ) बाजार तथा मूल्य के विषय में राज्य के कानून,

ऊ) भाव में मौसमी चढ़ाव-उतार।

विभिन्न समयों तथा स्थानों पर विभिन्न प्रकार के तथ्यों के दबाव के कारण विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की कीमत एक ही बाजार या अलग-अलग बाजार में एक ही परिस्थिति तथा एक ही समय में भिन्न-भिन्न होती है। परन्तु मौसमी भावों में चढ़ाव-उतार के कारण बहुत अधिक अन्तर हो जाता है। जैसाकि नीचे लिखा जा रहा है। विभिन्न प्रकार के तिलहनों में जो अलग-अलग समय पर जो विभिन्नता पायी जाती है, उनका क्रम निम्नलिखित प्रकार से है —

अ) मूंगफली — द्वितीय महायुद्ध के पहले मद्रास और बम्बई के बन्दरगाहों पर मूंगफली का भाव लंदन के भाव के अनुसार होता था। परन्तु युद्ध के समय तथा उसके बाद निर्यात में कठिनाई पैदा होने तथा घरेलू मांग बढ़ जाने के कारण मूंगफली का एक अलग स्वतंत्र अस्तित्व हो गया। फिर भी स्वयं अपने ही देश में इसके भावों में एक बाजार या विभिन्न बाजारों में विभिन्नता पायी जाती है। उदाहरण के तौर पर तेल के फुटकर व्यापारी थोक भाव पर ५ से ३० प्रतिशत अधिक मूल्य लगा कर बेचते हैं।

मौसमी उतार-चढ़ाव काफी तेज होते हैं। मूंगफली की मींग की बनिस्बत छिलकेदार मूंगफली के भाव में अधिक उतार-चढ़ाव काफी तेज होता है। लेकिन उतार फसल के मौके पर यानी अगस्त-सितम्बर से लेकर दिसंबर तक ज्यादा से ज्यादा नीचा जाता है और जनवरी तथा अगस्त के महीनों में भावों में चढ़ती शुरू हो जाती है, जो मार्च के महीने में शिखर पर जा पहुंचती है। उस समय यह चढ़ती तालिका—२० में वर्णित कुछ बाजारों के सालाना औसत भावों से लगभग १८ से लेकर २१५ प्रतिशत तक जा पहुंचती है।

जबकि घानी की खली का मूल्य मिल की खली से अधिक होता है, उस हालत में भी घानी की खली के मूल्य में अगस्त और मार्च के महीने के बीच १९ प्रतिशत तक का फर्क होता है। घानी की खली की विशेषता यह है कि इसका मूल्य तथा वितरण राज्य सरकार द्वारा नियंत्रित रहता है तथा इसके मूल्य का प्रभाव तेल तथा बीज की कीमत पर नहीं होता। खली के इस न्यूनतम मूल्य के कारण छिलके रहित बीज की कीमतें में असाधारण गति-विधियां

आ) तिल – द्वितीय महायुद्ध के बाद कुछ वर्षों तक इसकी कीमत में कोई स्थिरता नहीं थी, परन्तु यदि सच कहा जाये, तो कलकत्ता जैसे स्थानों पर जहां इसे बहुत अधिक ख्याति प्राप्त हुई है, इसकी कीमत बहुत ऊंची है। इस प्रकार मूल्यों में जो विभिन्नता पायी जाती है, वह माग की मात्रा, उत्पादन की किस्म तथा उसके स्तर पर निर्भर करती है, परन्तु ज्यादा अन्तर केवल मौसमी घट-बढ़ के कारण ही होता है। आमतौर पर सर्दी (नवम्बर से मार्च) के महीनों में कम होती है और जुलाई से अक्तूबर के महीनों में, जैसा कि तालिका – २१ में बताया गया है, इसकी कीमत अपनी चरम सीमा पर होती है। बीज के साथ तेल के मूल्य का कोई साथ नहीं रहता। सर्दी के मौसम खास कर अक्तूबर और नवम्बर के महीनों में तेल की कीमत अपनी उच्चतम सीमा पर होती है, क्योंकि ठण्डक के कारण इस तेल की बहुत अधिक माग रहती है। साफ किये हुए तिलहन तथा घानी तेल का मूल्य सदैव ऊंचा होता है।

इ) **राई और सरसों** – अन्य तिलहनों की मौसमी घट-बढ़ के कारण उत्पन्न हुई कीमत की विभिन्नता में और इस तिलहन की कीमत में अन्तर है। प्राप्त आकड़ों से पता लगता है कि अप्रैल और जून के महीने में पंजाब के आढ़ती बाजारों में तथा फरवरी और अप्रैल के बीच उत्तर प्रदेश के आढ़ती बाजारों में इसकी भाव में कमी हो जाती है। फसल कटने के समय, जब कि बहुत सा माल बाजार में आ जाता है, भाव में मन्दी आ जाती है। फिर उसके कुछ महीनों बाद उसके भाव में तेजी आने लगती है। चूंकि बंगाल राज्य सरसों-तेल का मुख्य उपभोक्ता राज्य है, इसलिए बिहार और उत्तर प्रदेश में बाजार का भाव कलकत्ता के भाव से प्रभावित रहता है। कानपुर और कलकत्ता के भावों में मौसमी विभिन्नता का तुलनात्मक अध्ययन करने से यह पता चलता है कि अप्रैल से अगस्त तक तेल के भाव में कमी रहती है और सितम्बर से उसमें वृद्धि होने लगती है। भावों की विभिन्नता का वर्गीकरण कानपुर की अपेक्षा कलकत्ता में अधिक विस्तृत था। यह विभिन्नता तेल निकालने की विधि पर भी निर्भर रहती है। घानी का तेल सब जगह मिल के तेल से अधिक भाव पर बिकता है, जबकि पंजाब में एक आम विश्वास के कारण कि निम्न तापमान में पेरी हुई घानी के तेल में क्षार कम हो जाता है और उसके अन्य तत्व ज्यों-के-त्यों बने रहते हैं, ठण्डे पानी के छींटे देकर पेरे हुए घानी के

तेल का मूल्य अधिक होता है। खली के भाव में नवम्बर–दिसम्बर से भाव में गिरावट आने लगती है और फरवरी तक साफ हो जाती है तथा अगस्त तक इसी प्रकार चलता है और अगस्त में इसकी कीमत में कुछ वृद्धि होने लगती है। सर्दी के मौसम में खली की कीमत इसलिए बढ जाती है, क्योंकि उस समय इसकी उत्पत्ति कम होती है।

इ) अलसी – अलसी की कीमत ससार के मूल्यों से सम्बधित है, यद्यपि वह उस हद तक नहीं है, जो कुछ साल पहले थी। इसका मूल्य विभिन्न मौसमों पर भी निर्भर करता है। उदाहरण के तौर पर यह विभिनता ८३ से १०६ प्रतिशत बिहार में, ११ से ३० प्रतिशत तक मध्य प्रदेश और १२७ से २२ प्रतिशत तक बम्बई और हैदराबाद में पायी जाती है। लड़ाई के बाद सिवाय फसल कटने के समय की मन्दी और उससे दो महीने पहले की तेजी के अलावा इसके मौसमी मूल्य की गतिविधियों म बहुत ही सामान्य अन्तर रहता था। परन्तु देश के भीतरी भाग एव बाजार में द्वितीय विश्व–युद्ध से पहले तथा उसके बाद की कीमतों की विभिन्नता उल्लेखनीय थी। जब अधिक मात्रा में फसल कटने लगती है, उससे उत्पादक के उत्पादन का बहुत ही कम फायदा उसको मिलता है।

उ) अण्डी –जिस प्रकार इगलैण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों के अण्डी के बीज की दर अण्डी बीज के अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य की द्योतक है, उसी प्रकार बम्बई के बाजार की दरें भारत में अण्डी बीज के भाव की द्योतक हैं। परन्तु इन दोनों बाजारों की दरों में बहुत अन्तर है। इसमें एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि भारत के अण्डी बीज ब्राजील के बीज से अच्छे होते हैं और इसके कारण उनके भाव भी ऊचे होते हैं। विभिन्न तिलहनों की दरों के प्रभाव तथा अन्य बाजारों की स्थितियों के असर के अलावा अण्डी के व्यापार में बहुत अधिक मौसमी विभिन्नता पायी जाती है। आम तौर पर जब विभिन्न बाजारों में फसलें आने लगती हैं, तब भाव में गिरावट होने लगती है और फसल का मौसम समाप्त हो जाने पर उनकी दरों में वृद्धि होने लगती है। सन् १९४९–५० के वर्ष के किन्ही दो महीनों में औसत मूल्य और उच्चतम मूल्य में छपरा तथा कलकत्ता में ८ प्रतिशत तक तथा कानपुर और बम्बई में २१ प्रतिशत और लखीमपुर में २६ प्रतिशत तक का अतर था। इस प्रकार के

उतार-चढ़ाव से उत्पादकों को बहुत अधिक नुकसान होता है और इसीलिए मूल्य निर्धारण की आवश्यकता है।

५ बाजार और बाजार क्रिया

निलहन का प्रथम स्थान जहा से व्यापार आरम्भ होता है उसको शाटिस या हाट कहते हैं। दूसरा स्थान है—उसका मण्डी। इसके पश्चात् देश का आखिरी बाजार है—बन्दरगाह, जहा से माल बाहर भेजा जाता है। इसमें कुछ बाजार स्थानीय संस्थाओं या विधिविहित संस्थाओं द्वारा नियंत्रित होते हैं। यहा पर कीमत का निर्धारण दो प्रकार से होता है। एक तरीका छिपा हुआ होता है, जहा पर यह तरीका अपनाया जाता है, वहा व्यापारी एक दूसरे व्यापारी का हाथ पकड़ कर, कपड़े के अन्दर, हाथ के इशारों से ही, भाव तय करता है। दूसरा खुला हुआ तरीका है, इसमें जिस प्रकार का माल होता है, उसके अनुसार खुले बाजार में भाव तय किया जाता है। एक और तरीका नीलाम का है। एजेण्ट लोग फसल को नीलाम करते हैं। इन सभी तरीकों में अनेक प्रकार के कर जैसे नगरपालिका कर, वजन करने का चार्ज धर्मादा और अगर माल अच्छा न हुआ, तो उसके लिए कमी फसल और/या नकद रूप में काट लिया जाता है। इस प्रकार से तिलहन का एक खासा हिस्सा इस प्रकार निकल जाता है।

अ) **मूगफली** –पूरे गल्ले का १७५ प्रतिशत उपरोक्त प्रकार के कार्य के लिए निकल जाता है।

आ) **तिल** –हैदराबाद में तिल का नियमित बाजार अच्छी प्रकार काम कर रहा है। जहा के बाजार नियमानुसार काम नहीं करते हैं, वहा पर विभिन्न बाजार में उपरोक्त प्रकार के खर्चे ६ से १४ प्रतिशत तक होते हैं, जबकि उत्तर प्रदेश में ७७५ प्रतिशत और बम्बई में २२ प्रतिशत होता है। सन् १९४९-५० में नियमित बाजारों में ये खर्चे ठीक थे, जबकि अनियमित बाजार, जैसे बम्बई राज्य में बहुत अधिक थे। नियमित बाजारों में ये खर्च ७ आने प्रति सौ रुपया जाता था, जबकि अनियमित बाजार में यह खर्च ४-१५-३ रु० प्रति सौ रुपया जाता था।

इ) **राई और सरसों** –बाजार के खर्च विभिन्न स्थानों पर १७ से ५०

प्रतिशत तक होते हैं, परतु जहा पर ये खर्चे फसल के रूप मे ही दिये जाते हैं, वहा पर ये ऊचे हो जाते हैं । उत्पादक की आमदनी के अतिरिक्त इन खर्चों में स्थानीय विभिन्नता होने के कारण मूल्यों की तुलना करना मुश्किल हो जाता है ।

ई) **अलसी** अलसी के व्यापार में हाट-खर्च उड़ीसा के १-१३-२ रु० प्रतिशत से लेकर मध्य भारत के ८-२-२ रु० प्रतिशत तक होता है। सच कहा जाये तो जहा पर ये हाट खर्च अनाज के रूप म दिये जाते हैं, वहा उन स्थानों की बनिस्बत जहा पर रुपये में दिये जाते हैं, अधिक होते हैं । इस प्रकार के खर्च का अधिक हिस्सा विक्रेता को ही सहन करना पड़ता है । परन्तु नियमित बाजारों में ये खर्च उनकी तुलना में बहुत कम हैं, जबकि मध्यभारत में ८-२-२ रु० होते हैं, तो नियमित बाजारों में १-११-८ रु० होता है और मध्य प्रदेश में ४-०-८ रु० की जगह २-११-१ रु० होता है ।

उ) **अण्डी** —कुछ बाजारों में इसका मूल्य निश्चित होता है और उसके ऊपर लाभ जोड़ कर सौदा होता है । कुछ स्थानों पर नीलाम का तरीका अपनाया जाता है । वहा पर उस फसल की औसत किस्म की अण्डी की कीमत नीलाम द्वारा या अन्तिम बोली के आधार पर निर्धारित करते हैं और उसी के आधार पर विभिन्न किस्मों की कीमत निर्धारित की जाती है । इसम और किसी प्रकार के हाट खर्च नहीं लगाते, परन्तु कई स्थानों पर विक्रेता को चुगी, हाट-फीस इत्यादि एक पाई से लेकर एक आना तक प्रति व्यक्ति बोझा या एक आने से ६ आने तक प्रति गाड़ी बोझा के आधार पर देना पड़ता है । कुछ स्थानों पर खरीदार को वजन-खर्च तथा कर देना पड़ता है । ये खर्च नकद अनाज के रूप में दिये जाते हैं, जो २ रु० से लेकर ८-२-० रु० प्रतिशत तक उस हालत में होते हैं, जबकि अण्डी बीज का भाव ५-०-० रु० प्रति मन होता है । जहां पर फसल के रूप में ये खर्च दिये जाते हैं, वहा खर्च अधिक पड़ जाता है ।

६ कार्यग्राहक एजेंसिया

उत्पादकों के पास जो अधिक फसल बाजार में बेचने के लिए होती है उसको (अ) अपने पास की मण्डी में ले जाते हैं या (आ) अपने खेत पर गाव में ही दलालों को बेच देते हैं, जो उसे मण्डी में ले जाते हैं। ये मध्यस्थ गाव के व्यापारी, भ्रमणशील व्यापारी, पैसा उधार देनेवाले जमींदार

तथा थोक व्यापारियों के गुमाश्ता, छिलका उतारने वाले प्रतिष्ठान और तेल मिलें म काय करते हैं।

वितरण जैसे फसल का मण्डी से भारतीय उपभोक्ताओं के पास पहुंचाना या निर्यात करना आदि काम निम्नलिखित एजेंसियों में से किसी न किसी के द्वारा होता है –

१ खेतिहर,

२ गांव का व्यापारी,

३ छिलके उतारनेवाले प्रतिष्ठान,

४ कमीशन एजेंट या थोक व्यापारी,

५ निर्यातक,

६ तेल मिल,

७ सहकारी समितियां।

तेल का वितरण विभिन्न प्रकार से होता है। घानी का तेल गांव के दूकानदार या स्वयं तेली द्वारा ही स्थानीय तौर पर बिक जाता है, जो या तो नकद पैसे लेकर लेते हैं या वस्तु-विनिमय के आधार पर करते हैं। मद्रास और आंध्र के कुछ हिस्सों से घानी तेल ठीक उसी प्रकार दूसरे बाजार में भेजा जाता है, जिस प्रकार मिल का तेल बाहर भेजा जाता है। तेल मिलें अपना तैयार किया हुआ माल निम्नलिखित तरीकों में से किसी को अपना कर बेचती हैं –

१ स्थानीय या अन्य स्थानों के थोक-व्यापारियों को,

२ वनस्पति तैयार करनेवाले बड़े-बड़े उपभोक्ताओं से ठेका करके,

३ कमीशन एजेंट द्वारा,

४ स्वयं विदेश को निर्यात करके या निर्यातकों के हाथ बेच कर,

५ अपने विक्रय संगठनों द्वारा।

जहां पर तिल की फुटकर दूकानें हैं, उन स्थानों के अलावा बिक्री प्रचुर मात्रा में होती है।

अ) **मूंगफली** – गावों में छिलके सहित मूगफली की बिक्री होती है। मूगफली इकट्ठा करने में खेतिहरों का बहुत बड़ा हाथ रहता है। सरकार के हस्तक्षेप तथा बाजार की गतिविधियों के लिए नियम बना देने के कारण इस फसल को इकट्ठा करने में उत्पादकों की माग बढ़ती जा रही है। गाव के दूकानदार तथा भ्रमणशील व्यापारी १५ से २० मील के दायरे में आने वाले गांवों में अपना व्यापार करते हैं। वे विभिन्न अवसरों पर दलाल का भी कार्य करते हैं। थोक व्यापारी बेचनेवाली फसल का १५ प्रतिशत अपनी दूकान पर या अपने एजेंटों के द्वारा खरीदते हैं। परतु अब धीरे-धीरे खरीद का यह कार्य सीधे ही होने लगा है। विभिन्न एजेंसियों का माल इकट्ठा करने में कितना हाथ है, उसका विवरण तालिका– २२ में दिया गया है। मद्रास, बम्बई, हैदराबाद और मैसूर में मण्डियों में इकट्ठा होनेवाली मूगफली के बहुत बड़े भाग का छिलका उतार कर दाना बेचते हैं। मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और पजाब में छिलका सहित तथा सौराष्ट्र में छिलके सहित और दाना दोनों के रूप में बेचते हैं। खेतिहर लोग अपनी फसल का बहुत बड़ा भाग तेल मिलों या उनके एजेंटों को देने के अलावा गाव के दूकानदारों, फुटकर व्यापारियों तथा तेलियों को बेच देते हैं। थोक विक्रेता और निर्यातक लोग अपने एजेंटों और सह-एजेंटों द्वारा गावों में भी खरीदते हैं।

आ) **तिल** – इसकी कार्यवाहक एजेंसियों के तत्सबधी महत्व का विवरण तालिका—२३ में दिया गया है।

इ) **राई और सरसों** – खेतिहर जिस मात्रा में अपना उत्पादन बाजार में ले जाते हैं, वह विभिन्न क्षेत्रों के अनुसार भिन्न होता है और कुछ हद तक विभिन्न प्रकार के बीज की मात्रा देश के विभिन्न भागों में अलग-अलग होती है। उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में यह बिकनेवाली फसल का ३० प्रतिशत होती है। हैदराबाद में ७० प्रतिशत और पजाब में ५० प्रतिशत। अगर सम्पूर्ण भारत के विभिन्न प्रकार के तिलहनों का विभिन्न मौसमों में बेचने की मात्रा पर विचार किया जाये, तो यह कहा जा सकता है कि अधिक फसल की एक तिहाई मात्रा स्वय उत्पादकों द्वारा बाजार में ले जाकर बेची जाती है। परन्तु माल को इकट्ठा करने में दूकानदारों और थोक व्यापारियों का कितना भाग रहता है, यह स्पष्टतया ज्ञात नहीं है। यह कहना कुछ कठिन है कि उत्पादकों को अपना उत्पादन स्थानीय तौर पर बेचने

फायदा है या बाजार में ले जाकर बेचने में, क्योंकि गाँव के खरीदार अक्सर बाजार भाव के सन्निकट दर पर ही माल खरीदते हैं।

ई) अल्सी – अल्सी इकट्ठा करने में विभिन्न प्रकार की एजेंसियों का कितना भाग रहता है, इसका विवरण तालिका—२४ में दिया गया है। वितरण का एक मुख्य अंग यह है कि इसका व्यापार अधिकतर पक्के आढ़तियों द्वारा किया जाता है, जोकि आढ़ती बाजारों में कच्चे आढ़तियों से सामान खरीदते हैं। किसी समय बड़े-बड़े निर्यातक प्रतिष्ठान देश के ऊपरी भागों में अपने एजेंटों द्वारा माल खरीदते थे, परन्तु सन् १९३१ की मंदी के बाद बहुत से प्रतिष्ठान बंद हो गये और इसका व्यापार अब प्रमाणित दलालों द्वारा ही होता है।

उ) अण्डी – बिकनेवाली अधिक फसल की स्वयं उत्पादकों द्वारा बड़ी नाना मण्डियों या मण्डियों में लायी जाती है यह बिहार में १० प्रतिशत और हैदराबाद के कुछ निर्यात बाजारों में ९० प्रतिशत तक होती है। मद्रास में ८० प्रतिशत माल मण्डियों में व्यापारियों और तेलियों को बेचा जाता है, जबकि १८ प्रतिशत तक मंडियों में जाकर बिकता है। मोटे तौर पर बिकनेवाली फसल का ५० प्रतिशत भाग स्वयं उत्पादकों द्वारा बाजार में ले जाया जाता है, जबकि शेष ५० प्रतिशत गाँव के दूकानदार तथा व्यापारी उत्पादकों से खरीद कर बाजार में ले जाते हैं।

वितरण व्यय और मूल्य विस्तार

वितरण का खर्च, माल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने की दूरी तथा किन स्रोतों से उपलब्ध होता है, पर निर्भर करता है। जहां पर स्थानीय व्यापारी या गांव के दूकानदार सीधे तेलियों को तथा खाद्य रूप में उपयोग करने के लिए उपभोक्ताओं को सीधे माल बेचते हैं, उस हालत में वितरण खर्च नगण्य सा होता है। परन्तु जब यह माल तेल-मिलों या निर्यातकों को बेचा जाता है, उस हालत में बहुत से मध्यस्थ आ जाते हैं और इस प्रकार वितरण खर्च में वृद्धि हो जाती है।

अ) मूंगफली तालिका–२५ में खर्चे संबंधी जो विवरण दिया गया है, उससे यह प्रतीत होता है कि सन् १९३८ में, जिस समय के आंकड़े उपलब्ध हैं छिलके सहित मूंगफली से एक बाजार पर जो उत्तर प्रदेश की एक बाजार

माधोगज से पन्ना की एक मिल को भेजा गया था, प्रेषक स्टेशन पर वितरण खर्च १७४ रु० या मूल्य का ३१ ५ प्रतिशत आया था। अधिकतर खर्च बोरियों तथा रेलवे के भाड़े का ही होता है। परतु छिलके रहित मूगफली को उन्हीं स्टेशनों के बीच भेजने पर खर्च १७ ८ प्रतिशत आता है। अब आम मूल्य वृद्धि और जीवनस्तर ऊचा होने के कारण वितरण खर्च में वृद्धि हो गयी है, परतु अभी तक कोई स्पष्ट आकड़ा उपलब्ध नहीं है।

तेल का वितरण खर्च कुछ अधिक होता है। जैसा कि तालिका–२६ में दिखाया गया है कि जबकि २०७ मन तेल की एक चलन जो बम्बई की धुलिया तेल मिल से द्वितीय महायुद्ध के पहले दिल्ली के एक थोक व्यापारी को भेजा गया था, उस पर ६२७ रु० का खर्च आया था। महायुद्ध के बाद मल्कापुर की एक तेल मिल से २५० मन तेल पर, जोकि जयपुर के थोक व्यापारी को भेजा गया था, १,९४० रु० का खर्च आया था। इस प्रकार जबकि द्वितीय महायुद्ध के पहले ३ ४ रु० प्रति मन खर्च आता था, वहा युद्ध के बाद यह खर्च बढ़कर ७ ४ रु० प्रति मन हो गया। चूकि तेल का उपयोग अधिकतर खाना बनाने के लिए ही होता है और उपभोक्ता लोग अपने बर्तन स्वय रखते हैं, इसलिए उनको जो अधिक खर्च करना पड़ता है, वह एक प्रकार से उनके ऊपर बोझ ही है।

चूकि वस्तु को एक जगह से दूसरे स्थान पर भेजने में जो खर्च होता है, वह स्थान की दूरी तथा जिन एजेंसियों द्वारा यह कार्य किया जाता है, उसके अनुसार अलग–अलग होता है, इसलिए उत्पादक से लेकर उपभोक्ता तक की कीमतों में भी विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार विभिन्नताए पायी जाती हैं। महायुद्ध के पहले के विभिन्न उदाहरणों से यह प्रतीत होता है कि थोक मूल्य में उत्पादक का भाग ७० प्रतिशत से ८० प्रतिशत तक होता है और फुटकर मूल्य म ४३ से ४९ प्रतिशत तक होता है। युद्ध के बाद के समय में मूगफली के मूल्य म वृद्धि हो जाने के कारण उत्पादक के हिस्से में ८ से १४ प्रतिशत तक की वृद्धि हो गयी, जबकि अदाजा यह लगाया गया था कि उत्पादक लोग माल स्वय बाजार में ले जाते हैं, इसलिए नमी या कूड़ा–करकट इत्यादि के लिए किसी प्रकार की कमी नहीं की जाती है। इन सब तथ्यों पर विचार करने से यह पता चलता है कि द्वितीय महायुद्ध के पहले उत्पादकों का हिस्सा ६० से ७५ प्रतिशत से अधिक नहीं था या मोटे तौर पर यह कह सकते हैं कि थोक विक्रय मूल्य में ६६ प्रतिशत और फुटकर

जा सकता है। इसके अलावा अन्य तथ्य जो तेल के उत्पादन पर प्रभाव डालते हैं, वे हैं—नमी, कूड़ा-करकट जैसे मिट्टी या अन्य चीजें, अन्य बीजों की मिलावट, गूदा और छिल्के का भाग तथा स्नेहाम्ल का प्रतिशतक। व्यापारिक नाम देकर ही अलग-अलग किस्में बनायी गयी हैं, उसके निर्धारण के लिए कोई निश्चित माप नहीं है। साथ ही साथ भारत में इस व्यापार में कोई रासायनिक परीक्षण भी नहीं होता। गूदे और गुठलियों के मूल्य का निर्णय, उसके आकार, उत्पादन के स्थान तथा प्रत्यक्ष रूप से कचरा और नमी का निर्धारण हो जाने के आधार पर किया जाता है। बिना किसी विशेष व्यवस्था के उसी स्थान पर नमूना ले लिया जाता है। इसका भाण्डारीकरण कच्ची गोदामों, कारखानों के खुले मैदानों तथा रेलवे माल स्टेशनों पर असन्तोषजनक स्थिति में किया जाता है।

अ) मूंगफली – गावों में मूंगफली उत्पादकों के घरों और दूकानों में इकट्ठी की जाती है, जबकि मण्डियों और कारखानों में इस कार्य के लिए छप्पर, गोदाम तथा खुले मैदान का प्रयोग किया जाता है। बन्दरगाहों तथा रेलवे स्टेशनों पर भी खुले मैदान में माल रखा जाता है।

आ) तिल – यद्यपि उत्पादक क्षेत्रों में तिल का श्रेणीकरण नहीं किया जाता, परन्तु व्यापार में रंग और प्रकार की पृथक्ता (डिफ्रेंशियन) के आधार पर उनका श्रेणीकरण किया जाता है। परन्तु न तो बीज के लिए और न तेल के वर्गीकरण के लिए ही कोई मानक तैयार किया गया है। अन्य वानस्पतिक तेलों की भांति तिल के तेल में भी अलसी और मूंगफली के तेल की मिलावट होती है। 'आग मार्का' का प्रमाण देने को कहा गया है, पर इसके अनिवार्य न होने के कारण कुछ अधिक लाभ नहीं हुआ है।

अधिकतर बीज का ही संग्रह किया जाता है। विभिन्न पदार्थों से बनाये गये विभिन्न आकार-प्रकार के बर्तनों में बीज का संग्रह किया जाता है। गांवों में संग्रह के लिए मिट्टी का बर्तन काम में लाया जाता है, जबकि मण्डियों तथा वितरण बाजारों में बीज को बोरों में भरकर गोदामों में रखा जाता है। हैदराबाद में अन्वेषण करने से पता चला है कि झींगुर तथा अन्य फसल को नष्ट करनेवाले विनाशक कीटों के कारण प्रतिमन पीछे तीन माह के अन्दर आधा सेर से एक सेर तक छः माह में एक सेर से दो सेर तक तथा बारह महीने में एक सेर से तीन सेर तक बीज नष्ट

हो जाता है । भली प्रकार से निर्मित गोदामों में भी यह नुकसान ह ' माह में एक मन पर डेढ़ सेर तक हो ही जाता है । यदि फसल काटते समय किसी प्रकार की कमी रह गयी हो तो यह नुकसान दुगुने के करीब हो जाता है । द्वितीय महायुद्ध के समय से गोदाम खर्च भी बहुत बढ गया है। उदाहरण के तौर पर आन्ध्र के राजमुद्री में यह खर्च ५४ पाइ प्रति मन से २४६ पाई प्रति मन हो गया। तेल को पीपों और मिट्टी के तेल के टिनों में रखा जाता है, परन्तु ये पीपे और टिन देखने में अच्छे नहीं होते ।

इ) **राई और सरसों** – अक्सर खेतिहर लोग अपने उत्पादन को मिट्टी के बर्तनों, टोकरियों तथा टिनों में या बांस के बने बरतनों में, जिनके ऊपर मिट्टी लगायी रहती है, रखते हैं । मंडियों में व्यापारी लोग इसे बोरों में भर कर गोदामों में रखते हैं । गोदामों की बनावट अच्छी न होने के कारण अधिकतर माल खराब हो जाता है । रेलवे स्टेशन और तेल मिलों की गोदामें गांव के भाण्डारी–करण के तरीकों से अच्छी हैं। भाण्डारीकरण के लिए अलग–अलग बाजारों में अलग–अलग भाव या दरें होते हैं । द्वितीय महायुद्ध के पहले भाण्डारीकरण का खर्च दो पाई प्रतिमन था, परतु अब इस दर में २०० प्रतिशत की वृद्धि हो गयी है ।

ई) **अलसी** –इस व्यापार में छोटे और बड़े बीज आदि का कोई वर्गीकरण नहीं किया गया है । वर्गीकरण के लिए कोइ मानक भी नहीं बनाया गया है । इसके नमूने निकालने के तरीके भी अलग–अलग हैं । चूंकि साफ–सुथरे तिलहन पर भी बाजार में रिवाज के अनुसार बीजों में खराब बीज के लिए कटती कर दी जाती है, इसलिए इसके उत्पादकों को कोइ प्रोत्साहन नहीं मिलता कि वे अपना माल साफ रखें । इसके साथ बोने के लिए जितने बीज की आवश्यकता होती है, उससे अतिरिक्त किसान लोग अधिक समय तक माल नहीं रखते । वे अपने घरों में माल रखते हैं, जबकि मिलें और बन्दरगाह हमेशा गोदामों में रखते हैं । माल रखने का यह गलत तरीका अक्सर पाया जाता है । केवल झींगुर या कीटाणु ही नहीं, बल्कि चूहों और पानी से भी इसे बहुत नुकसान पहुंचता है । अच्छे किस्म की अलसी अच्छी प्रकार से बनी गोदामों में ८ महीने से लेकर एक वर्ष तक अच्छी हालत में रखी जाती है । भाण्डारीकरण का खर्च १०० बोरे पीछे प्रति माह उत्तरी

भारत के बाजारों में २ रु० से ६.२५ रु० तक होती है, जबकि कलकत्ता तथा बम्बई जैसे बन्दरगाहों में १०० रु० से ०.२५ रु० तक प्रति बोरा पीछे होता है।

उ) शाण्टी – विभिन्न क्षेत्रों में एकत्रित किये हुए बीजों में कमी का प्रतिशतक दो से आठ प्रतिशत तक होता है। यह कमी खोखले बीज, मिट्टी, एकत्रित करने के खर्च, नुकसान तथा अपरिपक्व बीजों के कारण होती है।

यह भी पाया गया है कि निर्यातक तथा मिलवाले लोग मण्डी में ही तिलहन को बन्दरगाहों या पेरने के स्थानों पर भेजने से पहले ही साफ करा लेते हैं। बन्दरगाहों पर भी माल निर्यात करने के पहले साफ किया जाता है। साफ करने का खर्च खेत की बनिस्बत मण्डियों में अधिक होता है और बन्दरगाहों पर मण्डियों की अपेक्षा ऊंचा होता है। माल को साफ करने तथा श्रेणीकरण का काय ग्रामोद्योग स्तर पर ही होना चाहिए।

९ व्यापार को वित्तीय सहायता

माल एकत्र करने के लिए वित्तीय सहायता देने वाली एजेंसियां हैं—गांव के दूकानदार, थोक व्यापारी और उनके एजेण्ट, बैंक, सहकारी साख संस्थाएं। खेतिहरों के लिए वित्त का मुख्य स्रोत गांव का दूकानदार है, जो थोड़े समय की साख पर नकद रुपया या वस्तु के रूप में अग्रिम सहायता देता है और उस पर ब्याज लेता है। यह ब्याज मद्रास में १२ प्रतिशत से लेकर हैदराबाद में ३७ प्रतिशत तक होती है। थोक व्यापारी भी गांव के दूकानदारों के जरिये किसानों को उत्पादन के मूल्य का ५० से लेकर ३७ प्रतिशत अग्रिम रकम ८ से १२ प्रतिशत ब्याज पर दे देते हैं, जबकि दूसरी तरफ बैंक अपनी कार्यविधियां बड़े कस्बों और बड़े बाजारों तक ही थोक व्यापारियों को बाजार भाव के आधार पर पूरे मूल्य का ६० से ८० प्रतिशत तक रकम ७ से ८ प्रतिशत ब्याज की दर पर देकर ही सीमित रखते हैं। सहकारी समितियों की गतिविधि का जिक्र अगले पृष्ठों में किया जायेगा।

वितरण के लिए वित्तीय सहायता विभिन्न स्तरों पर आढ़तियों, थोक व्यापारियों, निर्यातकों, तेल मिलों वालों तथा शाफ लोगों द्वारा दी जाती है। आढ़तिये लोग निर्यातकों तथा थोक व्यापारियों से रकम प्राप्त करते हैं और

स्तु के मूल्य का ७० से ८० प्रतिशत तक ६ से ९ प्रतिशत ब्याज पर अग्रिम रूप में देते हैं । कुछ तेल मिलें भी निर्यातकों की तरह गाव के दूकानदारों तथा आढ़तियों को वित्तीय सहायता देती हैं । कुछ बैंक गोदामों में एकत्रित किये हुए माल के आधार पर भी कर्ज देते हैं । ये बैंक बाजार भाव के आधार पर अनुमानित मूल्य का ६० से ७० प्रतिशत तक रकम ५ से ८ प्रतिशत ब्याज पे ऊपर थोड़े समय की साख के आधार पर कर्ज के रूप में देते हैं । ये बैंक कुछ व्यापारियों और प्रतिष्ठानों को भी नकद रकम भी देते हैं । श्राफ लोग भी किसानों को ९ से १२ प्रतिशत ब्याज पर कर्ज देते हैं ।

१० व्यापार में सहकारी समितियों का कार्य

मूगफली के एकत्रीकरण और वितरण में सहकारी समितियों का बहुत कम हिस्सा रहता है । मद्रास, आंध्र, बम्बई, मध्य प्रदेश और हैदराबाद में कुछ ऋण तथा विक्रय सहकारी समितियां अपने सदस्यों को विक्रय आदि में सहायता देती हैं । मद्रास और आंध्र में नियमित साख योजना के अन्तर्गत कुछ सहकारी समितिया कार्य करती हैं, जबकि बम्बइ में शहरी और देहाती समितिया सहायता करती हैं ।

समस्या और सुझाव

अलसी व्यापार की जो स्थिति इस समय है, उसने निम्नलिखित समस्याओं को जन्म दिया है –

अ) बीज को रखने इत्यादि का खर्च अधिक होने के कारण किसान की आमदनी म कमी होती है और उपभोक्ता को अधिक मूल्य चुकाना पड़ता है

आ) किसान अपनी आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण स्वार्थी तत्वों के हाथ में पड़ जाते हैं,

इ) मूल्यों म भारी विभिन्नता,

ई) वस्तु का बुरी तरह श्रेणीकरण और भाण्डारीकरण,

उ) बाजार के झुकाव और उपभोक्ताओं की आवश्यकता के प्रति खेतिहरों की अनभिज्ञता ।

इन समस्याओं का समाधान वानस्पतिक तेल उद्योग में चार सूत्री कार्यक्रम अपनाने से हो सकता है । यह कायक्रम है— अ) विकेन्द्रीकरण, आ) सहकारी सगठन, इ) शिक्षा और ई) प्राथमिक उत्पादकों के लिए राज्य के कानून ।

अ) विकेन्द्रीकरण— खाद्य तेल उद्योग में कम से कम खाद्य तेल के उत्पादन तो अवश्य विकेन्द्रीकरण होना चाहिए । इसका नतीजा यह होगा कि विलुप्त एकत्रीकरण खर्च, वितरण खर्च तथा नुकसान, जो कि अधिक दूरी होने के कारण होता है, बिल्कुल समाप्त हो जायेगा, साथ ही साथ उत्पादकों के हिस्से में वृद्धि हो जायेगी तथा उपभोक्ताओं को इस समय जो मूल्य देना पड़ता है, वह भी कम हो जायेगा ।

आ) सहकारी सगठन —उद्योग का विकेन्द्रीकरण तभी प्रभावी हो सकता है जब कि उसका सगठन सहकारिता के आधार पर किया गया हो । उत्पादकों विधायकों तथा उपभोक्ताओं की सहकारी समितियों के निर्माण से तेल व्यापार की उत्पादन, वितरण तथा वित्तीय आदि कार्यविधियों में सहायता मिलेगी सहयोगात्मक प्रयत्न से ऊंची मूल्य विभिन्नता, मध्यस्थों द्वारा किसानों का शोषण तथा कमीशन एजेंसियों द्वारा अधिक लाभ की माग बिल्कुल समाप्त हो जायेगी तथा उत्पादकों और उपभोक्ताओं के साथ उचित व्यवहार की गारंटी दी जा सकती है ।

इ) किसानों का शिक्षण — किसान बाजार के झुकाव से बिल्कुल अनभिज्ञ रहता है, इसलिए वह फंस जाता है । वह यह भी जानता है कि सच्चे व्यापार का क्या फायदा होता है । कुछ बाजारू खबर और सामयिक समाचार व्यापारिक स्थिति का पता देते रहते हैं, जबकि बाजार की विस्तार सेवा उनकी अनभिज्ञता को दूर कर सकती है ।

ई) राज्य के कानून — इस व्यापार के पुनर्गठन में राज्य का हाथ भी मुख्य है । राज्य उत्पादन को फायदे के लिए भण्डारीकृत करने और बेचने का प्रबन्ध करने के लिए नियमित बाजार खोल सकता है । वह देश के हित के लिए निर्यात व्यापार को नियमित कर सकता है, इतना ही नहीं राज्य किसानों को भाण्डारीकरण के लिए सुविधाएं तथा वित्तीय सहायता प्रदान करके उनकी एकत्र करने की शक्ति में वृद्धि कर सकता है । यह आशा कि राष्ट्रीय सहकारी विकास गोदाम मण्डल तथा रिजर्व बैंक आफ इंडिया एवं अन्य सहकारी समितियों द्वारा देश में बनायी गयी गोदामों की श्रृंखला भारत के तेल उद्योग में व्याप्त बुराइयों को दूर करने में गतिशील कार्य करेगी ।

भाग २

ग्रामीण तेल उद्योग की अर्थव्यवस्था

अध्याय ४

ग्रामीण तेल उद्योग की अर्थव्यवस्था

तेल पेराइ पारंपरिक रूप से ग्रामोद्योग है और यह उद्योग गत शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश तक यानी जब तक मिलें शुरू नहीं हुई थीं, केवल तेलियों के ही हाथ में था। इन मिलों ने ७० से ८० वर्षों के अरसे में इस क्षेत्र में अपने पैर जमा लिये और ग्रामीण तेल उद्योग को नुकसान पहुंचाया। आजकल तेल-पेराइ मिलों और घानियों दोनों में की जाती है। मिलों में बड़ी मिलों से लेकर 'रोटरियों' तक कई तरह की इकाइयां होती हैं और घानियों में विभिन्न प्रकार की क्षमता रखनेवाली कई परंपरागत छोटी-बड़ी घानियां होती हैं।

अ) घानियां —सन् १९५१ की पशुगणना के अनुसार उस वर्ष देश में ४,४६,४३६ घानियां थीं। तालिका-३० में सन् १९५१ की राज्यवार घानियों का वितरण प्रस्तुत है। सन् १९५१ में जो घानियां मौजूद थीं, उनमें से २,४२,४३० घानियां ५ सेर या उससे भी ज्यादा तेल पेरने की क्षमता रखती थीं, जबकि २,०४,००६ घानियों में हरेक में ५ सेर से भी कम तेल पेरा जाता था। फिर भी इस संख्या में उस समय बिहार, उड़ीसा, जम्मू और काश्मीर तथा त्रावणकोर-कोचीन, अजमेर, कुर्ग और मणीपुर में जो घानियां थीं, उनकी संख्या का समावेश नहीं है। इस बात का विचार करने पर कि ये क्षेत्र भी तेल का उत्पादन करनेवाले हैं, घानियों की वास्तविक संख्या ४,४६,४३६ से कहीं ज्यादा रही होगी।

सन् १९५०-५६ में तिलहन पेराइ जांच-समिति ने ग्रामीण तिलहन पेराई उद्योग के प्रतिनिधियों से और पश्चिम बंगाल जैसे कुछ राज्य सरकारों से प्राप्त किये गये विवरण से पता चलता है कि घानियों की संख्या कम होती जा रही है

और वस्तुत चलनेवाली घानियों की संख्या सन् १९५१ की पशुगणना से निर्देशित की गयी घानियों की संख्या से कम है। यह सत्य अन्न और कृषि मंत्रालय द्वारा की गयी सन् १९५६ की पशु-गणना से स्पष्ट हो गया। सन् १९५६ की पशु-गणना के अनुसार जो अब तक आसाम राज्य को छोड़कर अन्य सभी राज्यों में की गई है, पता चलता है कि उस वर्ष ३,०६,६३७ घानियाँ थीं। यह मानकर कि सन् १९५६ में सन् १९५१ के समान आसाम में ८८५ घानियां थीं। घानियों की कुल संख्या ३,०७,२२२ थीं, जिनमें से ९५,५५९ घानियां हरेक ५ सेर से भी अधिक तेल पेरने की क्षमता रखती थीं और २,११,६६३ घानियां हरेक ५ सेर से कम तेल पेरने की क्षमता रखती थीं। (तालिका-३६ देखिये)

सन् १९५६ की पशुगणना का संकलन करने वाले अन्न और कृषि मंत्रालय ने गणनाधीन राज्यों और क्षेत्रों में सन् १९५१ में जो घानियां मौजूद थीं, उनकी संख्या का, राज्य पुनर्गठन के आधार पर उपयुक्त एकत्रीकरण से युक्त लेखा-जोखा रखा है। प्राप्त आंकड़ों से पता चलता है कि कुल घानियों की संख्या जो ४,४५,३२२ थी, वह केवल १,११४ के थोड़े से फर्क से सन् १९५१ की मूल गणना के आंकड़ों के समान ही है। फिर भी इन पांच वर्षों के अल्प काल में घानियों की संख्या में काफी कमी हो गयी है। यह संख्या जो पहले ४,४६,४३६ थी, घट कर ३,०७,२२२ हो गयी है।

इन परंपरागत घानियों के अलावा वर्धा पद्धति की तथा अन्य कई उन्नत-घानियां खादी और ग्रामोद्योग कमीशन, भारतीय केंद्रीय तिलहन समिति, कुछ राज्य सरकारों तथा रचनात्मक संस्थाओं के प्रयत्नों से देश के अनेक भागों में लगा दी गयी है। ऐसा अनुमान है कि केंद्रीय तिलहन समिति ने लगभग २,००० घानियों की स्थापना करने में सहायता दी।

तालिका-३७ के अनुसार खादी और ग्रामोद्योग कमीशन ने दिनांक ३१-३-१९५८ तक ४,००० वर्धा घानियों की स्थापना की है। खादी-ग्रामोद्योग कमीशन का उद्देश्य द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में देश भर में ५०,००० उन्नत घानियां स्थापित कर देने का है। कुछ राज्यों में लगायी गयी उन्नत घानियों में अत्यंत महत्वपूर्ण घानी नूतन घानी है, जो हासेल घानी का उन्नत रूप है तथा जो बम्बई ग्रामोद्योग प्रयोगशाला में बनायी गयी है और मद्रास की शक्तिचालित पिंटो चेकू घानी है।

फिर भी इन नये नमूनों की गणना संख्या को देखते हुए महत्वपूर्ण नहीं हैं ।

घानी की क्षमता और उत्पादन

ऊपर यह बताया जा चुका है कि सन् १९५१ की पशु–गणना के अनुसार करीबन २,४२,४३० घानियों की उत्पादन–क्षमता ५ सेर या उससे अधिक थी तथा २,०४,००६ घानियों की ५ सेर से भी कम की थी । मान लिया कि ५ सेर से कम उत्पादन क्षमता वाली घानियां की पेराइ क्षमता प्रति घान औसतन ३ सेर है और ३०० दिनों तक दिन में ऐसे ३ घान पेरे जाते हैं, ५ सेर से अधिक पेराइ क्षमतावाली घानियों में ७ सेर प्रतिघान और ३ घान प्रति दिन के हिसाब से ३०० दिनों तक पेरे गये । इसी प्रकार मान लिया कि केन्द्रीय तिलहन पेराई समिति द्वारा लगायी गयी वर्धा घानियां (१९६० घानियां) प्रति घान १० सेर की पेराई क्षमता रखती हैं और ऐसे ५ घान प्रति दिन पेराई करती हैं, तो ऐसी स्थिति में तिलहन पेराइ जांच समिति का अनुमान है कि ग्रामीण तेल उद्योग की कुल उत्पादन क्षमता लगभग १९,३७,०६४ टनों की है ।

किन्तु वस्तुत दो कारणों से इसे न्यूनानुमान माना जा सकता है –

१ प्रत्येक घानी की औसतन पेराइ क्षमता बहुत कम मानी गयी है ।

२ इस उत्पादन क्षमता में खादी और ग्रामोद्योग कमीशन द्वारा लगायी गयी ४,००० उन्नत घानियों से भी वृद्धि हुइ है ।

राज्यों की घानियों की उत्पादन क्षमता में तथा वे एक दिन में कितने घान पेरती हैं, इन दोनों बातों में पर्याप्त अन्तर । जब दिल्ली के बारे में राज्यवार घानियों के कार्य का निरीक्षण किया गया तो पता चला कि प्रतिदिन ८ से १३ घंटों तक घानी चलाकर और २ से लेकर ८ घान तक निकाल कर १८ सेर से लेकर ७५ सेर तक उत्पादन क्षमता की विभिन्नता पायी गयी, जैसाकि तालिका–३८ से प्रस्तुत है ।

आसाम, बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा और उत्तर प्रदेश को छोड़कर अन्य राज्यों में घानी की उत्पादन क्षमता प्रतिघान ५ सेर से भी अधिक है । उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक ही राज्य के विभिन्न क्षेत्रों की घानियों की उत्पादन क्षमता म भी विभिन्नता पायी जाती है । उदाहरण के लिए

देखा गया है कि बम्बई में ५ प्रतिनिधि केन्द्रों की विभिन्न प्रकार प्र
घानियां की उत्पादन क्षमता विभिन्न है, जब कि आंध्र में ३ प्रतिनिधि केन्द्रों
३ विभिन्न प्रकार की घानियां हैं। इस प्रकार की घानियां तालिका
बताये गये प्रतिनिधि केन्द्रों को निकटवर्ती कई जिलों में वितरित की गयी है
इसलिए किसी विशेष क्षेत्र की उत्पादन क्षमता पूरे राज्य की औसत पर
नहीं होनी चाहिए, वरन् विशिष्ट क्षेत्र की घानियों की औसत से
जानी चाहिए। उदाहरण के लिए सौराष्ट्र में पायी जानेवाली गु
घानी नजदीक के क्षेत्र में भी पायी जाती है, जब कि विशाखापट्टणम् (आंध्र प्रदे
के तटीय क्षेत्रों में सभी जगह पायी जा सकती है। क्षेत्रों के इस आधार
हिसाब करते हुए सन् १९५५-५६ की देश भर की प्रति मनुष्य दिन के आ
पर तेल उत्पादन क्षमता १९ ३ लाख टन से लेकर १३ घंटों तक के प्रति दि
वास्तविक कार्य के आधार पर २४ लाख टन मानी जा सकती है, जैसा कि तालि
२१ दिया गया है। यह ध्यान में रखकर कि सन् १९५१ में जितनी घानि
मौजूद थीं, उनका दो तिहाई हिस्सा ही सन् १९५५-५६ में रहा हो, तो भी
उत्पादन क्षमता काफी घटी जा सकती है।

मान लिया कि उन्नत घानियों की पेराई क्षमता प्रति घान १०
की है और इस प्रकार ३०० मनुष्य-दिनों तक प्रतिदिन ८
पेरे गये तो तिलहन समिति और खादी कमीशन की विभि
राज्यों में स्थित ६,००० उन्नत घानियां की पेराई क्षमता ८०,००० टन नि
की होगी। इसी तरह सभी मौजूदा घानियों की अधिकतम पेराई क्षमता
रूप से मनुष्य दिन के आधार पर २० लाख टन की और वास्तविक काय
य आधार पर २८ लाख टन की मान ली जा सकती है। इस बात का
करते हुए कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना में ८०,००० उन्नत घानियां देश में
करने की योजना बनायी गयी है तो यह मान लेना कोई असंगत न होगा कि घा
विभाग की कुल उत्पादन क्षमता निकट भविष्य में ही लगभग २७ से ३० ल
टन तक हो जायेगी।

चूंकि यह उद्योग देश भर में बिखरा हुआ है, इन घानियों का वास्त
तेल उत्पादन की क्षमता के बारे में कोई भी व्यापक सर्वेक्षण नहीं किया गया
इसीलिए घानियों द्वारा पेरे जानेवाले तिलहनों के प्रतिशत के आंकड़े उपलब्ध न

हैं। फिर भी मिलों द्वारा पेरे जानेवाले तिलहनों की राशि के कुछ अनुमान उपलब्ध हैं। तिलहन पेराई उद्योग जांच समिति द्वारा अनुमानित लेखे-जोखे के आधार पर घानियों तथा मिलों में पेरे जानेवाले तिलहन की राशि का प्रतिशत निम्नलिखित है (देखिए तालिका-४०)

इस समिति का अंदाज है कि वर्ष भर में ३७ लाख टन तिलहन पेरे जाते हैं। ऊपर बतायी गयी प्रतिशत राशि के आधार पर या दूसरे शब्दों में यह मानकर कि सामान्यत उपलब्ध तिलहन का लगभग ४० प्रतिशत घानी में पेरे जाते और ६० प्रतिशत मिलों में पेरे जाते हैं। सन् १९५५-५६ में लगभग १४ लाख टन तिलहन घानी में और २३ लाख टन मिलों में पेरे गये।

इसलिए घानियों का मौजूदा उत्पादन कार्यशील के ५० प्रतिशत के अंदर ही है। पेराई क्षमता तथा घानियों के वास्तविक उपयोग का प्रश्न जल्द ही एक व्यापक सर्वेक्षण की आवश्यता को स्पष्ट कर देता है।

लागत और रोजगारी

मिल विभाग से कुटीर विभाग में कम पूंजी लगती है और ज्यादा रोजगारी उपलब्ध हो सकती है। यह भी कहना अनुपयुक्त न होगा कि कुटीर विभाग में लगायी गयी निर्माण पूंजी करीब-करीब उपेक्षणीय ही है। अधिकांश घानियां स्थानीय लकड़ी या पत्थरों से स्थानीय कारीगरों द्वारा ही बनायी जाती हैं और जो कुछ थोड़ा खर्च आता है, वह स्थानीय संबंधित कारीगर व्यक्तिगत रूप से सह लेता है। दूसरे, देश के कई विभागों में ये घानियां खुली जगहों पर बिना किसी सायबान के ही लगायी जाती हैं, जबकि कई जगहों पर कृषि के बैलों का उपयोग पूरक रोजगारी के रूप में घानी के लिए भी कर लिया जाता है। रोजगारी के बारे में देखा जाये, तो कुछ तेलियों के लिए घानी चलाना पूरे समय का रोजगार है, जबकि कुछ तेलियों का यह आंशिक रोजगार है। कुछ घानियां किसानों द्वारा पूरक उद्योग के रूप में भी चलायी जाती हैं। तेल पेराई पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से एक पारिवारिक उद्योग है और प्रत्येक घानी चलाने के लिए औसतन १.५ व्यक्तियों की जरूरत होती है। यद्यपि कार्यरत लोगों की संख्या प्राप्त नहीं है, फिर भी सामान्य रूप से यह माना गया है कि तेलियों की संख्या में अभी कुछ वर्षों में कमी हो गयी है। भारत की सन् १९५१

की जनगणना के अनुसार १,८४,५८८ व्यक्ति, (घानियों में) तेल पेराई उद्योग में लगे हैं, लेकिन इस गणना में आंशिक समय में तेल पेराई करनेवालों की संख्या का समावेश नहीं किया गया है। यहां तक कि कर्वे समिति के अनुमान में भी आत्म-निर्भर व्यक्तियों की संख्या १५ लाख है, जिसमें उन लोगों को नहीं लिया गया है, जिनका तेल पेराई पूरक उद्योग है, इस बात का विचार करते हुए कि कुछ घानियां एक आदमी से चलायी जाती हैं, जब कि कुछ घानियों को चलाने के लिए १.५ से २ व्यक्तियों तक की जरूरत होती है तथा कई घानियां वर्ष के अधिकांश समय तक बेकार भी पड़ी रहती हैं। तिलहन जांच समिति ने अनुमान लगाया है कि औसतन ५ लाख व्यक्ति इस तेलघानी उद्योग में पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से काम करते हैं। अगर अनुमानित ३० लाख टन की क्षमता का पूरा उपयोग किया जाये, तो प्रति २ घानियों पर ३ व्यक्ति की औसत से लगभग ५ लाख व्यक्तियों का पोषण हो सकता है। इस प्रकार घानी मिल क्षेत्र से कई गुनी अधिक रोजगारी देने की क्षमता रखता है। घानी उद्योग की अपेक्षा मिल उद्योग के जरिये ज्यादा वेतन प्राप्त किया जा सकता है, यह धारणा भूखों मरनेवाले हजारों कारीगरों के लिए, जिन्हें रोजगारी की सख्त जरूरत है बहुत संतोषप्रद नहीं कही जा सकती।

तिलहन जांच समिति ने स्पष्ट रूप से अपने विचार प्रकट किये हैं—"भारत के विकासशील वर्तमान अवस्था में घानी उद्योग की रोजगारी देने की क्षमता का विचार करते हुए देश के कुल उपलब्ध स्रोतों का थोड़ा सा नुकसान हो जाने की संभावना होने पर भी इस उद्योग को हर तरह का प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।" समिति ने मान लिया कि मिल की खली की अपेक्षा घानी खली में तेल की प्रतिशत मात्रा अधिक होती है, जिससे इस खली में स्थित तेल का हम उपभोग न कर सकेंगे। फिर भी इससे विशेष हानि न होगी, क्योंकि जानवरों के लिए यह अच्छी खुराक है, जैसाकि इस भाग में अन्यत्र बताया गया है।

आ) तेल मिल

तेल मिल की व्याख्या की गयी है— 'शक्ति चालित यंत्रों से जहां तेल पेराई की जाती है, ऐसा स्थान'। भारतीय केन्द्रीय तिलहन समिति के अनुमान के अनुसार आज भारत में ८,२०१ तेल मिल हैं। तालिका-४१ और नकशा

२ से स्पष्ट है कि लगभग ८ हजार मिलों में से ५० प्रतिशत तेल, मिल उत्तर प्रदेश, पंजाब और बम्बई में स्थित है और इनका लगभग एक पञ्चमांश भाग मद्रास और आन्ध्र में है। ये मिलें विभिन्न आकार की हैं और इनमें छोटे तेलकशों (एक्सपेलर्स) से लेकर चरखियों (रोटरीज) तक की इकाइयां होती हैं।

(२) अधिष्ठापित क्षमता और उत्पादन —जो तेल मिल सन् १९५१ के कारखाना अधिनियम या उद्योग विकास पंजीकरण अधिनियम के अंतर्गत नहीं आतीं, उनका भी समावेश इस अनुमान में किया गया है। संगठित क्षेत्रों की अधिष्ठापित क्षमता के सही तथ्य उपलब्ध नहीं हैं, क्योंकि विभिन्न अनुमान संस्थाओं द्वारा ये अनुमान लगाये गये हैं। व्यापार और उद्योग मंत्रालय के विकास विभाग के अनुसार १७४ बड़े पैमाने के तेल मिलों की एक पाली के आधार पर जो म्याद तेल उत्पादन में लगे हैं, अनुमानित क्षमता, सन् १९५१ में ५८ लाख टन तेल की थी। विभिन्न यांत्रिक इकाइयों की क्षमता और काम के समय को मद्देनजर रखते हुए तिलहन पेराई उद्योग जांच समिति ने अंदाज लगाया है कि एक पाली के आधार पर मिलों की पेराई क्षमता ३०.८९ लाख टनों की है, जैसाकि तालिका-४२ से स्पष्ट है। योजना आयोग के अनुसार संगठित क्षेत्रों की कुल पेराई क्षमता ५६ लाख टन तिलहन पेरने की है। सम्भवतः यह अनुमान दो पालियों के आधार पर किया गया है।

जबकि मिलों की अधिष्ठापित क्षमता के अनुमान में भिन्नता हैं, इसके विपरीत इनके वास्तविक तेल उत्पादन के अनुमानों में काफी सादृश्य दिखायी देता है। अनुमान किया गया है कि सन् १९५४-५५ में मिलों ने २० से २२ लाख टन तिलहन पेरे, जबकि तिलहन जांच समिति का अनुमान २०.७ लाख टन तिलहन पेरे जाने का ही था। साधारण रूप से इससे पता लगता है कि एक पाली के आधार पर ६७ प्रतिशत पेराई क्षमता का उपयोग किया जाता है और कई मिल इकाइयां दो पालियां काम करके पेराई क्षमता का केवल ३७ प्रतिशत उपयोग करती हैं।

(३) पूंजी और रोजगारी —आज संगठित क्षेत्र में लगायी गयी पूंजी का कोई निश्चित अनुमान उपलब्ध नहीं है। लेकिन सन् १९५३ के कुछ उपलब्ध तथ्यों के आधार पर यांत्रिक इकाइयों की लगन पूंजी का पता चला है। सन् १९५३ की

कारखानों की गणना के अनुसार ८९६ पंजीकृत कारखाने में लगी निश्चित १,१२३ ७२ लाख रु० थी, जो इस प्रकार लगी हुई है —

१) भूमि ९२ २३ लाख रु०

२) भवन ३६६ ७४ लाख रु०

३) यंत्र और मशीन ६१२ ९२ लाख रु०

कारखानों में जो यंत्र और सरंजाम लगे हैं, वे सब अब पुराने हो गये और उनको फिर लगवाने का खर्च बहुत होगा, यद्यपि लगायी गयी पूंजी का निश्चित अनुमान नहीं किया गया है। संगठित क्षेत्रों द्वारा कितने लोगों रोजगारी दी जाती है, इसके निश्चित आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। केवल सन् १९ में की गयी कारखानों की गणना के अनुसार ९४७ पंजीकृत इकाइयों ४२,१९१ व्यक्तियों को उस वर्ष रोजगार दिया गया। तिलहन जांच समिति कई राज्य सरकारों को तेल-मिल उद्योग में दी जानेवाली रोजगारी के प्रस्तुत करने का अनुरोध किया है। कुल मिलाकर १४ राज्यों ने, जिनमें राज्य भी शामिल हैं, ये आंकड़े भेजे हैं, जिनके अनुसार अनुमानत ५४,१ व्यक्तियों को रोजगार दिया जाता है। इस रोजगारी में से ५० प्रतिशत बम्बई और हैदराबाद में दी जाती है। (तालिका-४३ देखिए)

चूंकि मिलों की वास्तविक रोजगारी देने की क्षमता के विश्वासप्रद उपलब्ध नहीं हैं, इसलिए इन मिलों की पूरी क्षमता का उपयोग करने से होनेवाली रोजगारी का अनुमान लगाना मुश्किल है। तालिका-४४ में घानी और मिल दोनों की पेराई तथा रोजगारी देने की क्षमता का विवरण प्रस्तुत है।

मिलों और घानियों की सबंधित कार्य-क्षमता

तेल पेराई —बीजों द्वारा प्राप्त होनेवाला तेल का उत्पादन कई बातों निर्भर रहता है, जैसे पेराई के समय बीज पर डाला गया दबाव, तिलहनों प्रचार तथा उनकी किस्में आदि।

ग्रामीण तेल पेराई पर एक आरोप खासकर मिलों द्वारा लगाया जाता कि यह प्रविधि बड़ी ही अकार्यक्षम और हानिकारक है। ऐसा कहना तो

सत्य को टालने का ही प्रयास है कि न तो सभी मिल पूरी तरह कार्यक्षम हैं और न सभी घानियां पूरी तरह अकार्यक्षम।

तिलहन जांच समिति द्वारा मिलों और घानियों की सबंधित कार्य-क्षमता के बारे में जांच की गयी। कानपुर की हाइकोर्ट बटलर टेकनालिजिकल इस्टीट्यूट (प्रायोगिक सस्था) ने समिति को तेल पेराई के निम्नलिखित आकड़े प्रस्तुत किये। (तालिका-४५ देखिए) अनतपुर (आंध्र) की तेल प्रायोगिक सस्था द्वारा तेलकशों (एकसपेलरों) चर्खियों (रोटरियों) और घानियों द्वारा प्राप्त होनेवाली खली का ३ वर्षों तक विश्लेषण कर उसके आधार पर तथ्य प्रस्तुत किये और उनकी समिति ने भी जांच की। इन तथ्यों में तेल की मात्रा, खली के वजन और उसमें ५ प्रतिशत नमी के आधार पर बतायी गयी है। विभिन्न तिलहनों के सभी प्रकारों को लेकर यह प्रतिशत यांत्रिक इकाइयों के बारे में ५७ और १२४ के बीच रहती है, जबकि घानियों में ७१ और १८४ के बीच रहता है। लेकिन इस बात का विचार करते हुए कि खली का वजन पेरे गये बीज का केवल ०६ ही होता है, तो यह फर्क और विस्तार बहुत ही कम है, जैसाकि तालिका-४६ से स्पष्ट है। कार्य-क्षमता की यह कमी उतनी ही है, जितना भेद देशी घानियों और मिलों की घानियों में है। किन्तु उन्नत घानियों का पेराई का प्रतिशत पुराने औजारों से अधिक है। भारतीय केन्द्रीय तिलहन समिति द्वारा किये गये प्रयोगों के अनुसार ये प्रतिशत मूगफली के बारे में तो ४१ ३४ प्रतिशत ऊंचा है। खली में तेल के परिणाम के बारे में किये गये, कानपुर हारकोट बटलर प्रायोगिक सस्था द्वारा प्रयोग भी बहुत महत्वपूर्ण है (देखिए तालिका-४७)। तिलहन जांच समिति ने वर्धा घानी को पुरानी घानी से अच्छा ही नहीं, वरन् उसे पुरानी घानी और मिलों के बीच की खाइ को पाटने वाली भी माना है।

घानी और मिलों के उत्पादन का अन्तर मिलों को दिये गये तिलहनों की राशि, उससे प्राप्त होनेवाले तेल तथा कच्चे माल और उत्पादन के लाने, ले जाने में, मिलों को जो काफी हानि उठानी पड़ती है, उस से और भी कम हो जाता है। यह नुकसान घानी में नहीं होता। केन्द्रित अर्थव्यवस्था में तिलहन तथा उससे तैयार माल का एकत्रीकरण और वितरण आदि करने में काफी समय लग जाता है और उसे काफी दूरी तय करनी पड़ती है। इस प्रकार परिवहन और समह

करने में हानि अवश्यम्भावी है। परिवहन में होनेवाले तिलहनों की राशि क सान के बारे में कोई विश्वसनीय आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं, लेकिन निःसंदेह यह सच है कि बीजों के खासकर छोटे आकार के बीजों के जैसे तिल राइ के परिवहन में इस प्रकार का नुकसान नहीं होता। दूसरे मिलों की यह है कि वे तिलहनों और तेल का संग्रह बहुत दिनों तक करते हैं। मूंगफली कुछ तिलहन परिवहन का भाड़ा बचाने के लिए छिल्के उतार कर भेजे जाते हैं। इससे बीज का कुछ अंश खराब हो जाता है और इससे उत्पादित तेल और के प्रकार में फरक आ जाता है। संग्रह में होनेवाले नुकसान का कुछ अन के तीसरे भाग के परिच्छेद १५ से प्राप्त किया जा सकता है।

तेल और खली का स्तर

मिल के माल के हस्तांतरण में संदिग्ध व्यापार व्यवहार की बड़ी गुंजाइश रहती है, जबकि बड़े पैमाने में होने से दुर्गंधि और अशुद्धता भी पैदा हो सकती है। मिलों में बहुतायत पैकिंग करने और लंबे फासले के परिवहन के होने से खाद्यान्न में मिलावट आदि असामाजिक प्रवृत्तियों को बढ़ने का अवसर मिल सकता है। इसके वि तेल घानी उद्योग अपनी विकेंद्रित व्यवस्था के कारण इस प्रकार की आर्थिक ताओं से मुक्त है और अधिकांश तेल या खली पारिवारिक या क्षेत्रीय आत्म-निर्भ लिए ही उत्पादित की जाती है। किसान अपने घरेलू उपयोग के लिए तिलहन बीज स्थानीय घानियों में पेरा सकते हैं और खली के स्थानीय उ के लिए तेली स्वयं तेल पेराई कर सकते हैं। इस प्रकार के तरीके से में होनेवाला नुकसान हस्तान्तरण में कुप्रवृत्तियां तथा स्तर के बनाये रखने परेशानी इस उद्योग से परे ही है। घानी क्षेत्रों में संग्रह करने की कोई आ होती नहीं है, क्योंकि प्रत्येक घर और प्रत्येक ग्रामीण सहकारी संस्था के पास बीजों के सामान्य संग्रह करने के लिए पर्याप्त जगह होती है।

खली तो गांव में तुरंत ही बिक जाती है। ग्रामीण लोग इसका अपने खाने के लिए और जानवरों के लिए तथा खाद के रूप में करते । की खली मिल की खली से संसार भर में अच्छी मानी जाती है। मैसूर केन्द्रीय खाद्य प्रायोगिक अनुसंधान शाला द्वारा घानी तेल के और एक्सपेलरों पेरे गये तेल के टिकाऊपन के संबंध में एकत्रित किये तथ्यों के अनुसार घ

तेल अधिक दिन तक टिक सकता है (तालिका–४८ देखिए)।

खली का भोजन तत्व

मिलों और घानियों द्वारा उत्पादित खली और तेल के भोजन तत्वों संबंधी वैज्ञानिक तथ्यों की आजकल बहुत ही कमी है। तेलहन जांच समिति की रिपोर्ट है कि महत्वपूर्ण अन्वेषण संस्थाओं, राज्य सरकारों तथा स्वास्थ्य-सेवा संस्था के सचनालय ने तेलों और खलियों के भोजन तत्वों के बारे में कोई तुलनात्मक अन्वेषण नहीं किया है।

फिर भी तेल के बारे में कुछ राज्य सरकारों की रिपोर्टों से मालूम होता है कि सामान्य मत के अनुसार घानी का तेल मिल के तेल से अधिक पोषक होता है। इस समिति ने यह भी विशेषता देखी कि यह सत्य है कि जहां तक घरेलू उपयोग का संबंध है लोग मिल के तेल की अपेक्षा घानी का तेल ही अधिक पसंद करते हैं। घानी तेल मिल के तेल से अच्छा होता है, इस बात का प्रमाण ही यह है कि लोग मिल के तेल में घानी का तेल मिलाकर उसे घानी-तेल के रूप में बेचते हैं तथा ग्राहक भी घानी के तेल के लिए मिल के तेल को साधारण रूप से सस्ता होने पर भी थोड़ा ज्यादा दाम देकर घानी का तेल ही खरीदना पसंद करते हैं।

इस समिति को एक साक्ष प्रायोगिक ने तथ्य प्रस्तुत किये हैं, जिसके अनुसार घानी-तेल में मिल-तेल की अपेक्षा विटामिन 'ई' थोड़ी सी अधिक मात्रा में होता है। इस समिति ने स्वीकार किया है कि घानी का तेल मिल के तेल से अधिक पाचनशील है और साधारण रूप से माना जाता है कि यह ज्यादा स्वादिष्ट भी होता है। घानी पेराई से ताजा और शुद्ध तेल मिलता है, इसे मिल वाले भी अस्वीकार नहीं कर सकते। इसलिए इस समिति ने मान लिया कि उपभोक्ताओं को उनकी जरूरत के अनुसार घानी का शुद्ध तेल जिसमें मिल के तेल का न मिला हो, उपभोक्ताओं को दिया जाये। समिति ने यह भी अनुरोध किया कि घानी का तेल बड़े पैमाने पर छाना जाना चाहिए। सामान्य रूप से निथरा हुआ तेल शुद्ध ही होता है और आवश्यकता रहने पर जहां सुविधाएं हो वहां सहकारी आधार पर यह काम करने के लिए छन्ने लगाये जायें, जिससे और अशुद्धी दूर करने में सहायता होगी।

जहां तक खली का भी प्रश्न है, वहां भी घानी की खली का ही पल्ड़ा

भारी है। इज्जतनगर की भारतीय पशु रोग सबंधी अन्वेषण संस्था द्वारा 'एक्सपेलरों,' घोलक पेराइ और घानियों द्वारा उत्पादित खली के भोजन तत्वों पर किये गये अन्वेषणों से पता चलता है कि 'विभिन्न खलियों के कुल पाचक पोषण तत्वों में कोई नहीं है।' लेकिन इस प्रकार की स्थिति में प्रयोगशालाओं में जहां परीक्षण के अंतर्गत जानवरों को संतुलित आहार सामान्यतः दिया जाता है, माना जा सकता है। विभिन्न पेराइ प्रविधियों द्वारा उत्पादित खली के भोजन तत्वों में बहुत भिन्नता नहीं है, लेकिन प्रयोगशाला के बाहर जानवरों के खाद्यान्न में अपर्याप्त पोषक तत्वों का पता आसानी से लग जाता है। यह तो सभी जानते हैं कि भारतीय जानवरों को पर्याप्त खाने को नहीं मिलता है। भूसी, घास या कुट्टी ही उनका प्रमुख भोजन होता है। उनमें आवश्यक कार्यशक्ति बढ़ाने के लिए जरूरी उत्तापक तत्व उत्पन्न करनेवाले घनीभूत तत्व उनके भोजन में नहीं होते हैं। इस प्रकार की कार्यशक्ति खली में स्थित अतिरिक्त तेल के परिमाण से प्राप्त की जा सकती है, जैसाकि कई आहारविज्ञों ने बताया है।

खली के पोषक तत्वों पर राज-पशु अनुसंधान शाला इज्जतनगर (उ प्र) के प्राणियों के आहार विभाग के प्रमुख अधिकारी तथा नयी दिल्ली के राजकीय कृषि अनुसंधान शाला के राजकीय कृषि रासायनज्ञ ने निम्नलिखित निरीक्षण किये हैं।

प्रथम महोदय ने लिखा है कि जानवरों को खली अगर अधिक परिमाण में नहीं खिलायी गयी थी वे ८ से १३ प्र० श० तक तेल हजम कर लेते हैं। दूध न देने वाले तथा १,००० पौंड वजन वाले जानवरों को ३ पौंड से अधिक और दूध देने वाले जानवरों को ५ पौण्ड से अधिक नहीं खिलायी गयी तो ८ से लेकर १३ प्रतिशत तक तेल जानवर हजम कर लेते हैं। (इनमें ८ से ११ प्रतिशत तक शक्ति चालित मिलों की तथा ११ से १३ प्रतिशत घानियों की खली में स्थित तेल जानवर हजम कर सकते हैं) इससे ज्यादा परिमाण में अगर जानवरों को खिलाया गया तो वे न केवल इसे हजम नहीं कर सकेंगे, बल्कि उनकी पाचन-क्रिया में विकृति उत्पन्न हो जायेगा। फिर भी उपरोक्त खलियों में से, जिसके नमूनों में १३ प्रतिशत से अधिक तेल हो, वह स्वाभाविक रूप से ही अन्य प्रतिशत वाली खलियों से अधिक भोजन तत्व देगी।

कृषिकारी रसायतज्ञ के मत में

"घानी की खली में स्थित तेल के अधिकतर खाद्यान के रूप में पचाली जाती है, वह बेकार नहीं जाती। यन्त्रों से पेरे तेल की खली से घानी की खली से घानी की खली में खाद्य तत्व अधिक मात्रा में होते हैं

"खली में पाचन करने लिए कितना तेल होना चाहिए, इसकी कोई निश्चित सीमा नहीं है। वैसे तो दले हुए तिलहनों को भी जानवर खाते हैं और वे इसे हजम कर लेते हैं, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए कि खाद्यान्न में तेल का कितना ही अंश हो वह हजम हो जायेगा। भोजन से अगर उचित परिमाण में दिया जाये, तो तेल बीजों में पाच्यांश गुणक ९५ प्रतिशत होता है। खली में तेलांश की उच्चतम सीमा जानवरों की जाति तथा उनकी उम्र पर निर्भर रहती है और निर्भर रहेगी भी। लेकिन खली में १५ प्रतिशत तेलांश का होना हानिकारक नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार ये दो प्रमुख सस्थाएं भी इसी सामान्य विश्वास की पुष्टि करती हैं कि जहां तक खाद्य तत्वों का संबंध है, मिलों की खली की अपेक्षा घानी की खली अच्छी होती है। इस दृष्टि से देखा जाये तो मिल की खली से घानी की खली अधिक दाम से बेची जाये तो कोई दोष की बात नहीं है। विभिन्न खलियों की कीमत की विभिन्नता और उनकी न्याय सगति सयुक्त-राष्ट्र अमेरिका की राष्ट्रीय बिनौले उत्पादन संस्था द्वारा तिलहन जांच समिति को भेजे गये पत्र में निहित है। पत्र यों है—

"अमरीका में मशीनों द्वारा तैयार की गयी खली या अन्य खाद्यानों की, जिनमें ३५ से ५५ प्रतिशत तेल होता है, कीमत यन्त्रों द्वारा निकाली गयी खली या अन्य कम तेल वाले खाद्यान्नों से अधिक होती है। आज भी मेम्फिस मंडी में इन दो नमूनों की खली और खाद्यान में २ शिलिंग प्रति टन की कीमत का फर्क है।

"कीमत में पड़नेवाले फर्क का पोषक मूल्य से कोई सबंध नहीं होता। कई राज्यों के महाविद्यालयों में बार-बार किये गये प्रयोगों से स्पष्ट हो जाता है कि इन दो नमूनों की खली या खाद्यान्न के भोजन तत्वों में कोई महत्वपूर्ण फर्क नहीं है। स्वाभाविक रूप से ही जिस नमूने से चरबी अधिक होती है, उससे जानवरों को अधिक मात्रा में कैलोरी मिलती है।"

भारी है । इज्जतनगर की भारतीय पशु रोग सबधी अन्वेषण संस्था द्वारा एक्सपलर, घोल्क पेराई और घानियों द्वारा उत्पादित खली के भोजन तत्वों पर किये गये अन्वेषणों से पता चलता है कि 'विभिन्न खलियों के कुल पाचक पोषण तत्वों में कोई अंतर नहीं है।' लेकिन इस प्रकार की स्थिति में प्रयोगशालाओं में जहां परीक्षण के अंतर्गत जानवरों को संतुलित आहार सामान्यतः दिया जाता है, माना जा सकता है। विभिन्न पेराई प्रविधियों द्वारा उत्पादित खली के भोजन तत्वों में बहुत भिन्नता नहीं है, लेकिन प्रयोगशाला के बाहर जानवरों के खाद्यान्न में अपर्याप्त पोषक तत्वों का पता आसानी से लग जाता है। यह तो सभी जानते हैं कि भारतीय जानवरों को पर्याप्त खाने को नहीं मिलता है। भूसी, घास या कुट्टी ही उनका प्रमुख भोजन होता है। उनमें आवश्यक कार्यशक्ति बढ़ाने के लिए जरूरी उत्तापक तत्व उत्पन्न करनेवाले घनीभूत तत्व उनके भोजन में नहीं होते हैं। इस प्रकार की कार्यशक्ति खली में स्थित अतिरिक्त तेल के परिमाण से प्राप्त की जा सकती है, जैसाकि कई आहारविज्ञों ने बताया है।

खली के पोषक तत्वों पर राज-पशु अनुसंधान शाला इज्जतनगर (उ प्र) के प्राणियों के आहार विभाग के प्रमुख अधिकारी तथा नयी दिल्ली के राजकीय कृषि अनुसंधान शाला के राजकीय कृषि रासायनज्ञ ने निम्नलिखित निरीक्षण किये हैं।

प्रथम महोदय ने लिखा है कि जानवरों को खली अगर अधिक परिमाण में नहीं खिलायी गयी तो वे ८ से १३ प्र० श० तक तेल हजम कर लेते हैं। दूध न देने वाले तथा १,००० पौंड वजन वाले जानवरों को ३ पौंड से अधिक और दूध देने वाले जानवरों को ५ पौण्ड से अधिक नहीं खिलायी गयी तो ८ से लेकर १३ प्रतिशत तक तेल जानवर हजम कर लेते हैं। (इनमें ८ से ११ प्रतिशत तक शक्ति चालित मिलों की तथा ११ से १३ प्रतिशत घानियों की खली में स्थित तेल जानवर हजम कर सकते हैं) इससे ज्यादा परिमाण में अगर जानवरों को खिलाया गया तो वे न केवल इसे हजम नहीं कर सकेंगे, बल्कि उनकी पाचन-क्रिया में विकृत उत्पन्न हो जायेगी। फिर भी उपरोक्त खलियों में से, जिसके नमूनों में १३ प्रतिशत से अधिक तेल हो, वह स्वाभाविक रूप से ही अन्य प्रतिशत वाली खलियों से अधिक भोजन तत्व देगी।

कृषिकारी रसायनज्ञ के मत में

"घानी की खली में स्थित तेल के अधिकतर खाद्यान्न के रूप में पचाली जाती है, वह बेकार नहीं जाती। यन्त्रों से पेरे तेल की खली से घानी की खली से घानी की खली में खाद्य तत्व अधिक मात्रा में होते हैं

"खली में पाचन करने लिए कितना तेल होना चाहिए, इसकी कोई निश्चित सीमा नहीं है। वैसे तो दले हुए तिलहनों को भी जानवर खाते हैं और वे इसे हजम कर लेते हैं, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए कि खाद्यान्न में तेल का कितना ही अंश हो वह हजम हो जायेगा। भोजन से अगर उचित परिमाण में दिया जाये, तो तेल बीजों में पाच्यांश गुणक ९५ प्रतिशत होता है। खली में तेलांश की उच्चतम सीमा जानवरों की जाति तथा उनकी उम्र पर निर्भर रहती है और निर्भर रहेगी भी। लेकिन खली में १५ प्रतिशत तेलांश का होना हानिकारक नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार ये दो प्रमुख संस्थाएं भी इसी सामान्य विश्वास की पुष्टि करती हैं कि जहां तक खाद्य तत्वों का संबंध है, मिलों की खली की अपेक्षा घानी की खली अच्छी होती है। इस दृष्टि से देखा जाये तो मिल की खली से घानी की खली अधिक दाम से बेची जाये तो कोई दोष की बात नहीं है। विभिन्न खलियों की कीमत की विभिन्नता और उनकी न्याय संगति संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका की राष्ट्रीय बिनौले उत्पादन संस्था द्वारा तिलहन जांच समिति को भेजे गये पत्र में निहित है। पत्र यों है—

"अमरीका में मशीनों द्वारा तैयार की गयी खली या अन्य खाद्यान्नों की, जिनमें ३.५ से ५.५ प्रतिशत तेल होता है, कीमत यन्त्रों द्वारा निकाली गयी खली या अन्य कम तेल वाले खाद्यान्नों से अधिक होती है। आज भी मेम्फिस मंडी में इन दो नमूनों की खली और खाद्यान्न में २ शिलिंग प्रति टन की कीमत का फर्क है।

"कीमत में पड़नेवाले फर्क का पोषक मूल्य से कोई संबंध नहीं होता। कई राज्यों के महाविद्यालयों में बार-बार किये गये प्रयोगों से स्पष्ट हो जाता है कि इन दो नमूनों की खली या खाद्यान्न के भोजन तत्वों में कोई महत्वपूर्ण फर्क नहीं है। स्वाभाविक रूप से ही जिस नमूने से चरबी अधिक होती है, उससे जानवरों को अधिक मात्रा में केलोरी मिलती है।"

तिलहन जांच समिति का कथन है कि तेल का अधिक प्रतिशत वाली खली से जानवरों को अधिक परिमाण में कैलेरी प्राप्त हो सकती है, जो वास्तव में इस देश की बड़ी महत्वपूर्ण जरूरत है। आज के जानवरों की असंतोषजनक अवस्था में कैलेरी की थोड़ी सी अधिकता उनके खाद्यान्न में काफी लाभप्रद होगी और विशेष रूप से गांवों में इसलिए यह आवश्यक है कि अधिक तेलवाली खली जानवरों को खिलायी जाये। इस संबंध में एक बात और विचारणीय है, वह है—घानियों में तिलहन पेरने से खली गांवों में ही रहती है और जानवरों को खिलायी जा सकती है। घानियां अगर ऐसे ही नष्ट होती गयीं जैसा गत कुछ वर्षों से होता जा रहा है, तो खली कस्बों में ही इकट्ठी हो जायेगी और उसे फिर से गांवों में लाना मुश्किल हो जायेगा। इसमें इसी बात की संभावना अधिक है कि यह खली गांवों में वापिस लौटने के बजाय खाद्य के रूप में बेची जायेगी या फिर निर्यात की जायेगी। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि ३८ प्रतिशत मिल की खली खाद के लिए ही काम में लायी जाती है, क्योंकि मिलों से इसे ग्रामीण क्षेत्र तक ले जाने में परिवहन खर्च बहुत होता है। भारत सरकार के पशुपालन आयुक्त ने इस संबंध में तिलहन जांच समिति को भेजे गये अपने संदेश में इसी बात की पुष्टि की है। आयुक्त ने लिखा है—

"ग्रामीण घानियों के पुनरावर्तन से देश के पशुओं को दो दृष्टि से सहायता पहुंचेगी—पहली बात यह है कि ग्रामीण घानी खली से पूर्ण रूप से तेल नहीं निकाल लेगी और जानवरों के लिए खली में अधिक पोषक तत्व छोड़ देता है। दूसरी बात यह है कि इस तरह के विकेंद्रीकरण से जानवरों के मालिकों को खली का मूल्यांकन करना आसान हो जायेगा, जबकि मशीनों द्वारा पेरी गयी पूरी खली का मूल्यांकन करना आसान नहीं होता।"

तेल पेराई उद्योग का अंतिम उद्देश्य उपयोगिता है, व्यापार नहीं। मनुष्यों और जानवरों द्वारा उपभोग किया जाना यह इसका प्रधान लक्ष्य है, जबकि व्यापार तो केवल उत्पादकों से ग्राहकों तक माल पहुंचाने का एक माध्यममात्र है। यदि ताजगी और शुद्धता व्यापारी प्रक्रियाओं में नष्ट हो गयी, तो उसका उपयोग ही क्या रहेगा। जहां इस प्राथमिक उद्देश्य की ही उपेक्षा होती है, उस उद्योग की सफलता के बारे में संदेह होता है। अगर मानवों और प्राणियों के भोजन की

शुद्धता ही वास्तविक उद्देश्य हो, तो उत्पादन क्षमता आधिक्य में न होकर पर्याप्त है।

उत्पादन की तुलनात्मक लागत और कीमतें

तिलहन उद्योग जाच समिति ने बताया कि अत्यत विश्वस्त अनुमान के अनुसार मिल और घानी द्वारा किये गये उत्पादन का तुलनात्मक औसत खर्च क्रमश ५ से ७ रु० और ९ से ११ रु० प्रतिमन है। बम्बई राज्य की ग्राम तेल उद्योग सरक्षण समिति (१९४८) के अनुसार मिल द्वारा और घानी द्वारा तेल पेरने के खर्च में केवल एक आध प्रति पौण्ड का अन्तर है। मिल में न्यूनतम पेराई खर्च ४१ पाइ और उच्चतम ८५ पाइ प्रति पौण्ड है। इसी प्रकार घानी से पेराई करने में न्यूनतम खर्च १५ पाइ और उच्चतम खर्च २२ पाई प्रति पौंड आती है। फिर भी तिलहन जांच समिति ने बताया कि मिल और घानी द्वारा तेल उत्पादन के खर्च म प्रति मन ४ से ५ रु० तक का अन्तर है। मिल द्वारा उत्पादित तेल इस हद तक सस्ता होता है। जहा तक तेल की बिक्री का सम्बध है, यह अनुमान लगाया गया है कि मिल तेल और घानी तेल के मूल्य में ५ से ७ रु० प्रति मन तक का अन्तर है। स्थानीय तौर पर प्राप्त तिलहन से मिल और घानी द्वारा पेरे गये तेल तथा उसी क्षेत्र में उसकी बिक्री कर देने के मूल्यों के अन्तर के विषय में कोई यथार्थ या सुतथ्य आकड़े प्राप्त नहीं हुए हैं, परन्तु जो विक्रय सबधित आकड़े अध्याय तीन में प्रस्तुत किये हैं, उनमें इनके मूल्यों म क्या अन्तर है उनके तथ्यों का भान हो जाता है। तिल का मूल्य विस्तार इसका उदाहरण है। (तालिका-२८-२९-अध्याय ३) वारगल के उत्पादक द्वारा मद्रास के तेली का भेजे गये एक मन तिल के सम्बध म तालिका-२८ में दिये गये अकों से पता चलता है कि तेली द्वारा दिये गये रु० २६.२५ में से रु० ८.२५ या करीब २५ प्रतिशत ढुलाई तथा वितरण खर्च है, जब कि तालिका-२९ म दिये गये आकड़ों से पता चलता है कि अगर मध्य प्रदेश में एक प्रारंभिक उत्पादक द्वारा एक मन बीज किसी मिल को भेजा जाये तो बीज की कीमत २६.२५ रु० आती है जिसम २.२५ रु० अर्थात करीब ८ प्रतिशत ढुलाई और वितरण खर्च आता है। यह सामग्री विभिन्न हाथों में जाने के कारण उत्पन्न

अधिक खर्च उनकी कीमत में वृद्धि कर देता है। इन्हीं सब कारणों से मिल के तेल और घानी के तेल के मूल्यों में अन्तर पाया जाता है। सहकारी समितियों का संगठन तेलियों को, तिलहन और तेल के इन मध्यस्थों को हटाकर प्राथमिक उत्पादक और उपभोक्ता के नजदीक लायेगा और इससे मूल्यों म जो इतना अंतर है, उसको कम करेगा।

यह दावा किया जाता है कि मिल विभाग मूल्य निर्धारक के रूप में काम करता है और उनकी अनुपस्थिति तिलहन उत्पादकों के लिए अहितकर है। यह भी कहा जाता है कि घानी पर काम करने वाले भाण्डारीय सुविधाओं की कमी के कारण यह काय नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त यह भी कहा जाता है कि मिलों की समाप्ति के कारण किसानों को बहुत अधिक असुविधा होगी, क्योंकि मिलों की अनुपस्थिति में फसल कटने के समय, जब कि किसानों को नकद पैसे की आवश्यकता होती है। अधिक मात्रा में माल खरीदने वाला कोई नहीं रहेगा।

परन्तु इस समय वित्त उपलब्ध कराने क सम्बध म जो राष्ट्रीय नीति अपनायी गयी है, उसके सम्मुख इस दलील पर मुश्किल से ही विश्वास किया जा सकता है। आखिरकार इस समय भी तो उत्पादकों को उनके तिलहन के बाजार मूल्य का ७५ प्रतिशत से अधिक नहीं मिलता। तेलियों की सहकारी समितियां तथा गोदाम निगम, मध्यस्थों को समाप्त कर और किसानों को उनके उत्पादन के मूल्य का एक बड़ा भाग देकर यह कार्य अच्छी तरह से कर सकते हैं। इस प्रकार गोदाम और विक्रय निगम के ऊपर स्वाभाविक रूप से यह दबाव पड़ेगा कि वे देश में भांडारीकरण आदि के लिए सुविधाएं प्रदान करें। इसमें मिल विभाग को, जिनके पास आज बहुत सी गोदाम हैं और जो मिलों को वर्ष भर का खर्च प्रदान करने के लिए तिलहन इकट्ठा करती है, जो विशेष गौरव प्राप्त है, वह निष्क्रिय हो जायेगा।

उसी प्रकार यह दलील भी बेकार है कि इस समय जितनी घानिया हैं, उनकी क्षमता इतनी कि अगर ये अपनी पूरी शक्ति भर भी काम करें, तो भी देश की आवश्यकता को भी पूरी नहीं कर सकतीं और मिल विभाग की क्षमता के उपयोग पर प्रतिबंध आर्थिक दृष्टि से हानिकारक होगा।

इसके पहले यह बताया गया है कि घानियों में इतनी क्षमता है कि वे २०

से ३५ लाख टन तिलहन पेर सकती हैं, जब कि इस समय वे केवल १४ लाख टन तिलहन की ही पेराइ करती हैं। यह कहने के लिए दलील देने की आवश्यकता नहीं है कि इस समय उनके द्वारा जितना तिलहन पेरा जाता है, इसके अतिरिक्त २० लाख टन तिलहन और पेरा जा सकेगा।

योजना आयोग के सुझाये गये आम उत्पादन कार्यक्रम के अनुसार खाद्य तिलहन घानी के लिए और अखाद्य तिलहन मिल के लिए सुरक्षित रखा गया है। उनके सुझाव के अनुसार मिलें, अपने इस समय के कार्यस्तर पर ही कार्य करेंगी और उनकी लागत पूंजी तथा उनके द्वारा प्रदान की गयी रोजगारी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। केवल कुटीर विभाग के उत्पादन में वृद्धि होगा।

मिल विभाग के लिए नियम

तिल और बिनौले के अलावा मिल उद्योग अपनी प्रस्थापित पेराई क्षमता का उपयोग सब तिलहनों के पेरने में कर सकता है। जहा तक तिल का सम्बन्ध है, उससे घरेलू खपत की पूर्ति घानियों द्वारा होनी चाहिए, जबकि वनस्पति अन्य उद्योग और निर्यात की तिल के तेल की पूर्ति मिल विभाग द्वारा जारी रखी जा सकती है। मिलों द्वारा इस तेल का उत्पादन कोइ अधिक नहीं है। सन् १९५४-५५ में केवल २३,६४२ टन तेल का उत्पादन मिलों द्वारा हुआ था। इसलिए उनके ऊपर प्रतिबंध लगाने से मिल उद्योग को कोई दिक्कत नहीं होगी। बिनौले की पेराई पर भी प्रतिबंध लगाने की आवश्यकता है। सन् १९५४-५५ में देश के १५ लाख टन के कुल उत्पादन में से केवल ५६,६८७ टन (उत्पादन का ४ प्रतिशत) ही पेरा गया था, जिसमें से ६,९३४ टन तेल निकाला गया था, जो १२ प्रतिशत था। अन्य तिलहनों से निकाले गये तेल की एक तिहाई की मात्रा के बराबर है। अगर बिनौले की पेराई के विकास पर कोइ प्रतिबंध नहीं लगाया गया, तो उससे दो खामियों पैदा होंगी। प्रथम तो कम मात्रा में तेल का निस्सारण होने के कारण तेल का उत्पादन कम होगा, दूसरे यह उद्योग पशुओं को उनकी बिनौले की खुराक से वंचित कर देगा। यहा पर यह कहा जा सकता है कि बिनौले पशु-पोषक वस्तुओं में एक मुख्य वस्तु है तथा इसमें से तेल की मात्रा है, उसमें इसके खाद्य तत्वीय मूल्य में वृद्धि होती है। बिनौले की जो अविवेक पूर्ण पिराइ होती है, उसमें पशुओं के विकास में रुकावट आती है। इसलिए जैसा

अधिक खर्च उनकी कीमत में वृद्धि कर देता है । इन्हीं सब कारणों से मिल के तेल और घानी के तेल के मूल्यों में अन्तर पाया जाता है । सहकारी समितियों का सगठन तेलियों को, तिलहन और तेल के इन मध्यस्थों को हटाकर प्राथमिक उत्पादक और उपभोक्ता के नजदीक लायेगा और इससे मूल्यों में जो इतना अतर है, उसको कम करेगा ।

यह दावा किया जाता है कि मिल विभाग मूल्य निर्धारक के रूप में काम करता है और उनकी अनुपस्थिति तिलहन उत्पादकों के लिए अहितकर है । यह भी कहा जाता है कि घानी पर काम करने वाले भाण्डारीय सुविधाओं की कमी के कारण यह कार्य नहीं कर सकते । इसके अतिरिक्त यह भी कहा जाता है कि मिलों की समाप्ति के कारण किसानों को बहुत अधिक असुविधा होगी, क्योंकि मिलों की अनुपस्थिति में फसल कटने के समय, जब कि किसानों को नकद पैसे की आवश्यकता होती है । अधिक मात्रा में माल खरीदने वाला कोई नहीं रहेगा ।

परन्तु इस समय वित्त उपलब्ध कराने के सम्बन्ध में जो राष्ट्रीय नीति अपनायी गयी है, उसके सम्मुख इस दलील पर मुश्किल से ही विश्वास किया जा सकता है । आखिरकार इस समय भी तो उत्पादकों को उनके तिलहन के बाजार मूल्य का ७५ प्रतिशत से अधिक नहीं मिलता । तेलियों की सहकारी समितियां तथा गोदाम निगम, मध्यस्थों को समाप्त कर और किसानों को उनके उत्पादन के मूल्य का एक बड़ा भाग देकर यह कार्य अच्छी तरह से कर सकते हैं । इस प्रकार गोदाम और विक्रय निगम के ऊपर स्वाभाविक रूप से यह दबाव पड़ेगा कि वे देश में भाडारीकरण आदि के लिए सुविधाएं प्रदान करे । इसमें मिल विभाग को, जिनके पास आज बहुत सी गोदाम हैं और जो मिलों को वर्ष भर का स्टाक प्रदान करने के लिए तिलहन इकट्ठा करती है, जो विशेष गौरव प्राप्त है, वह निष्क्रिय हो जायेगा ।

उसी प्रकार यह दलील भी बेकार है कि इस समय जितना घानियां हैं, उनकी क्षमता इतनी कि अगर ये अपनी पूरी शक्ति भर भी काम करें, तो भी देश की आवश्यकता को भी पूरी नहीं कर सकतीं और मिल विभाग की क्षमता के उपयोग पर प्रतिबंध आर्थिक दृष्टि से हानिकारक होगा ।

इसके पहले यह बताया गया है कि घानियों में इतनी क्षमता है कि वे ३०

से ३५ लाख टन तिलहन पेर सकती हैं, जब कि इस समय वे केवल १४ लाख टन तिलहन की ही पेराइ करती हैं। यह कहने के लिए दलील देने की आवश्यकता नहीं है कि इस समय उनके द्वारा जितना तिलहन पेरा जाता है, इसके अतिरिक्त २० लाख टन तिलहन और पेरा जा सकेगा।

योजना आयोग के सुझाये गये आम उत्पादन कार्यक्रम के अनुसार खाद्य तिलहन घानी के लिए और अखाद्य तिलहन मिल के लिए सुरक्षित रखा गया है। उनके सुझाव के अनुसार मिलें, अपने इस समय के कार्यस्तर पर ही कार्य करगी और उनकी लागत पूंजी तथा उनके द्वारा प्रदान की गयी रोजगारी पर कोइ प्रभाव नहीं पड़ेगा। केवल कुटीर बिभाग के उत्पादन में वृद्धि होगा।

मिल विभाग के लिए नियम

तिल और बिनौले के अलावा मिल उद्योग अपनी प्रस्थापित पेराइ क्षमता का उपयोग सब तिलहनों के पेरने में कर सकता है। जहां तक तिलें का सम्बन्ध है, उससे घरेलू खपत की पूर्ति घानियों द्वारा होनी चाहिए, जबकि वनस्पति अन्य उद्योग और निर्यात भी तिल के तेल की पूर्ति मिल विभाग द्वारा जारी रखी जा सकती है। मिलों द्वारा इस तेल का उत्पादन कोइ अधिक नहीं है। सन् १९५४–५५ में केवल २३,८४२ टन तेल का उत्पादन मिलों द्वारा हुआ था। इसलिए उनके ऊपर प्रतिबंध लगाने से मिल उद्योग को कोइ दिक्कत नहीं होगी। बिनौले की पेराई पर भी प्रतिबंध लगाने की आवश्यकता है। सन् १९५४–५५ में देश के १५ लाख टन के कुल उत्पादन में से केवल ५६,६८७ टन (उत्पादन का ४ प्रतिशत) ही पेरा गया था, जिसमें से ६,९३४ टन तेल निकाला गया था, जो १२ प्रतिशत था। अन्य तिलहनों से निकाले गये तेल की एक तिहाइ की मात्रा के बराबर है। अगर बिनौले की पेराई के विकास पर कोइ प्रतिबंध नहीं लगाया गया, तो उससे दो खामियाँ पैदा होंगी। प्रथम तो कम मात्रा में तेल का निस्सारण होने के कारण तेल का उत्पादन कम होगा, दूसरे यह उद्योग पशुओं को उनकी बिनौले की खुराक से वंचित कर देगा। यहां पर यह कहा जा सकता है कि बिनौले पशु-पोषक वस्तुओं में एक मुख्य वस्तु है तथा इसमें से तेल की मात्रा है, उसमें इसके जीवन तत्वीय मूल्य में वृद्धि होती है। बिनौले की जो अविवेकपूर्ण पिराइ होती है, उसमें पशुओं के विकास में रुकावट आती है। इसलिए ऐसा

कि समिति ने सुझाव दिया है, बिनौला पेराई उद्योग समूचे उत्पादन के २० प्रतिशत उत्पादन को पेरने की अनुमति प्रदान करनी चाहिए।

सीमा निर्धारण कार्यक्रम के क्रियान्वय में उनकी गतिविधियों और सरंजाम आदि पर नियंत्रण करना आवश्यक हो जाता है। समिति ने निम्नलिखित नियंत्रण का सुझाव दिया है।

अ) उत्पादन पर नियन्त्रण – तिल के अलावा अन्य तिलहनों की पेराई के लिए मिलों की इस समय की कार्यक्षमता के ऊपर नियंत्रण रखना चाहिए तथा घरेलू खपत के लिए इस तिलहन के लिए मिल द्वारा कोई कार्य नहीं किया जाना चाहिए।

बिनौले की पेराई, जैसा कि ऊपर बताया गया है, समूचे उत्पादन के २० प्रतिशत तक सीमित कर देनी चाहिए।

आ) मिलों द्वारा औजार तथा मशीनों के आयात पर प्रतिबन्ध – बिनौला पेराई उद्योग के अतिरिक्त तेल निस्सारण के लिए किसी मशीन का आयात नहीं किया जाना चाहिए। बिनौले पेराई उद्योग के लिए भी उसी हालत में मशीन का आयात किया जाना चाहिए। यदि समूचे देश में उत्पादन के २० प्रतिशत बिनौले की पेराई के लिए उनकी आवश्यकता है। जिन मिलों में बड़ा हाथ क्रियाओं का उपयोग किया जाता है, उन मिलों को समिति ने सुविधाओं का सुझाव दिया है। चूंकि इन हाथ क्रियाओं में कार्यकर्ता के लिए श्रम का अंश पाया जाता है, इसलिए समिति ने यह सुझाव दिया है कि हस्त-क्रिया द्वारा पेराई की क्षमता तक पेरने के लिए शक्ति चालित मशीन द्वारा प्रत्यावर्तन करना चाहिए।

इ) मिल तेल पर उत्पादन कर – इस समय मिलों द्वारा उत्पादित तेल पर एक आना प्रति मन के हिसाब से कर लगाया गया है। इसके अतिरिक्त निर्यात किये गये तिलहन पर दो आने प्रतिमन तथा मिलों में पेरे गये नारियल पर चार आने प्रति हंड्रवेट कर लगाया गया है। ये कर सन् १९४६ के विधेयक ११ (इण्डियन सेण्ट्रल आयलसीड कमेटी ऐक्ट) के अनुसार लगाये गये हैं। इन करों से जो आमदनी होती है, उसमें भारतीय केन्द्रीय तिलहन समिति की कार्यविधियों

को वित्तीय सहायता दी जाती है। इन करों से २२ लाख रु० सालानो की आमदनी होती है। जिसमें नारियल का अकेला हिस्सा सात लाख है। कर की दर के वृद्धि के प्रश्न पर मिल विभाग ने बहुत जोरदार विरोध किया, जब कि घानी विभाग ने वृद्धि करने के लिए वकालत की। तिल्हन जाच समिति ने यह विचार किया कि मिल के उत्पादन में कम खर्च होने के कारण मिल तेल पर और अधिक कर लगाने की गुजाइश हो सकती है। समिति ने मिलों के ऊपर कर लगाकर उनका उपयोग घानियों के लिए किया जाना ठीक न समझा। इसलिए उसने सुझाव दिया कि मिलों के ऊपर जो उत्पादन कर और अतिरिक्त कर लगाया जाये, वह सीधे केन्द्रीय खजाने में भेज दिया जाये और वहा घानी उद्योग की उन्नति के लिए जितने धन की आवश्यकता पड़े, लायी जाये। कमेटी ने पार्लियामेण्ट के इस सुझाव के प्रति भी सहमति प्रकट की कि मिल तेल पर २५ रु० प्रति मन उत्पादन कर लगाया जाये।

उद्योग के नियन्त्रण के लिए सगठन

इस समय उद्योग (विकास और पजीयत) अधिनियम (१९५१ के कानून न० ६५) खाद्य तेल उद्योग पर भी लागू होता है, परन्तु इसके अन्तगत बड़ी मिलें ही आती हैं। जैसा कि तेल जाच समिति ने सुझाव दिया कि छोटी मिलों को भी इस अधिनियम के अन्तर्गत लाना चाहिए। अब यह आवश्यक हो गया है कि समूचे उद्योग के ऊपर पूर्ण नियन्त्रण रखने के हेतु एक सगठन की स्थापना के लिए पारित करने की आवश्यकता है। इसके लिए तिल्हन जांच समिति ने सुझाव दिया कि खाद्य तिल्हन पेराइ उद्योग के नियन्त्रण की नियुक्ति के लिए एक अलग अधिनियम पारित करना चाहिए। एक विधि-विहित कार्यालय की स्थापना होनी चाहिए और उसको ये कार्य सुपुर्द करने चाहिए कि ये इस बात की सदैव ताकीद रखे कि कोई नयी मिल न खुलने पाये, मिलों की इस समय जो क्षमता है, उसमें किसी प्रकार की वृद्धि न हो तथा सिवाय निर्यात और वानस्पतिक उद्योगों की आवश्यकता के अतिरिक्त तिल मिलों द्वारा न पेरा जाये। इसके अतिरिक्त सरकार द्वारा मिल मालिकों को प्रदान आर्थिक सहायता और कर्ज स्थानान्तरण करना तथा मिल कार्यकर्त्ताओं को न्यूनतम सुविधा प्रदान करने का काम भी नियन्त्रक को सुपुर्द करना चाहिए। उसके अन्तर्गत क्षेत्रीय अधिकारी भी हो सकते हैं, जिन्हें समुचित अधिकार प्रदान किये जा सकते हैं।

अध्याय ५

घानियों से आमदनी

मद्रास राज्य में स्थानीय रूप से प्राप्त काले तिल को वर्धा नमूने की दो घानियों द्वारा एक महीने में पेरे जाने का अनुमान निम्नलिखित प्रकार से है। बीज, तेल और खली आदि के जो भाव दिये गये हैं, वे उस दिन अर्थात दिनांक १-३-१९५८ के हैं, जिस दिन यह नोट तैयार की गयी थी। तेल के मूल्य का निर्धारण फुटकर बिक्री के आधार पर किया गया है, जब कि खली का थोक व्यापार के आधार पर। उसी प्रकार अन्य चीजों का अनुमान 'वर्धा घानी की कार्यक्षमता' के अन्तर्गत दी गयी तालिका के आधार पर उस समय के स्थानीय बाजार के भाव से किया जा सकता (अध्याय ७)।

(अ) औजार और बैल –

दो घानिया अगर किसी स्वीकृत निर्माता केन्द्र से खरीदी गयीं, तो मूल्य का प्रतिशत सहायता के रूप में खादी ग्रामोद्योग कमीशन से प्राप्त किया जा सकता है।	रु०	६००-०-०
दो बैल—	,,	७००-०-०
अन्य फुटकर सामग्री—	,,	१५०-०-०
	रु०	१,४५०-०-०

(आ) वर्ष के लिए बीज की आवश्यकता — १८,७५०

(इ) आवश्यक क्षेत्र –

दो घानियों के लिए ओसारा	३२'×१६'×१०'
बीज इकट्ठा करने के लिए ओसारा तेल और खली रखने के लिए ओसारा तेल और खली के बिक्री के लिए ओसारा	बरामदा ३२'× ८'× ८'
बैलों के लिए (अलग) ओसारा	१०'×१०'×१०'

महीने में कार्य करने के दिन २५, एक दिन में कार्य करने के घंटे ८, एक घान के लिए बीज २० पौण्ड, ४ घान प्रति घानी के हिसाब से दो घानी के लिए ८ घान।

माहवारी खर्च –

	रु० आ० पा०
१६४ पौण्ड के प्रति बोरा पर रु० ६०) प्रति बोरा के हिसाब से ४,२६६ पौण्ड का मूल्य जिसमें से १० पौण्ड प्रति बोरा अर्थात २६६ पौंड घटाकर	१,५६१–०–०
२६ बोरे के लिए ८ आने प्रति बोरे की दर से गाड़ी भाड़ा	१३–०–०
कर २ प्रतिशत के हिसाब से २–प्रति बैल	३१–४–०
प्रति दिन के हिसाब को बैलों का खानगी खर्च	१२०–०–०
औजारों और मरम्मत तथा अवमूल्यन तथा बैलों का अवमूल्यन १० प्रतिशत के हिसाब से १,४५० पर	१२–०–०
घर भाड़ा	१५–०–०
निश्चित और चालू २,८०० की पूंजी पर ६ प्रतिशत की दर से व्याज	१४–०–०
आम खर्च	२५–०–०
डेढ़ पौण्ड प्रति घान के हिसाब ३०० पौण्ड गुड़* का दाम चार आने प्रति पौण्ड की दर से	७५–०–०
कुल खर्च–	१,८६६–४–०

[* गुड़ का मिश्रण एक प्रकार से पेरने की प्रक्रिया में ही सम्मलित है और इसमें तेली की आमदनी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि गुड़ का वजन खली के साथ मिल जाता है और खली तथा गुड़ का वजन करीब बराबर ही है।]

माहवारी आय –

३८ प्रतिशत तेल भाग के हिसाब से १,५२० पौंड तेल का जिसमें से २५ पौंड प्रतिमाह गायब हो जाने के लिए छूट दी गयी है, मूल्य १ रु० प्रति पौंड की दरसे	१,४९५००

२,८०० पौण्ड खली से आमदनी, जिसमें से ५ प्रतिशत अर्थात १४० पौण्ड सुखान की छूट दी गयी अर्थात २,६६० पौण्ड का रु० ३,८२७ आने की दर से पौण्ड के प्रतिमन के हिसाब से	४७८–००
कुल आय	१,९७३–००
कुल आय	१,९७३–००
कुल खर्च	१,८६६–००
	१०६–१२–०

बीज को साफ करने और पेरने का खर्च इसमें नहीं जोड़ा गया है, क्योंकि घानी का काम तेली और उसके परिवार द्वारा किया जाता है। इसीलिए घानी को 'पारिवारिक पेशे' का नाम दिया गया है, जिससे परिवार के आदमी को रोजगार मिलता है।

तेली परिवार की कमाई

पिछले अध्यायों में घानी उद्योग का राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में क्या स्थान है, यह बतलाने का प्रयत्न किया गया था। घानी उद्योग के विकास की नींव का सच्चा शिलान्यास तभी किया जा सकता है जब तेलियों का व्यक्तिगत परिवार न्यूनतम जीवन स्तर प्राप्त करने के लिए आवश्यक आमदनी कमाने की शक्यता प्राप्त कर ले। इस समय जो आंकड़े प्राप्त हैं, उनसे कोई सच्चा अनुमान नहीं लगाया जा सकता, कि पारम्परिक घानी पर तेली की वास्तविक आमदनी क्या है। ग्रामीण तेल उद्योग के क्षेत्रीय कार्यकर्ताओं की सूचनाओं पर आधारित जो अनुमान लगाया गया है,—उससे पता चलता है कि आज के तेली की अवस्था सतोषजनक नहीं है। घानी उद्योग के पुनरुत्थान के लिए यह अनिवार्य है कि उद्योग का आयोजन इस प्रकार किया जाये, जिससे तेली उतनी आमदनी अवश्य प्राप्त कर सकें, जो न्यूनतम जीवन स्तर के लिए आवश्यक है। यह अनुमान लगाया गया है कि पांच व्यक्तियों के एक परिवार के न्यूनतम जीवन स्तर के लिए रु० १८०० सालाना की आमदनी आवश्यक है, जैसा कि नीचे की तालिका में दिया गया है —

मद	दैनिक आवश्यकता	अनुमानित मूल्य	योग
(अ) खाद्यान्न			
अनाज	८० औंस	३०० रु०	
दाल	२० ,,	५० ,,	
दूध	६० ,,	१८० ,,	
तरकारिया (हरी और अन्य)	४० ,,	२०० ,,	
तेल और चिकनाइ	८ ,,	२५० ,,	
फल	२० ,,	१०० ,,	
चीनी और गुड़	२० ,,	२० ,,	
मसाले		१०० ,,	१,२०० रु०
(आ) कपड़ा तथा अन्य पहनावे		२०० ,,	
(इ) स्वास्थ्य और दवा		२५ ,,	
(ई) मकान की मरम्मत तथा रख–रखाव		१७५ ,,	
(उ) बुढ़ापे के लिए बीमा		५० ,,	
(ऊ) शैक्षणिक किताबें आदि		५० ,,	
(ए) मनोरंजन		१०० ,,	६०० रु०
कुल योग			१,८०० रु०

इसलिए ग्राम तेल उद्योग के आयोजित कार्यक्रम के अंतर्गत तेली को इस स्थिति में होना चाहिए कि वह १,८०० रु० की आमदनी सालाना कर सके। अपनी उत्पादक क्षमता के सीमित होने के कारण पारंपरिक घानी इसके हिस्से के बराबर भी आमदनी नहीं करा सकती। फिर भी परीक्षणों से यह पता चला है कि अगर दो घानियों की एक यूनिट पर एक परिवार कार्य करे, तो १०० रु० प्रतिमाह से अधिक आमदनी प्राप्त कर सकता है। अध्याय ५ में इस प्रकार की इकाई के कार्य का विवरण दिया गया है। यद्यपि तालिका दी गयी है, वह अनुमानित ही है, परन्तु यह अनुमान देश के विभिन्न भागों में चल रही वर्धा घानी

२,८०० पौण्ड खली से आमदनी, जिसमें से ५ प्रतिशत अर्थात १४ पौण्ड सुगार की छूट दी गयी अर्थात २,६६० पौण्ड का रु० ३,८२५ आने की दर से पौण्ड के प्रतिमन के हिसाब से	४७८-००
कुल आय	१,९७३-००
कुल आय	१,९७३-००
कुल खर्च	१,८६६-००
	१०६-१२-०

बीज को साफ करने और पेरने का खर्च इसमें नहीं जोड़ा गया है, क्योंकि घानी का काम तेली और उसके परिवार द्वारा किया जाता है। इसीलिए घानी को पारिवारिक पेशे का नाम दिया गया है, जिससे परिवार के आदमी को रोजगार मिलता है।

तेली परिवार की कमाई

पिछले अध्यायों में घानी उद्योग का राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में क्या स्थान है, यह बतलाने का प्रयत्न किया गया था। घानी उद्योग के विकास की नींव का सच्चा शिलान्यास तभी किया जा सकता है जब तेलियों का व्यक्तिगत परिवार न्यूनतम जीवन स्तर प्राप्त करने के लिए आवश्यक आमदनी कमाने की क्षमता प्राप्त कर ले। इस समय जो आंकड़े प्राप्त हैं, उनसे कोई सच्चा अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि पारम्परिक घानी पर तेली की वास्तविक आमदनी क्या है। ग्रामीण तेल उद्योग के क्षेत्रीय कार्यकर्ताओं की सूचनाओं पर आधारित जो अनुमान लगाया गया है,—उससे पता चलता है कि आज के तेली की अवस्था सन्तोषजनक नहीं है। घानी उद्योग के पुनरुत्थान के लिए यह अनिवार्य है कि उद्योग का आयोजन इस प्रकार किया जाये, जिससे तेली इतनी आमदनी अवश्य प्राप्त कर सकें जो न्यूनतम जीवन स्तर के लिए आवश्यक है। यह अनुमान लगाया गया है कि पांच व्यक्तियों के एक परिवार के न्यूनतम जीवन स्तर के लिए रु० १८०० सालाना की आमदनी आवश्यक है, जैसा कि नीचे की तालिका में दिया गया है—

मद	दैनिक आवश्यकता	अनुमानित मूल्य	योग
(अ) खाद्यान्न			
अनाज	८० औंस	३०० रु०	
दाल	२० ,,	५० ,,	
दूध	६० ,,	१८० ,,	
तरकारियां (हरी और अन्य)	४० ,,	२०० ,,	
तेल और चिकनाई	८ ,,	२५० ,,	
फल	२० ,,	१०० ,,	
चीनी और गुड़	२० ,,	२० ,,	
मसाले		१०० ,,	१,२०० रु०
(आ) कपड़ा तथा अन्य पहनावे		२०० ,,	
(इ) स्वास्थ्य और दवा		२५ ,,	
(ई) मकान की मरम्मत तथा रख-रखाव		१७५ ,,	
(उ) बुढ़ापे के लिए बीमा		५० ,,	
(ऊ) शैक्षणिक किताबें आदि		५० ,,	
(ए) मनोरंजन		१०० ,,	६०० रु०
कुल योग			१,८०० रु०

इसलिए ग्राम तेल उद्योग के आयोजित कार्यक्रम के अंतर्गत तेली को इस स्थिति में होना चाहिए कि वह १,८०० रु० की आमदनी सालाना कर सके। अपनी उत्पादक क्षमता के सीमित होने के कारण पारंपरिक घानी इसके हिस्से के बराबर भी आमदनी नहीं करा सकती। फिर भी परीक्षणों से यह पता चला है कि अगर दो घानियों की एक यूनिट पर एक परिवार कार्य करे, तो १०० रु० प्रतिमाह से अधिक आमदनी प्राप्त कर सकता है। अध्याय ५ में इस प्रकार की इकाई के कार्य का विवरण दिया गया है। यद्यपि तालिका दी गयी है, वह अनुमानित ही है, परन्तु यह अनुमान देश के विभिन्न भागों में चल रही वर्धा घानी

की कार्यविधि के अनुभव के आधार पर किया गया है ।

तेली अपनी आमदनी में वृद्धि करने के लिए अपने धंधे के साथ ही साथ अतिरिक्त धंधे भी कर सकता है । तेल उद्योग से निकट सम्बंधित उद्योग जिसको तेली आसानी से कर सकता है ये, हैं— (१) साबुन बनाना, (२) केश तेल का निर्माण और (३) बिस्कुट बनाना । यह सूची तो केवल उदाहरण मात्र है । इसके अतिरिक्त अन्य उद्योग भी यदि कुटीर उद्योग के आधार पर करने के लिए स्थानीय तांत्रिक सुविधाएं प्राप्त हैं, इस सूची में सम्मिलित किये जा सकते हैं । ये अतिरिक्त उद्योग तेलियों की उन्नति का अच्छा मार्ग प्रस्तुत करते हैं, परन्तु दो कारणों से तेलियों द्वारा व्यक्तिगत रूप से इन अतिरिक्त उद्योगों को अपनाने में कुछ सीमाएं हैं । प्रथम कारण तो यह है कि इस प्रकार के उत्पादन की मांग, जो अभी हाल में ही प्रस्तुत की गयी है, सीमित है और कुछ परिश्रम करके नये बाजार का निर्माण करना होगा, जो एक तेली के लिए बहुत ही मुश्किल है । दूसरा कारण यह कि वस्तु के निर्माण में प्राविधिक मार्गदर्शन एवं उत्पादन की बिक्री व्यवस्था के अलावा इन उद्योगों के प्रारम्भिक काल में औजार इत्यादि के लिए काफी धन की आवश्यकता पड़ती है । इसलिए प्रत्येक परिवार इन अतिरिक्त रोजगारों को अपने ही बल पर नहीं अपना सकता । ग्राम समूह में स्थित इकाइयों का सहकारी संगठन इस प्रकार के उद्योगों को अपने हाथ में ले सकता है ।

क्षेत्रीय इकाइयों की सहकारी एजेंसी द्वारा अपनाये गये अतिरिक्त उद्योगों की आवश्यकता, उनके उत्पादन का खर्च तथा मूल्य का मोटा अनुमान नीचे दिया जा रहा है ।

यह अनुमान लगाया गया है कि तेलियों की एक सहकारी समिति को १५ सदस्यों की आवश्यकता है, जिसमें १० काम करने वाले तेली हों, जिनके पास २० उन्नत घानियां (१० इकाई) अवश्य हों । जब ये तेली तेल का उत्पादन और उसका वितरण जैसाकि अध्याय ५ में बताया गया है, करते हैं तो वे ऊपर सूचित अतिरिक्त उद्योगों को भी अपनी आमदनी में वृद्धि करने के लिए अपना लेते हैं। ०.७ औंस तेल प्रति व्यक्ति द्वारा प्रति दिन या ८.३ पौण्ड प्रति वर्ष उपयोग किये जाने के आधार पर ये २० घानियां २,००० जनसंख्या की आवश्यकता की

पूर्ति कर सकती हैं। इसके अलावा ये तेली इन अतिरिक्त उद्योगों के उत्पादन का कुछ भाग भी, जहां पर सम्भव हो, अपने खाली समय का उपयोग या अन्य परिवारों के परिश्रम द्वारा पूरा कर सकते हैं।

उपरोक्त क्षेत्रीय इकाई के उत्पादन की अनुमानित आवश्यकता का पूर्ण विवरण नीचे दिया जा रहा है –

१)	साबुन, ०.७५ पौंड प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष की दर से २०,००० की जनसंख्या के लिए	१५,००० पौंड
२)	केश तैल, ०.५० पौंड प्रतिवर्ष की दर से २०,००० की आबादी के लिए	१०,००० पौंड
३)	बिस्कुट १ पौंड प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष की दर से २०,००० की आबादी के लिए	२०,००० पौंड

चूंकि घानी उद्योग को तेली लोग पूरे दिन के कार्य के आधार पर अपनाते हैं, इसलिए शायद उनके लिए यह सम्भव न हो सके कि सहकारी समितियों द्वारा चलित इन अतिरिक्त उद्योगों में वे भाग लें और उत्पादन में सक्रिय सहयोग दे सकें। इसलिए सहकारी समितियां आवश्यक औजार खरीद कर अपने तीन चार सदस्यों को दे सकती हैं, जो अपने व्यापार के एक भाग के रूप में इन उद्योगों को अपना सकते हैं। ये सदस्य अपने किये गये कार्य के लिए नियमित पारिश्रमिक पाते हैं। समिति अपने खर्च आदि की पूर्ति के लिए इस पर १२½ प्रतिशत का लाभ लेगी, जिसमें कुछ प्रतिशतक सुरक्षित धन के लिए रख कर शेष रकम सदस्यों में उनके भाग के अनुसार वितरित कर दी जायेगी।

इन अतिरिक्त उद्योगों में घानी उद्योग तथा अन्य स्थानीय स्रोतों से प्राप्त स्थानीय कच्चे माल का उपयोग किया जा सकता है, जैसे दुर्गंधयुक्त तेल को शुद्ध करके साबुन बनाने में उपयोग करना, अच्छी खली का उपयोग बिस्कुट बनाने के एक उपकरण या अंश के रूप में करना।

इन उद्योगों में चालू पूंजी के अतिरिक्त भट्ठी कड़ाह, करछुल बड़े कड़ाह, सांचे, कतरनी, छापा लगाने की मशीन तथा बेलन इत्यादि के लिए स्थायी पूंजी

की आवश्यकता होती है, जिनकी कीमत १,५०० रु० के करीब होती है। चालू पूंजी का अनुमान साल भर के लिए कच्चे माल की आवश्यकता का एक तिहाई लगाया जा सकता है अर्थात् ४,००० रु० । इस प्रकार कुल जोड़ ५,५०० रु० होता है । यह विचार करते हुए कि तेलियों को उनकी हिस्सा-पूंजी के आधार पर आर्थिक सहायता मिलती है, यह अनुमान लगाया जा सकता है कि १५ सदस्यों के लिए प्राथमिक हिस्सा-पूंजी कम से कम १,५०० रु० अवश्य होगी । इस हिस्सा-पूंजी का आठ गुना १०,००० रु० से १२,००० रु० तक केन्द्रीय सहकारी बैंकों से प्राप्त करने के वे अधिकारी हो जाते हैं ।

निम्नलिखित विवरण से उद्योगवार प्रत्येक उद्योग के उत्पादन के अनुमानित खर्चे का ज्ञान हो जाता है । वास्तविक माग का केवल ५० प्रतिशत ही निम्नलिखित विवरण में लिया गया है —

उप-उद्योगों का आर्थिक पहलू —

(अ) साबुनसाजी —(७,५०० पौण्ड साबुन के उत्पादन के लिए)

१ कच्चा माल —

					रु० आ० पा०
१	तेल—नीम	२,५०० पौण्ड	१० आने	प्रतिपौण्ड	१,५६२— ८—०
	महुआ	१,२५० ,,	११	,,	८५९— ६—०
	अण्डी	३१२½ ,,	९	,,	१७५—१२—६
	खोपरा	६२५ ,,	१३	,,	५०७—१३—०
	रोजिन	३१२½ ,,	८	,,	१५६— ८—०
					३,२६१—११—६
२	कास्टिक	९३७½ ,,	८	,,	४६८—१२—०
३	नमक	२५० ,,		,,	७—१३—०
४	रग और सुगधी				१८७— ८—०
५	सैकत	१२५ ,,			१५—१०—०

६ ईंधन	१८७½ मन १–२–० रु० प्रतिमन	२१०–१५–०
७ पैकिंग आदि		२५०–० –०
		१,१४०–१०–०

२) मजदूरी खर्च १½ आना प्रतिपौण्ड की दर से ७,५०० पौण्ड के लिए	५८५–१५–०
३) अवमूल्यन १० प्रतिशत के हिसाब से १,५०० रु० पर	१५०– ०–०
४) बिक्री मूल्य पर १२½ प्रतिशत के हिसाब से कमीशन और विक्रय खर्चे	७५७–१३–०
५) मुनाफा	१६६– ६–०
	६,०६२– ७–६
१४ आने प्रति पौण्ड के हिसाब से ७,५०० पौण्ड साबुन का विक्रय मूल	६,०६२– ४–०

(आ) केश तैल (५,००० पौण्ड केश तैल उत्पादन करने के लिए)

१ कच्चा माल

१	तिल का तेल	५,००० पौण्ड	१–४–० रु०	प्रति पौण्ड	६,२५०– ०–०
२	ब्राह्मी	,, २५० ,,	१–८–० रु०	,,	३७५– ०–०
३	आवला	,, २५० ,,	०–८–० रु०	,,	१२५– ०–०
					६,७५०– ०–०

२ मेषज जड़ी-बूटी

कपूर	६२३/४	पोण्ड	
नचुपरियन	१८७३/४	,,	
फेग्रोचार	१२५	,,	
नागर	१२५	,,	
मोथा	११५	,,	
कचरी	१२५	,,	
बालचर	१२५	,,	६२५ पौंड

३	हरा रंग १२५ तोला, ५ आने प्रति तोला की दर से	३९- १-०
४	ब्राह्मी आयोग का सत्व	२५०- ०-०
५	ईंधन ३२५ मन, १-२-० रु० प्रति मन	३६५-१०-०
६	एक पाव की क्षमता के बुच सहित १०,००० बोतलों का मूल्य २१-८-० रु० प्रति ग्रूस की दर से	२,१८७- ८-०
७	पैकिंग और लेबल लगाना	२५०- ०-०
		३,७१७- ३-०

२	पारिश्रमिक खर्च ०-४-० रु० प्रति पोण्ड	१,२५०- ०-०
३	२,५०० रु० पर १० प्रतिशत की दर से अवमूल्यन	२५०- ०-०
४	विक्रय मूल्य पर १२१/२ प्रतिशत की दर से कमीशन और विक्रय खर्च	१,७१८-१२-०
५	मुनाफा	६४- १-०
	योग	१३,७५०- ०-०
	५,००० पोण्ड नेश तैल [illegible] २-१२-० प्रति पोण्ड की दर से कीमत	१३,७५०- ०-०

(ई) बिस्कुट –(१०,००० पौण्ड बिस्कुट के उत्पादन के लिए)

१ कच्चा माल

१ गहू का आटा ४,५०० पौण्ड, ३½ आने प्रति पौण्ड	९८४– ६–०
मूगफली की खली का आटा ५०० पौण्ड की दर से ४–८–० रु० प्रति मन (२५ पौण्ड का मन) की दर से	९०– ०–०
शक्कर ५,००० पौण्ड १० आने प्रति पौण्ड	३,१२५– ०–०
तेल २,५०० पौण्ड १० आने प्रति पौण्ड	१,५६२– ८–०
	५,७६१–१४–०

२ विविध

मसाले, पावडर तथा खमीर इत्यादि	१,२५०– ०–०
२ पारिश्रमिक तीन आने प्रति पौण्ड १०,००० पौण्ड के लिए-	१,८७५– ०–०
३ २,५०० रु० पर १० प्रतिशत की दर से अवमूल्यन	२५०– ०–०
४ विक्रय मूल्य पर १२½ प्रतिशत की दर से कमीशन और बिक्री खर्च	१,५६२– ०–०
५ मुनाफा	५५०–१०–०
कुल	११,२५०– ०–०

१०,००० पौंड बिस्कुट का १–२–० रु० प्रति पौंड की दर से बिक्री मूल्य ११,२५०–०–० रु०

लोगों की विक्रय शक्ति कम होने के कारण इन उत्पादनों की माग सीमित है, इसलिए तेलियों के लिए सभव नहीं हो सकेगा कि वे शीघ्र ही न्यूनतम जीवन स्तर प्राप्त कर सकें। परतु ज्यों-ज्यों ये उत्पादन बाजार प्राप्त करने में सफलता प्राप्त करते जायेंगे, त्यों-त्यों तेलियों की इसके अतिरिक्त आमदनी में वृद्धि होती जायेगी।

उपरोक्त अनुसूचित उद्योगों के अलावा, जिनको सहकारी समितियां संगठित करेंगी, तेलियों के परिवार दूध तथा घरेलू बागवानी इत्यादि का कार्य भी कर सकते हैं। न्यूनतम जीवन-स्तर की आवश्यकता के अनुसार एक परिवार के लिए १८० रु० के मूल्य का दूध तथा दूध से बनी वस्तुओं की जरूरत होती है। इन वस्तुओं को खरीदने के बजाय तेली दूध का काम कर सकते हैं। वे दूध बेचने के लिए गायें रख सकते हैं। तेली को दुधारू जानवरों को रखने में आसानी होती है, क्योंकि वह उन्हें खिलाने की सामग्री जैसे खली इत्यादी स्वयं पैदा करता है।

रसोई वाटिका

कुछ ही तेली या अन्य कारीगर ऐसे होते हैं, जो फल और तरकारियों का सेवन करते हैं। लोग रसोई वाटिका का काम करने लगें, तो अपने परिवार की तरकारियों की आवश्यकता की पूर्ति कर सकते हैं और उसके साथ उनके भोजन में जीवन-दायिनी तत्व की जो आवश्यकता होती है, वह भी मिलती रहेगी। इससे न्यूनतम जीवन स्तर के लिए (२०० तरकारियों के लिए) जो आवश्यकता है, उसमें भी सहायता मिलती है। दूसरे रसोई वाटिका के कार्य में लगने से ये लोग खेतों में डालने के लिए हरी खाद बनाने से परिचित हो जायेंगे। हरी खाद से जहां एक तरफ मिट्टी के उपजाऊपन में वृद्धि होगी, वहां साथ ही साथ उनके आस पास जमीन भी साफ-सुथरी रहेगी।

इन दो उप-उद्योगों से तेली वर्ष भर में कम से कम ३८० रुपये की आमदनी कर सकता है, जो कि न्यूनतम जीवन स्तर के लिए आवश्यक आमदनी का एक बड़ा हिस्सा है।

भाग ३

प्राविधिक पहलू

अध्याय ६

घानियों की प्रादेशिक किस्में

१ घानियों की किस्में और स्थानीय परिस्थितिया

भारत में उपलब्ध चार लाख घानिया एक ही आकार-प्रकार की नहीं हैं। आम तौर पर ये स्थानीय परिस्थितियों जैसे जलवायु सम्बन्धी परिस्थितिया, जोते जानेवाले पशुओं के आकार, पेराई किये जानेवाले तिलहनों की किस्में आदि के अनुसार अलग-अलग किस्म की होती है।

जहा वर्षा अधिक होती है, घानिया ओसारे में चलायी जाती हैं। यह तभी सम्भव है, जबकि वे थोड़े से क्षेत्रफल में चलायी जा सके। इसी कारण देश के उत्तरी और पूर्वी भाग में छोटे आकार की, एक बैल से चलनेवाली घानियां, प्रयोग में लायी जाती हैं, जबकि मद्रास में जहा वर्षा इतनी अधिक नहीं होती, बड़ी घानिया दो बैलों से, जो काफी बड़े क्षेत्र में चलती हैं, खुले स्थान में चलायी जाती हैं। इनमें से कुछ घानिया बहुत बड़ी हैं और प्रति घान काफी मात्रा में तिलहन पेरती हैं।

सिंध और उड़ीसा को छोड़ कर जहां क्रमश घानी चलाने के लिए ऊटों और भैसों को जोता जाता है, प्राय घानी चलाने के लिए बैलों का, प्रधान शक्ति के रूप में, प्रयोग होता है। बैल और ऊट चुस्त होते हैं, जबकि भैसा सुस्त। जहां बैल ताकतवार हैं जैसे पजाब, बम्बई और मद्रास में, वहां घानिया बड़ी हैं और जहां बैल कमजोर हैं जैसे उत्तर प्रदेश, बिहार, आसाम, बगाल और उड़ीसा में, वहा घानियां अपेक्षाकृत छोटी हैं। इस प्रकार इन स्थानीय परिस्थितियों के कारण देश में विभिन्न प्रकार की घानियों का उत्थान हुआ।

२ मिस्त्रियों का सगठन

कुछ अन्य विभिन्नताए भी हैं, जिन्हें स्थानीय आवश्यकताओं से उत्पन्न

नहीं कहा जा सकता । देश के कुछ भागों में घानी से बाहर बर्तन में तेल आने के लिए नलीदार घानियां बनायी गयी हैं, जबकि कुछ अन्य भागों में तेल घानी में कपड़े का टुकड़ा डुबोकर और फिर उसे बाहर बर्तन में निचोड़ कर तेल जमा करते हैं। कुछ घानियों में पिसनेवाले पुर्जों को बदलने योग्य बनायी जाती है, जबकि कुछ में इस प्रकार की व्यवस्था नहीं है और समय-समय पर घानी का मुख्य भाग ही उखाड़ कर बाहर निकाला जाता है । तथा चार या पांच वर्ष में सम्पूर्ण घानी ही बेकार हो जाती है । कुछ घानियों से खली निकालने के लिए मूसल को बाहर निकाला जाता है, जबकि कुछ घानियों से खली बिना मूसल को बाहर निकाले ही हटा ली जाती है । इन अन्तरों के अतिरिक्त केवल एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में ही नहीं, वरन् एक ही प्रदेश के अन्दर भी इसकी रचना-विधि में अनेक विभिन्नताएं पायी जाती हैं ।

इस विभिन्नताओं से केवल यही प्रकट होता है कि घानियों की विभिन्नताएं मात्र स्थानीय परिस्थितियों के कारण ही नहीं है । घानी बनाना एक विशिष्ट कला होने के कारण ये घानियां आज दिन तक ऐसे बढ़ईयों द्वारा बनायी जाती रही हैं, जो पेशेवर घानी बनानेवाले होते हैं जो जाति प्रथा के आधार पर काम करते हैं। कुछ गावों को वे अपना कार्यक्षेत्र बनाते हैं और वहां उनके स्थायी ग्राहक होते हैं, जिनसे वे निर्धारित मूल्य लेते हैं। ये कारीगर अपने परम्परागत रीति-रिवाजों को जानते हैं, जो पुश्त-दर-पुश्त से चले आ रहे हैं और सामान्यतः परस्पर बदले नहीं जाते। अधिकांश मामलों में परम्परागत नमूने निजी बढ़ई कारीगरों द्वारा कायम रखे जाते हैं, जो घानियों का उत्पादन अपनी अंगुलियों से माप कर करते हैं। इस रीति से नये कारीगरों को प्रशिक्षित करने की समस्या उपस्थित होती है और इसने पुराने कारीगरों की संख्या में भी कमी की है, जिसका परिणाम यह निकला कि घानियों की मरम्मत कठिन हो गयी है ।

३ प्रादेशिक घानियां

हम यहां संक्षेप में निम्नलिखित दशाओं की पृष्ठभूमि में, जो सामान्यतः एक उपयुक्त घानी बनाने में सहायक होती हैं, कुछ प्रादेशिक घानियों का समीक्षण कर रहे हैं –

अ) पेराई से प्राप्त तेल का प्रतिशत अधिक होना चाहिए,

आ) प्रति घान अधिक मात्रा में तिलहन खपाने की क्षमता होनी चाहिए,

इ) प्रति घान पीछे कम से कम समय लगना,

ई)-घानी चलाने में मनुष्य और बैलों की आवश्यक शक्ति का उपयोग न्यूनतम होना चाहिए और

उ) बड़ी मदों और मरम्मत पर खर्च कम होना चाहिए ।

(१) दक्षिण भारतीय घानी

यदि दक्षिण भारतीय घानी का सावधानीपूर्वक अध्ययन किया जाये, तो हमें मालूम होगा कि आम तौर पर यह अ), आ) और इ) के अन्तर्गत प्रथम तीन शर्तों के पूर्ण करने में सफल है, जबकि शेष दो ई) और उ) को पूर्ण करने में असफल। जैसा कि इस घानी का भार-पाट (लोड बीम) बहुत लम्बा होता है, इसलिए इस घानी के लिए १२ से १६ फुट तक की त्रिज्या के स्थान की आवश्यकता होती है। अतएव इस घानी को चलाने के लिए कम से कम दो व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ती है। एक बैलों को हाकने के लिए और दूसरा तिलहन पेरने के लिए। चूंकि भार-पाट बहुत लंबा होता है, इसे ओखल में एक कुंड में चलाया जाता है अन्यथा भार-पाट का ओखल के ऊपर से उठ जाना स्वाभाविक है। इसका परिणाम यह होता है कि भार-पाट खांचे के पार्श्व में रगड़ता रहता है, जिससे घर्षण उत्पन्न होता है और फलस्वरूप बैलों को अधिक श्रम पड़ता है तथा काफी शोर होता है। नली द्वारा तेल बाहर निकालने की भी कोई व्यवस्था नहीं है। इस घानी का कुंड बदलने योग्य नहीं बनाया गया, वरन् ओखल में बना कुंड ही घराई के काम आता है, जिसका परिणाम यह होता है कि प्रत्येक चार या पांच वर्ष चलाने के पश्चात पूरी की पूरी ओखल बेकार हो जाती है। चूंकि कुंड बड़ा हो जाता है, इसलिए प्रति घान की मात्रा बढ़ जाती है और साथ ही साथ तिलहनों पर पड़ने वाले दबाव में कमी होती है, जिससे घानी अनुपयुक्त बनती जाती है।

(२) गुजरात घानी

दक्षिण भारतीय घानी के समान गुजरात घानी भी अ), आ) और इ) के अन्तर्गत आनेवाली शर्तों को सामान्यत पूर्ण करती है, लेकिन शेष दो ई) और उ) को

पूर्ण करने में असफल रहती है। तिलहन कुंड में गिराने के लिए इसमें किसी स्वयंचालित विचालक की व्यवस्था नहीं है, इसलिए यह आवश्यक है कि तेली घानी का लगातार ध्यान रखे और फलस्वरूप वह एक समय में एक ही घानी की देख-रेख कर सकता है। खल्ला बनाने के लिए, जो तेली के बैठने के काम आता है, अतिरिक्त व्यय करना पड़ता है।

(३) पंजाब घानी

पंजाब घानी आ), इ) और उ) के अन्तर्गत आनेवाली शर्तों को पूर्ण करती है, जब तक शेष दो का अ) और ई) को पूर्ण करने में असफल रहती है। चूंकि इस घानी में खली की टिकिया मोटी होती है, पेराई प्रभावशाली नहीं है, इसलिए तेल की प्राप्ति कम होती है। इसी तरह प्रति घान में समय भी अधिक लगता है। स्वयं-चालित विचालक की बनावट में थोड़ा सुधार करने से एक आदमी एक ही समय में दो घानियां चलाने में समर्थ हो सकता है।

(४) बरार घानी

बरार घानी के सावधानी पूर्वक अध्ययन से पता चलता है कि यह घानी उपर्युक्त शर्तों में से उ) को छोड़ कर किसी को भी पूर्ण नहीं करती और उ) की स्वयं अ), आ), इ) और ई) से अलग कोई मूल्य नहीं है। इस घानी के कुंड की बनावट बड़ी बेढंगी है और इसलिए यह बेकार है। घानी में से तेल बाहर निकालने के लिए नली की व्यवस्था नहीं है और फलस्वरूप कपड़े के टुकड़े को कुंड में डुबो कर तथा उसे बाहर निचोड़ कर तेल प्राप्त किया जाता है। इस घानी में जुआं रखने सम्बन्धी व्यवस्था से बैलों पर भार अधिक पड़ता है।

(५) बंगाल घानी

बंगाल घानी, जो 'डायमण्ड हामर टाइप' के नाम से लोकप्रिय है, सरसों और नारियल के अतिरिक्त अन्य तिलहन पेरने के लिए उपयुक्त नहीं है। ऐसा पता लगा है कि एक समय में एक आदमी दो घानियां चला सकता है। एक घान में पांच से ७ घण्टे तक समय लगता है और प्रति घान में ४० पौण्ड तिलहन आता है। इसके लिए दो बैल रखना आवश्यक हो जाता है, क्योंकि एक लम्बे घान में बैल को श्रम से दुबारा दिलाना पड़ता है। घानी कुंड की रचना में मुख्य कमी यह है कि इसमें पेराई के लिए ज्यादा तिलहन नहीं रखा जा

सकना। मूसल का झुकाव केवल ७ अंश रहता है और इससे पड़नेवाला अधिकांश दबाव पेंदे पर पड़ता है, जहां बहुत कम पेराइ होती है। इस में बदलने योग्य भाग नहीं हैं, लेकिन पेड़ के मूसल का क्षतिग्रस्त भाग प्रत्येक बार काट दिया जाता है।

४) प्रादेशिक घानियों की कार्यक्षमता

नीचे लिखे स्थानों से प्राप्त विवरणों के आधार पर तयार की गयी निम्न तालिका से प्रादेशिक घानियों की कार्य क्षमता का मोटा-मोटा ज्ञान होगा। तुलना के लिए इन प्रादेशिक घानियों द्वारा पेरित तिलों के परिणामों को लिया है, क्योंकि केवल यही एक ऐसा तिल्हन है, जो देश के तमाम भागों में सामान्य रूप से पेरा जाता है।

क्र०	स्थान	तिल पौण्ड में	तेल पौण्ड में	तेल का प्रतिशत	प्रतिदिन घान	कार्य काल घण्टा
१	पंढरपुर (महाराष्ट्र)	९[illegible]	२४	२६	४	८
२	भद्रक (उड़ीसा)	४२	१३½	३१¼	३	९
३	बड़ा टागल (बंगाल)	५०	१६	३२	२	८
४	छपरा (बिहार)	३६	१२	३३	६	१२
५	कुमिल्ला (बंगाल)	५०	१७	३४	४	१२
६	चित्तूर (आन्ध्र)	१०८	३७½	३४¾	२	८
७	बिजनौर (उत्तर प्रदेश)	३८	१४	३६¾	४	१२
८	तिरुवन्नमलै (तमिलनाड)	१५१	५२½	३७½	५	८
९	जालंधर (पंजाब)	४०	१५	३७½	२	[illegible]
१०	भुसावल (खानदेश)	४३½	१७½	३९½	३	१०
११	साबरमती (गुजरात)	१००	४२½	४२½	५	८
१२	राजकोट (काठियावाड़)	११२	४९	४३¾	८	१३
१३	बम्बई	७२	३२	४४½	४	८
१४	कुड्डप्पा (आन्ध्र)	९०	४२	४६⅔	३	११
१५	कालिकट (मालाबार)	६७	३०	४८½	२	९
१६	पिठापुरम् (आन्ध्र)	३६	१८	५०	३	१०

उपर्युक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि एक दिन का तेल उत्पादन १० से ५२१ पौण्ड तक है और पेराई से प्राप्त तेल का प्रतिशत २६ से ५० तक रहता है। यदि प्राप्त विवरणों को अपूर्ण मानने से कुछ घट-बढ़ भी करें, तो भी यह तालिका इस बात पर जोर देती है कि सम्पूर्ण देश में घानी के स्तरीयकरण की आवश्यकता है।

अध्याय ७

वर्धा घानी

प्रादेशिक घानियों का अध्ययन और प्रयोग करने के पश्चात् अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ, मगनवाड़ी में, वर्धा घानी का आविष्कार किया गया।

वर्धा घानी

वर्धा घानी ऐसे ढंग पर बनायी गयी है, ताकि उसमें निम्नलिखित विशिष्ट बातें समाविष्ट हों —

अ) हिस्सों का प्रमाणीकरण,

आ) श्रम में कमी,

इ) पशु के आकारानुसार घानी की क्षमता में कमी-वेशी का प्रबंध,

ई) न्यूनतम पूंजी और आवर्तनीय खर्चे तथा

उ) इन सबके अतिरिक्त कार्यकुशलता।

(अ) पुर्जों का स्तरीयकरण

घानी में सुधार करने की दिशा में पहला काम घानी के आकार तथा इसके हिस्सों में कोई क्रमबद्धता स्थापित करना और साथ ही परम्परागत घानी में जो अच्छी बातें पायी जाती हैं, उन्हें भी इसमें संस्थापित करना था। जहां तक प्रामाणीकरण का सम्बन्ध है, वर्तमान घानियां एक अव्यवस्थित चित्र उपस्थित करती हैं, जैसा कि हम पहले देख चुके हैं। घानियों की बनावट में केवल एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में ही नहीं, वरन् एक ही प्रदेश में भी विभिन्नता पायी जाती है। ये विभिन्नताएं प्रति घानी की क्षमता या

दैनिक उत्पादन तथा पेराई में प्राप्त तेल की प्रतिशत पर ठोस रूप से प्रभाव डालती हैं।

कार्यकुशलता में सुधार करने के प्रश्न के अतिरिक्त प्रशिक्षित घानी कारीगरों की एक स्थायी टुकड़ी निर्मित करने तथा बदलने योग्य अतिरिक्त हिस्सों की पूर्ति करने के दृष्टिकोण से भी घानी आकार के प्रमाणीकरण का अपना महत्व है। अभिनव घानी ने इसे प्राप्त करने के लिए प्रयास किया है। इसमें किन्हीं सामान्य सूत्रों के आधार पर घानी के प्रमाणित नाप के विभिन्न हिस्से तैयार करना सम्भव कर दिया है, अभिनव घानी की, जो वर्धा घानी के नाम से लोकप्रिय है, मुख्य देन घानी में घानी कुंड की बनावट में सुधार करने के सम्बन्ध में है। इससे आगे वर्धा घानी में मार-पाट के सम्बन्ध में भी सुधार किया गया है, जिससे अब पशु पर पड़नेवाला श्रम कम हो गया है और मार-पाट से पड़नेवाले दबाव के प्रभाव को कायम रखते हुए मूसल की लम्बाई भी कम हो गयी है। मार-पाट का यह सुधारा हुआ आकार नूतन घानी की बनावट का सरल करने के पश्चात् अपनाया गया है।

(आ) श्रम में कमी

वर्धा घानी चलाने में अधिक आसान है। इसने मनुष्य और पशु दोनों पर पड़नेवाले श्रम को कम कर दिया है। स्वय चालित विचालक और तेल के लिए नली की व्यवस्था ने घानी पर काम करनेवाले व्यक्ति का श्रम कम कर दिया है। प्रत्येक घान के पश्चात् मूसल को अलग करना आवश्यक न होने के कारण मनुष्य पर पड़नेवाले श्रम में और भी कमी हो गयी है। स्वय-चालित विचालक की व्यवस्था हो जाने से और प्रत्येक घान के पश्चात मूसल को अलग करने की आवश्यकता न रहने से वे एक व्यक्ति के लिए एक ही समय में दो घानियों की देख-रेख करना सम्भव हो गया है। मूसल की टोपी में तथा खाचा मार्ग में बाल बियरिंग लगाने के कारण बैल पर पड़नेवाले श्रम में भी कमी हुई है।

(इ) पशु के आकारानुकूल घान-क्षमता में कमी-बेशी का प्रबंध उन विधियों की सहायता से, जो घानी के प्रमुख हिस्सों को बनाने में व्यवहृत हुई हैं। जैसे कुंड जिसमें तिलहन पेरे जाते हैं, जोते जानेवाले पशु के आकारानुसार

घानी की घान-क्षमता में कमी-वेशी करना सम्भव है। कुंड की ऐच्छिक क्षमता प्राप्त करने के लिए लम्बाई-चौड़ाई घटायी बढ़ायी जा सकती है। फिलहाल दो नमूने तैयार किये गये हैं। एक २० पौण्ड प्रति घान की क्षमता के लिए। इन विधियों की सहायता से और अधिक नमूने बनाने सम्भव हैं।

(इ) न्यूनतम पूजी आवर्तनीय खर्चे

एक घानी स्थापित करने में पूजी-लागत का तात्पर्य घानी ओसारा बनाने में होनेवाले खर्च से सम्बन्धित है। 'बाल बियरिंग' आदि की व्यवस्था होने की वजह से स्वयं घानी के मूल्य में यद्यपि कोई कमी नहीं हुई है, लेकिन संभाव्य न्यूनतम आकार का मूसल होने की वजह से घानी चलाने के लिए अब बहुत ऊंचे ओसारे की आवश्यकता नहीं रही। अब चूंकि घानी बदलने योग्य हिस्सों से युक्त होने के कारण पहले कुछ काल बाद, जो सम्पूर्ण घानी के बदलने में जो खर्च पड़ता था, उसमें अब कमी हो गयी है। बदलने योग्य हिस्सों से एक और भी लाभ है। फिर से खर्च होनेवाली लागत से बचने की दृष्टि से बदलने योग्य हिस्सों को न बदल कर भी घानी के घिस जाने के बाद भी तेली उसे चलाते रहते थे। इससे घानी की कार्यकुशलता कम हो गयी थी, जिसे अब घानी के बदलने योग्य हिस्से कायम रखने में समर्थ हैं।

(उ) श्रेष्ठ कार्यकुशलता

अभिनव वर्धा घानी का प्रमुख लाभ यह है कि इसने अपनी समस्त कार्यकुशलता में वृद्धि की है। प्रादेशिक घानियां एक या दो अंशों में अभिनव घानी की तुलना में आ सकती हैं लेकिन दूसरी बातों में वे बहुत पीछे हैं और इस प्रकार से उन्हें समग्र रूप में दोष-मुक्त नहीं कहा जा सकता। उपर्युक्त लाभ के अतिरिक्त अभिनव घानी के अन्य लाभ भी हैं। उदाहरण के लिए इसकी कार्य-कुशलता पेराई में प्राप्त तेल की प्रतिशत के सम्बन्ध में प्रति घान में लगनेवाले समय के सम्बन्ध में या दैनिक उत्पादन और पेराई के खर्च के सम्बन्ध में बढ़ गयी है। यह घानी के प्रमुख हिस्सों की बनावट में सुधार करके प्राप्त की गयी है।

वर्धा घानी की कार्यकुशलता

क्रमांक	तिलहन का नाम	घानी की प्रति घान (क्षमता पौण्ड में)	पेराई में प्राप्त तेल का प्रतिशत	प्रति घान में लगनेवाला समय (घंटों में)	
१	तिल	२०	४५ प्रतिशत	१ घण्टा	१५ मिनट
२	मूंगफली	२०	४५ से ४९ ,,	१ ,,	— —
३	नारियल	२०	५५ से ६२ ,,	—	४५ मिनट
४	सरसों मिश्रित	१५	३० ,,	१ ,,	३० ,,
५	सरसों विशुद्ध	१६	३० ,,	१ ,,	३० ,,
६	महुआ	१६	३५ ,,	—	४५ ,,
७	अण्डी	१८	४० ,,	१ ,,	— —

एक परिवार घानी से कितनी आय प्राप्त कर सकता है, इसकी जानकारी कराने के लिए अध्याय ५ में दो वर्धा घानियों की इकाई पर सामान्य पेराई का मासिक अनुमान दिया गया है।

Fig. No. 1

अध्याय ८

घानी रचना के सिद्धान्त

घानी के मुख्य हिस्से हैं (१) नाली और छिद्र सहित ओखल (२) बदलने योग्य कुंड, (३) मूसल, (४) मूसल की टोपी, (५) विचालक और (६) जुआ सहित भार-पाट (चित्र-१)

ओखल

घानी के लिए ओखल काष्ठ पत्थर या लोहे का बनाया जा सकता है। फिर भी फिलहाल बेकार पड़े काष्ठ या पत्थरों का उपयुक्त रूपान्तर करने के पश्चात् उन्हीं का उपयोग करना श्रेष्ठतर है। जहां कहीं ऐसी ओखलें प्राप्य नहीं हैं, वहां ये लोहे की भी बनायी जा सकती है, क्योंकि आवश्यक घनत्व का काष्ठ या पत्थर आसानी से उपलब्ध नहीं हैं और उनका यातायात-व्यय निषेधार्थक बन जाता है।

लंबाई, चौड़ाई और मोटाई

जमीन से ऊपर ओखल की ऊंचाई इतनी होनी चाहिए कि इस पर काम करते समय काम करनेवाले को अधिक झुकना न पड़े। इसके अतिरिक्त कुंड से इसकी झुकावदार नाली भी किसी सुविधाजनक ऊंचाई पर होनी चाहिए। इसलिए यह वांछनीय है कि भूमि की सतह से ऊपर यह २½ फुट ऊंची हो और पाट पर लगे हुए भार तथा मूसल के चलते रहने से पड़नेवाली ताकत को सहन करने में समर्थ करने के लिए इसे जमीन में करीब ३ फुट गाड़ना चाहिए। इस प्रकार ओखल बनाने के लिए आवश्यक लट्ठे की कुल लंबाई करीब ५½ फुट होगी। मिट्टीदार भूमि के स्थानों में कुछ और अधिक लंबाई आवश्यक होगी। काष्ठ जहां तक संभव हो सके, सीधा होना चाहिए।

ओखल का व्यास इस प्रकार का होना चाहिए कि कुंड के लिए आवश्यक छिद्र बनाने के पश्चात् भी उसकी बाह्य दिवाल मजबूत बनी रहे। तिलहनों की मात्रा समाने के लिए स्थान भी काफी होना चाहिए। यदि न्यूनतम आवश्यकता से कम घेरा हुआ, तो काष्ठ का फटना स्वाभाविक है। इसलिए व्यास की न्यूनतम लम्बाई २३ फुट होनी चाहिए। फिर भी यदि घेरा कुछ कम ही हो स्थान के लिए काष्ठ के अतिरिक्त टुकड़े संयुक्त किये जा सकते हैं। मजबूती के लिए इसके चारों ओर एक लोहे का पट्टा लगाया जा सकता है।

इस प्रकार ओखल के लिए आवश्यक काष्ठ की न्यूनतम लम्बाई ५३ फुट होनी चाहिए और उसका व्यास २३ फुट से २३ फुट तक।

कुंड

कुंड की बनावट का मुख्य उद्देश्य यह है कि बैलों से प्राप्य सीमित दबाव का अधिकतम उपयोग करना।

घानी का कुंड, जहां मूसल से तिलहन पेरे जाते हैं, इसका सबसे महत्वपूर्ण भाग है। घानी की बाह्याकृति या वेष्टन चाहे कैसा भी हो, इसकी पहचान इसके कुंड की बनावट से ही होती है। यह बदलने योग्य हिस्सों का बना हुआ है। उपयुक्त व अनुपयुक्त घानी का अन्तर प्रकट करने में प्रमुख दृष्टि कुंड की बनावट की ही है। घानियों की कार्य-क्षमता, जो पेराई में प्राप्त तेल की प्रतिशत प्रतिघान की क्षमता, प्रति घान में लगनेवाले, समय आदि के रूप में प्रकट होती है, प्रधानतः कुंड की रचना पर ही निर्भर करती है। घानी के कुंड की बनावट का मुख्य उद्देश्य सीमित रूप में प्राप्य शक्ति का अधिकतम उपयोग करना है। इस दबाव की सीमा पशु-शक्ति पर निर्भर है। उपर्युक्त उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए वर्धा घानी के कुंड की बनावट निम्न सूत्रों के आधार पर हुई है :—

(अ) मूसल का अभिनमन

कुंड की रचना इस प्रकार की होनी चाहिए कि वह मूसल को अपने पार्श्व में इतना निकट लाने में समर्थ हो कि तिलहनों पर अधिकतम दबाव पड़े, ताकि प्रभावकारी रूप से तेल पेरित होकर बाहर आये। दबाव के अधिकतम उपयोग

का प्रथम सूत्र यह है कि मूसल को जितना संभव हो सके, उतने बड़े कोण पर अभिनमित रूप में घूमने दे और दबाव को पार्श्विक बनाये। यदि मूसल कुंड में लम्बाकार स्थिति में घूमता है, तो इसका संपूर्ण दबाव कुंड के पेंदे पर पड़ेगा चूंकि तिलहन पेरने के दृष्टिकोण से बेकार सा ही जायेगा। जितना ही मूसल को कुंड के पेंदे से पार्श्व की ओर जहां तिलहन पेरे जाते हैं, स्थानांतरित किया जायेगा, दबाव उतना ही प्रभावकारी होगा। अभिनत कोण पर मूसल के घूमने से इस दबाव को स्थानांतरित कर देता है और जितना बड़ा कोण होगा, उतना ही अधिक दबाव स्थानान्तरित होगा। इस अभिनमन से कुंड की चोटी पर मूसल को आलम्ब बिंदु भी प्राप्य होता है। यह आलम्ब कुंड के अन्दर दबाव के प्रयोग में नियंत्रक बिंदु बन जाता है। इस नियंत्रण-बिंदु पर अधिकतम दबाव होता है। यह मूसल के पेंदे वाले छोर पर भी अधिकतम होता है। इस प्रकार पेंदेवाला छोर और आलम्ब अधिकतम दबाव-बिंदु हैं। इन दो बिंदुओं की ओर शेष कुंड की खली में उपलब्ध तेल तत्वों के विश्लेषण से प्राप्त जानकारी का यह परिणाम निकला है। कुंड का खाका खींचते समय यह अभिनत कोण मूसल और कुंड के अक्ष से बने कोण द्वारा निर्देशित हुआ है। वास्तव में यही कोण कुंड की बनावट के लिए कुंजी और सामान्य सूत्र प्रदान करता है।

(आ) पार्श्विक दबाव का विस्तार

तेल निस्सारण के उद्देश्य के लिए दबाव प्रभावकारी है तथा जितनी संभव हो सके, खली की टिकिया उतनी पतली होनी चाहिए, क्योंकि दबाव सीमित होता है। इसलिए यह सर्वाधिक महत्व पूर्ण है। तो भी इस सीमित दबाव के कारण खली की सूक्ष्मता की भी एक सीमा है। इससे समान रूप की सूक्ष्म खली नहीं बनती। मूसल द्वारा प्राप्त दबाव कुंड के पार्श्व में अधिकतम रूप से उपयोगित होता है, यदि इसे जितना संभव हो सके, उतनी सतह पर फैलाया जाये। दूसरे शब्दों में अधिक कार्य-क्षेत्र प्रदान करने के लिए कुंड की गहराई पर्याप्त होनी चाहिए। यदि इस दबाव को समान रूप से संपूर्ण सतह पर पहुंचाया जा सके, तो सर्वोत्तम होगा। फिर भी सीमित दबाव की अपनी सीमा है। समान रूप से दबाव फैलाने का अर्थ है—सम्पूर्ण कार्यक्षेत्र में तिलहनों का समान रूप से वितरण।

अब ऐसी बात तो है नहीं कि पहले समतल धरातल पर तिलहन फैलाये जायें और फिर उन पर दबाव डाला जाये। घानी के कुंड में, जहां धरातल कम या अधिक मात्रा में स्वाकार होता है, जिसमें तिलहनों की प्रवृत्ति पेंदे की ओर जाने की होती है और मूसल को सतह के अंतिम छोर तक इन्हें ऊपर धकेलना पड़ता है। यह शक्तिशाली दबाव इसे बिल्कुल समान रूप से ऊपर फैला सकता है लेकिन सीमित दबाव बीच में ही समाप्त हो जाता है और तिलहनों को अधिक ऊपर पहुंचाने में समर्थ नहीं है। फलस्वरूप काय-क्षेत्र में कमी हो जाती है। इसलिए सीमित दबाव से एक साथ ही एकरूप सूक्ष्म खली और विस्तृत काय-क्षेत्र के लिए प्रयत्न करना निस्सार है। कार्यक्षेत्र बढ़ाना है, तो किसी अंश तक खली की सूक्ष्मता का बलिदान करना पड़ेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि मूसल और कुंड के पार्श्वों के बीच पर्याप्त अन्तर रहना चाहिए, ताकि यह रुके नहीं या निश्चित स्कम्भा के निचे किसी भी स्थान पर उसे नवीन स्कम्भा प्रदान किये जायें।

स्कम्भा नियंत्रण बिन्दु है, जहां से कुंड में दबाव पड़ता है और इस प्रकार यह अधिकतम दबाव का बिन्दु है। कुंड के पार्श्वों के ऊपर दबाव कम हो जाता है, क्योंकि यह घानी के गले तक पहुंच जाता है। लेकिन कुंड के अंतिम छोर पर जहां मूसल का पेंदा इसे छूता है। यह फिर अधिकतम हो जाता है, नीचे स्कम्भा से घानी के कन्ने तक जैसे-जैसे दबाव कम होता है, खली अनुपाततः मोटी होती जाती है। तदनुसार मूसल और कुंड के पार्श्वों के बीच का खाली अन्तर के गले की ओर वृद्धि से कोटिबद्ध करना है। मूसल के अभिनमन के आमने-सामने कुंड के पार्श्व कोटिबद्ध स्थान के साथ-साथ ऊपर से कुछ गहराई तक धीरे-धीरे अभिसरित होते हैं और फिर पेंदे तक अभिसरित होते हैं। किसी बिंदु तक यह अभिसरण और फिर उसके बाद अपसरण आवश्यक है, क्योंकि उस बिंदु से मूसल सामने के पार्श्व को छूने लगता है। इस प्रकार कुंड दो भागों में विभक्त है, जिसका सम्मुख ढलाव एक बिन्दु पर मिलता है, जो एक संकीर्ण गले का आकार बनाता है।

जहां दबाव अधिकतम है, खली की टिकिया बहुत पतली और जहां दबाव अपेक्षाकृत कम है, वहां खली की टिकिया भी अपेक्षाकृत मोटी है। अपेक्षाकृत कम

दबाववाले क्षेत्र के अन्तर्गत बनी हुई यह स्थूल खली ही समय और पेराई में प्राप्य तेल प्रतिशत सबंध में घानी की प्रभावहीन पेराइ के लिए जिम्मेदार है। घानी के कुंड की बनावट में यह प्रमुख पहलू है, जो उपयुक्त घानी को अनुपयुक्त घानी से अलग करता है। जहा खली आवश्यकता से अधिक मोटी है, वहा दबाव अप्रभावकारी है और घानी की कार्य-क्षमता कम कर देता है। इस पहलू का ध्यान रखते हुए मूसल के नीचे का छोर मोटा बनाया गया है, ताकि मूसल और कुंड के निम्न पार्श्व के बीच का फासला कम हो सके। यहां पर बनी खली इस अन्तर के अनुपात में होती है। कुंड की इस बनावट और परिणामस्वरूप बनी सूक्ष्म खली को ही इस बात का श्रेय है कि घान के पश्चात् इस हिस्से से खली निकालने के लिए मूसल को प्रत्येक बार बाहर निकालने की आवश्यकता नहीं रही क्योकि इस खली की मात्रा न के बराबर है। इसलिए इसे दूसरे घान के लिए भी बिना किसी हिचकिचाहट के शेष छोड़ा जा सकता है।

(इ) कुंड का पेंदा

ऊपर लिखा जा चुका है कि कुंड के पेंदे में, जहा तिलहन नहीं पेरे जाते, कम से कम दबाव बेकार जाना चाहिए। यदि मूसल का पेंदा कुंड के पेंदे पर सरलतापूर्वक घूमे या दूसरे शब्दों में यदि मूसल और कुंड के पार्श्वों के बीच का अन्तर न्यूनतम कर दिया जाये, तो यह संभव हो सकता है। यह एक ही त्रिज्या के दो चाप बनाकर प्राप्त किया गया है, क्योंकि चाप मूसल के अक्ष के मिथश्छेद-बिन्दु से और कुंड के अक्ष को केन्द्र मान कर तथा सामान्य त्रिज्या से खींचे गये हैं, जो मूसल के पेंदे और कुंड के पेंदे दोनों को सामान्य चाप प्रदान करते हैं। यही सामान्य चाप मूसल को सरलता पूर्वक घूमने और स्कम्भ पर प्रभावकारी रूप से टिके रहने में सहायता करता है।

कुंड का खाका कैसे खींचा जाये

(अ) कुंड के अक्ष के रूप में कोई भी लम्बरेखा खींचो।

(आ) इस रेखा पर अपनी इच्छानुसार गहराई का गत्र बिन्दु लगाओ। किसी भी अंश का कोण लेकर लवाकार को इस बिन्दु पर दूसरी सीधी रेखा से

अब ऐसी बात तो है नहीं कि पहले समतल धरातल पर तिलहन फैलाये जायें और फिर उन पर दबाव डाला जाये। घानी के कुंड में, जहां बराबर कम या अधिक मात्रा में न्यावर्तन होता है, जिसमें तिलहनों की प्रवृत्ति पेंदे की ओर जाने की होती है और मूसल को दबाव के अंतिम छोर तक इन्हें ऊपर धकेलना पड़ता है। यह शक्तिशाली दबाव इसे विपुल समान रूप से ऊपर फेंक सकता है लेकिन सीमित दबाव बीच में ही समाप्त हो जाता है और तिलहनों को अधिक ऊपर पहुंचाने में समर्थ नहीं है। फलस्वरूप काम-क्षमता में कमी हो जाती है। इसलिए सीमित दबाव से एक साथ ही एकरूप लम्बी और विस्तृत काम-क्षमता के लिए प्रयत्न करना निस्सार है। कार्यक्षमता बढ़ाना है, तो किसी अंश तक घानी की सुगमता का बलिदान करना पड़ेगा। इसका तात्पर्य यह है कि मूसल और कुंड के पार्श्वों के बीच पर्याप्त अन्तर रहना चाहिए, ताकि यह रुके नहीं या निश्चित स्कम्भा के नीचे किसी भी स्थान पर उन्हें नवीन स्कम्भा प्रदान किये जायें।

स्कम्भा नियत्रण बिन्दु है, जहां से कुंड में दबाव पड़ता है और इस प्रकार यह अधिकतम दबाव का बिन्दु है। कुंड के पार्श्वों के ऊपर दबाव कम हो जाता है, क्योंकि यह घानी के गले तक पहुंच जाता है। लेकिन कुंड के अंतिम छोर पर जहां मूसल का पेंदा इसे छूता है। यह फिर अधिकतम हो जाता है, नीचे स्कम्भा से घानी के कन्ने तक जैसे-जैसे दबाव कम होता है, खली अनुपातत मोटी होती जाती है। तदनुसार मूसल और कुंड के पार्श्वों के बीच का घानी अन्तर के गले की ओर वृद्धि से कोटिबद्ध करना है। मूसल के अभिनमन के आमने-सामने कुंड के पार्श्व कोटिबद्ध स्थान के साथ-साथ ऊपर से कुछ गहराई तक धीरे-धीरे अभिसरित होते हैं और फिर पेंदे तक अभिसरित होते हैं। किसी बिंदु तक यह अभिसरण और फिर उसके बाद अपसरण आवश्यक है क्योंकि उस बिंदु से मूसल सामने के पार्श्व को छूने लगता है। इस प्रकार कुंड दो भागों में विभक्त है, जिसका सम्मुख दबाव एक बिन्दु पर मिलता है, जो एक संकीर्ण गले का आकार बनाता है।

जहां दबाव अधिकतम है, खली की टिकिया बहुत पतली और जहां दबाव अपेक्षाकृत कम है, वहां खली की टिकिया भी अपेक्षाकृत मोटी है। अपेक्षाकृत कम

दबाववाले क्षेत्र के अन्तर्गत बनी हुई यह स्थूल खली ही समय और पेराई में प्राप्य तेल प्रतिशत सम्बन्ध में घानी की प्रभावहीन पेराई के लिए जिम्मेदार है। घानी के कुंड की बनावट में यह प्रमुख पहलू है, जो उपयुक्त घानी को अनुपयुक्त घानी से अलग करता है। जहां खली आवश्यकता से अधिक मोटी है, वहां दबाव अप्रभावकारी हैं और घानी की कार्य-क्षमता कम कर देता है। इस पहलू का ध्यान रखते हुए मूसल के नीचे का छोर मोटा बनाया गया है, ताकि मूसल और कुंड के निम्न पार्श्व के बीच का फासला कम हो सके। यहां पर बनी खली इस अन्तर के अनुपात में होती है। कुंड की इस बनावट और परिणामस्वरूप बनी सूक्ष्म खली को ही इस बात का श्रेय है कि घान के पश्चात् इस हिस्से से खली निकालने के लिए मूसल को प्रत्येक बार बाहर निकालने की आवश्यकता नहीं रही क्योंकि इस खली की मात्रा न के बराबर है। इसलिए इसे दूसरे घान के लिए भी बिना किसी हिचकिचाहट के शेष छोड़ा जा सकता है।

(इ) कुंड का पेंदा

ऊपर लिखा जा चुका है कि कुंड के पेंदे में, जहां तिलहन नहीं पेरे जाते, कम से कम दबाव बेकार जाना चाहिए। यदि मूसल का पेंदा कुंड के पेंदे पर सरलतापूर्वक घूमे या दूसरे शब्दों में यदि मूसल और कुंड के पार्श्वों के बीच का अन्तर न्यूनतम कर दिया जाये, तो यह सम्भव हो सकता है। यह एक ही त्रिज्या के दो चाप बनाकर प्राप्त किया गया है, क्योंकि चाप मूसल के अक्ष के मिथच्छेद-बिन्दु से और कुंड के अक्ष का केन्द्र मान कर तथा सामान्य त्रिज्या से खींचे गये हैं, जो मूसल के पेंदे और कुंड के पेंदे दोनों को सामान्य चाप प्रदान करते हैं। यही सामान्य चाप मूसल को सरलता पूर्वक घूमने और स्कम्भा पर प्रभावकारी रूप से टिके रहने में सहायता करता है।

कुंड का खाका कैसे खींचा जाये

(अ) कुंड के अक्ष के रूप में कोई भी लम्बरेखा खींचो।

(आ) इस रेखा पर अपनी इच्छानुसार गहराई का तल बिन्दु लगाओ। किसी भी अंश का कोण लेकर स्वाकार को इस बिन्दु पर दूसरी सीधी रेखा से

परस्पर काटिये, जो मूसल का अक्ष होगा। गल बिन्दु व कोण इस तरह परिवर्तन हैं और उनके विनिमय तथा समन्वय कुंड के अनेक आकार प्राप्त हो सकते हैं।

(ई) मिथ्यछेदन-बिन्दु (कगार बिन्दु) को केन्द्र मानकर अपनी इच्छानुसार त्रिज्या का चाप खींचिये। सम केन्द्र और सम त्रिज्या द्वारा खींचा गया, यह चाप उभय अंगों के लिए सम है। फिर यह त्रिज्या भी परिवर्तनशील है, जिससे कुंड के अनेक आकार प्राप्त करना सम्भव है।

(ई) अपनी इच्छानुसार मूसल का व्यास लेते हुए, मूसल की एक ऐसी रेखा खींचो, जो उल्लिखित चाप को स्पर्श करे। सम पेंदे के साथ, यह स्पर्श बिन्दु कुंड में मूसल की स्थिति निर्धारित करता है। मूसल का व्यास भी एक दूसरा परिवर्तनशील अंग है।

(उ) कुंड के अक्ष के शीर्ष पर एक क्षैतिज-रेखा खींचो। वह बिन्दु, जिस पर क्षैतिज-रेखा मूसल की बाह्य रेखा को स्पर्श करती है, कुंड का ऊपरी कोण है। जहाँ मूसल कुंड के साथ स्कमा बनाता है। स्कमा-बिन्दु से गल बिन्दु तक, गल तक एक वृद्धि प्राप्त क्रम बद्ध रिक्त स्थान छोड़ते हुए, मूसल के प्रवण का अनुसरण करते हुए कुंड की पार्श्व रेखाएं खींचो। रिक्त स्थान का क्रमबद्ध व्यावहारिक अनुभव की सहायता लेकर यथेष्ठ ज्ञान से किया जाता है।

(ऊ) ऐसा करने से स्कमा और गल बिन्दु पर कुंड की चौड़ाई प्राप्त होती है। क्रमबद्ध रिक्तस्थान छोड़ते हुए मूसल के प्रवण का अनुसरण करते हुए कुंड के सम्मुख पार्श्व पर, शमित गलबिन्दु से कुंड के निम्न पार्श्व बनाइये। यह रिक्त स्थान कुंड के गल के नीचे मूसल के व्यास को, उस हिस्से को मोटा बनाने के निमित्त, बढ़ाकर नियन्त्रित किया जाता है। जहा मूसल का मोटा हिस्सा अध चाप को स्पर्श करता है, वही कुंड का अधो कोण है। कुंड के सम्मुख बिन्दु और पार्श्व ठीक शमित है।

(ए) रचना की ऊपर सुझायी गयी रेखाओं के आधार पर विभिन्न आकार और अभिनमन के कुंड और मूसल बनाना सम्भव है। फिर भी उदाहरण के तौर पर निम्नांकित मानी हुई लंबाई, चौड़ाई और अभिनमन के अनुसार मूसल और कुंड का खाका दिया जाता है। (चित्र संख्या–२)
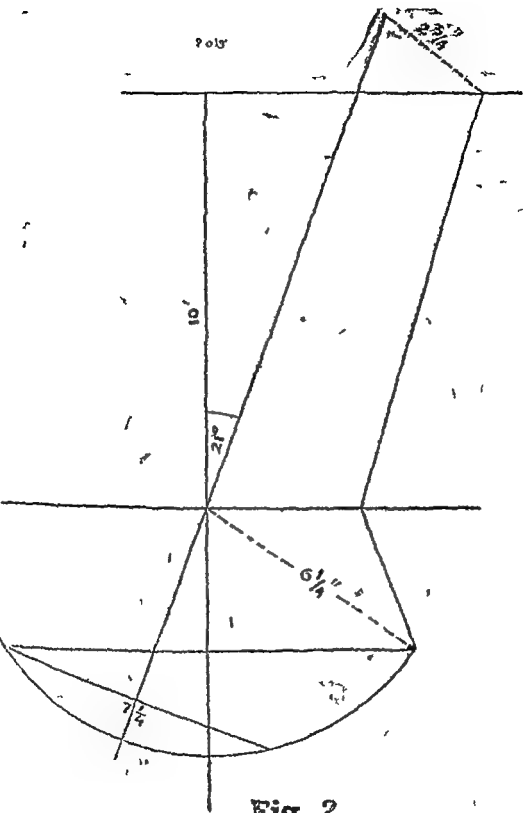
Fig. 2

मूसल का अभिनमित-कोण २० का।

कुड और मूसल के स्कभा-बिंदु से भार की त्रिज्या ६½"।

मूसल के शीर्ष का व्यास ७½"।

स्कभा-बिन्दु पर मूसल का व्यास ५½"।

मूसल

यदि मूसल पर्याप्त लंबा हो, तो उसके दोनों सिरे परस्पर ऊपर-नीचे किये जा सकते हैं। मूसल घिस जाने पर स्थानान्तर योग्य ओखल बनाने में इसका उपयोग हो सकता है। तेल पेराई की क्षमता में मूसल की लंबाई, आदमी के लिए अधिक नहीं होनी चाहिए और छत की ऊंचाई से, जिसके नीचे इसका उपयोग होता है, यह कम होनी चाहिए लेकिन जहां सुविधाएं हैं और जहां घानियां छत में लगायी जाती हैं, जैसे दक्षिण में वहां उत्थान-क्रिया के सिद्धान्त का लाभ उठाया जा सकता है। फिर भी वर्धा घानी में मूसल की लंबाई ७ से ८ फुट तक रखी गयी है, ताकि छत की ऊंचाई कम हो सके। वही लाभ और उत्थान-क्रिया प्राप्त करने के लिए जो १० फुट लंबाई के मूसल से होती थी, भार-पाट पर वजन इस कदर रखा जाता है कि मूसल का अग्र और भार-पाट पर रखे हुए वजन की क्रिया-रेखा मूसल की वर्तमान लंबाई के अनुसार मिलनेवाले बिंदु से अधिक दूरी पर मिलती है और इस प्रकार १० फुट लंबाई वाले मूसल से प्राप्त होनेवाली उत्थान-क्रिया प्राप्त की जाती है। वजन भूमि केन्द्र की ओर आकृष्ट है। इसलिए वजन की क्रिया-रेखा डब्ल्यू से प्रदर्शित की गयी है, जो मूसल के अक्ष ए बी से सी बिंदु पर मिलती है। रेखा ए सी की लंबाई वही है, जो १० फुट लंबे मूसल की और इस प्रकार समान उत्थान-क्रिया प्राप्त की जाती है। इसके अतिरिक्त वर्धा घानी में और भी दूरी पर वजन रखने से १० फुट वाले मूसल से अधिक उत्थान-क्रिया प्राप्य है।

अलग करते समय मूसल को बिना झटका पहुंचाये एक रूपता से हटाना चाहिए। इस उद्देश्य के लिए दोनों शीर्ष और स्कभा-बिन्दु पर मूसल की परि

भी एक रूप होनी चाहिए । उदाहरण के लिए एक रूप त्रिज्याएं । वर्त्तनी पर मूसल को बनाते समय इस परीक्षण को सुनिश्चित कीजिये ।

मूसल के ऊपर के अंतिम हिस्से पर, नीचे के हिस्से के समान ही शीर्ष होना चाहिए, ताकि शीर्ष परस्पर पट स्थानांतरित किये जा सकें । मूसल का स्कन्धबिन्दु के पासवाला व्यास बिन्दु से करीब ५" ऊपर तक और रहना चाहिए अन्यथा मूसल कुंड के ऊपरी धरातल पर ही पड़ा रहता है और पार्श्वों पर घूमता नहीं तथा फिसल जाता है । उस भाग में एक छोटी खूंटी गाड़ देने से मूसल के निकालने में आसानी रहती है ।

घानी का यांत्रिक पहलू

जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि (१) मूसल की लंबाइ, (२) मूसल का अभिनमन और (३) हरीस के आसजन-बिन्दु तक भार-पाट की लंबाइ जैसी अनेक बातें घानी के प्रभावकारी रूप से कार्य करने में प्रभाव डालती हैं । इन अंगों में किसी विभेद के प्रभाव का विस्तृत परीक्षण करने से पूर्व कुछ यांत्रिक पहलुओं पर जो घानी में काम करते हैं, विचार करना लाभप्रद हो सकता है।

घानी में ऊखल, मूसल, हरीस और भार-पाट आवश्यक हिस्से हैं । भार-पाट पर 'व' वजन रखा जाता है । वजन का नीचे की ओर खिंचाव हरीस को नीचे की ओर खींचने और साथ ही भार-पाट को ऊखल के पार्श्व के पास खींचते रहने में संयुक्त प्रभाव रखता है । दूसरे शब्दों में 'व' वजन का प्रभाव दो संघटकों में विभक्त किया जा सकता है । एक हरीस के साथ नीचे की ओर कार्य करता हुआ तथा दूसरा ऊखल के पार्श्वों पर भार—पाट के साथ प्रेषणीय शक्ति के रूप में कार्य करता हुआ । प्रथम वजन से प्राप्त शक्ति का उपयोगी अंग है, जबकि द्वितीय ऊखल और भार-पाट के मध्य घर्षण उत्पन्न करता है और मात्र क्षय है ।
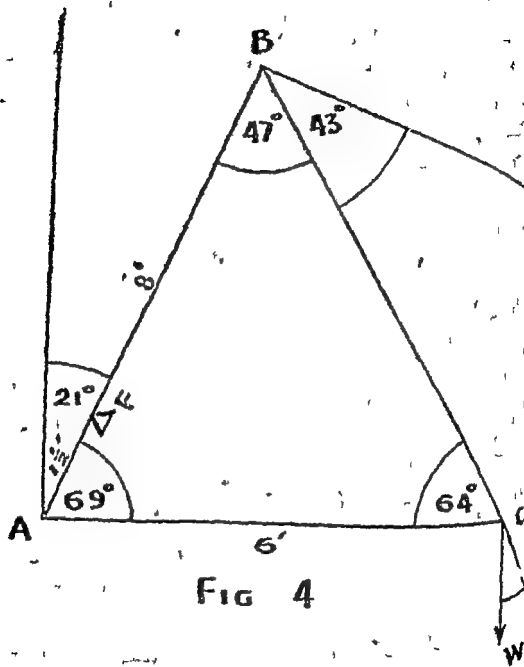
Fig 4

यह शक्ति ए एक्स और ए वाई की दिशा में भी प्रवाहित की जा सकती है। मान लिजिये ए सी और ए एक्स के मध्य एक्स कोण है। इस प्रकार ए एक्स रेखा की दिशा के साथ सघटक ए बी होगा = पी कोज्या एक्स और ए वाई रेखा के साथ सघटक बी सी होगा = पी ज्या प्रतीय एक्स शक्ति पी का रेखा ए सी के साथ का प्रभाव पी कोज्या एक्स और पी ज्या प्रतीय एक्स, जो क्रमश ए एक्स और ए वाई साथ क्रियाशील है, समन्वित प्रभाव के बराबर है।

हरीस के साथ 'डब्ल्यू' का सघटक
=डब्ल्यू काज १९° (हरीस की गति दिशा और डब्ल्यू के बीच १९° है।)
=डब्ल्यू × ० ९५

यह बी सी के साथ क्रियाशील होगा। मान लीजिये यह टी है। टी दो सघटकों में पृथक की जा सकती है। एक मूसल के साथ और दूसरा मूसल के लम्बाकार रूप में। यह द्वितीय सघटक उपयोगी कार्य करता है, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है।

मूसल के लम्बाकार रूप में बना सघटक —
=० ९५ डब्ल्यू × cos ५०°
=० ९५ डब्ल्यू × ० ६४=६१ डब्ल्यू
मूसल के साथ बना सघटक —
= ० ९५ डब्ल्यू × ज्या ५०°
= ० ९५ डब्ल्यू × ० ७७ = ० ७३ डब्ल्यू

मूसल के लम्बाकार रूप में बना सघटक दबाव के जरिये धुरे के सिरे तक स्थानान्तरित किया जाता है। ए बिन्दु पर की शक्ति का उत्थाम-सूत्र से अनुमान किया जा सकता है, जो इस प्रकार प्रदर्शित करती है।

$$\text{शक्ति} = \frac{\text{भार} \times \text{भार-बाहु}}{\text{शक्ति-बाहु}}$$

ए पड़ने वाला उपयोगी भार=

$$\frac{\text{बी} \times \text{एफ बी पर पडनेवाला दबाव}}{\text{एफ ए}}$$

इस प्रकार बिन्दु ए पर पड़नेवाली शक्ति=

$$\frac{\text{० ६१ डब्ल्यू} \times \text{एफ बी}}{\text{एफ ए}} = \frac{\text{० ६१ डब्ल्यू} \times १७ \times \frac{१}{२}}{२} = \text{३ ४६ डब्ल्यू}$$

Fig 5
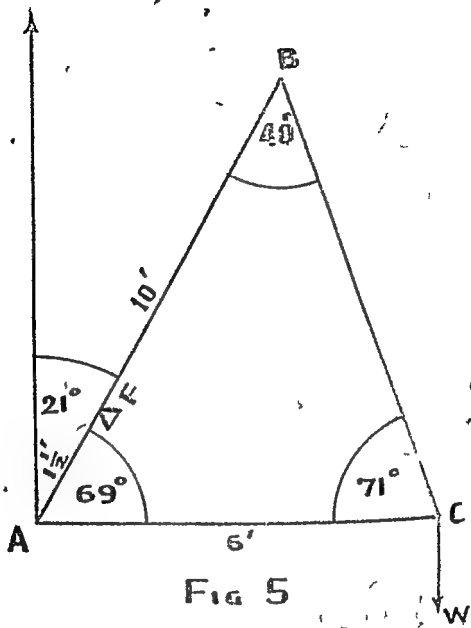
१ मूसल की लवाई

अब हमें मूसल की परिवर्तित लबाई के प्रभाव पर विचार करना चाहिए। (चित्र सख्या-४)

उदाहरण (ए) मूसल की लबाइ = ८ फुट।
भार-पाट की लबाइ = ६ फुट।
हरीस के साथ सघटक टी = डब्ल्यू कोज्या २६^{0} = ०९ डब्ल्यू।
मूसल के लबाकार रूप में सघटक टी
= ०९ डब्ल्यू × कोज्या ४३० = ०९ डब्ल्यू × ०७३ = ०६६ डब्ल्यू।

शक्ति ए बिंदु पर = $\frac{\text{०६६ डब्ल्यू × एफ बी}}{\text{एफ ए}} = \frac{\text{०६६ डब्ल्यू × १३}}{\text{२}} = \frac{२}{३}$
= २८६ डब्ल्यू।

शक्ति ए बिन्दु पर कम हो गयी है। कोण बी सी ए में न्यूनता होने के कारण उद्याम के यान्त्रिक लाभ में भी कमी हुई है। यह कमी कोण ए बी सी में वृद्धि होने के कारण कुछ हद तक पूर्ण की गयी है।

उदाहरण (बी) मूसल की लबाइ = ८ फुट (चित्र सख्या ७)
कोण ए बी सी = ४०^{0}
हरीस के साथ सघटक टी = डब्ल्यू कोज्या १९^{0} = ०९५ डब्ल्यू मूसल के लबाकार रूप में सघटक टी
= ०९५ डब्ल्यू × कोज्या ५०^{0} = ०६१ डब्ल्यू
शक्ति ए बिन्दु पर = $\frac{\text{०१६ डब्ल्यू एफ बी}}{\text{एफ ए}} = \frac{\text{०६१ डब्ल्यू × १३ × २}}{\text{२ × ३}}$ =
२६४ डब्ल्यू

शक्ति ए बिन्दु पर उदाहरण (ए) से भी कम हो गयी है। फिर भी उदाहरण (ए) में कोण ए बी सी ४० अश से बढ़कर ४७ अश का हो चुका है, जिससे निष्पादन का विकास हुआ है, लेकिन उदाहरण (बी) में कोण ए बी सी ४० अश का ही रहता है। इसलिए उद्याम के यांत्रिक लाभ की कमी का समग्र प्रभाव अखरता है। उदाहरण (बी) में भार-पाट और हरीस का आसन्न-बिन्दु कम होकर ■ फुट पर हो गया है।

२ मूसल का अभिनमन (चित्र सख्या ६)

उदाहरण (ए) कोण बी ए वाई = २५° ।

मूसल की लंबाई १० फुट

भार-पाट की लंबाई ६ फुट ।

शरीर के भाग संघटक टी = डब्ल्यू × कोज्या १३° = ०.९८ डब्ल्यू

मूसल के रेखाकार रूप में संघटक टी

= ०.९८ डब्ल्यू × कोज्या ५२° = ०.९८ डब्ल्यू × ०.६१५ = ०.६ डब्ल्यू

$$\text{शक्ति, बिन्दु ए पर} = \frac{\text{०.६ डब्ल्यू} \times \text{एफ बी}}{\text{एफ ए}} = \frac{\text{०.६ डब्ल्यू} \times \text{१७}}{\text{२}} \times \frac{\text{२}}{\text{३}} = \text{१४ डब्ल्यू}$$

उदाहरण (बी) कोण बी ए वाई = २५ अंश (चित्र संख्या ८)

Fig. 8
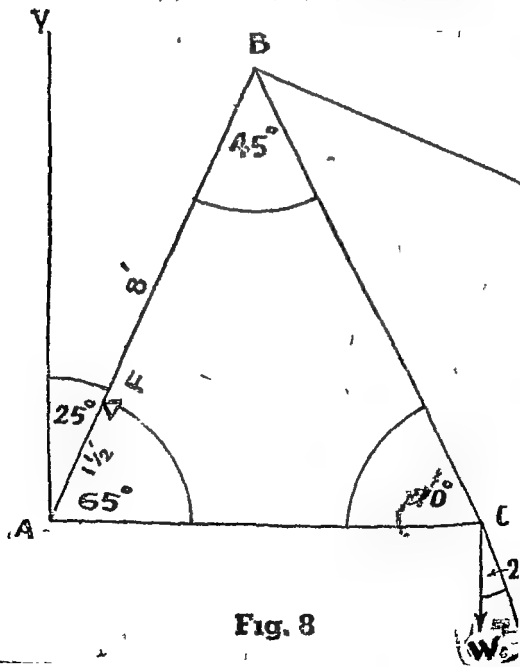
मूसल की लंबाई = ८ फुट ।

कोण ए बी सी = ४५ अंश

हरीग के साथ समटक टी = डब्ल्यू × कोज्या २०° = ०,९४ डब्ल्यू
मूसल के लगातार रूप में समटक टी = ० ९४ डब्ल्यू कोज्या ४५°
=० ९४×० ७१=० ६७ डब्ल्यू

बिंदु ए पर शक्ति = (० ६७ डब्ल्यू × एफ बी) / (एफ ए) = (० ६७ डब्ल्यू×१३×२) / (२×३) = २ ९ डब्ल्यू

उद्याम क्रिया के यांत्रिक लाभ की कमी को मूसल के अभिनमन में वृद्धि करने से जो विकास हुआ, उसके द्वारा दूर किया गया है। सामान्य तौर पर अभिनमन में वृद्धि करने से घानी की कार्यशीलता में विकास होता है।

उपयुक्त उदाहरणों से हम यह सामान्य सिद्धांत प्रतिपादित कर सकते हैं कि मूसल की लंबाई अत्यधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करती है। उद्याम क्रिया में वृद्धि पेंदे के अंत पर पड़नेवाली शक्ति पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालती है। पेंदे के अंत में मूसल के अभिनमन में वृद्धि करने से भी, शक्ति में वृद्धि की जा सकती है, लेकिन आयोजन बिंदु का अंतर उपयुक्त पैमाने पर बढ़ाना पड़ता है। इसका मतलब यह है कि मार-पाट की लंबाई बढ़ानी पड़ेगी, जो उपयुक्त नहीं है। मार-पाट की व्यवहार्य लंबाई अभिनमित कारण की एक सीमा निर्धारित करती है।

कुंड के पेंदे पर पड़नेवाले दबाव में मार-पाट पर रखे जानेवाले भार में वृद्धि करने से भी वृद्धि लायी जा सकती है। इससे स्पष्टतया ही बैल पर अधिक बोझा पड़ेगा।

विचालक

विचालक कुंड में तिलहन ढकेलने के लिए एक अच्छा साधन है और इसलिए इसे क्रियाशील रहने के लिए स्वयंचालित बनाया गया है, ताकि एक व्यक्ति के लिए एक ही समय में सरलतापूर्वक दो घानियां चलाना संभव हो। इस

तथा एक बच्चे की सहायता से तीन घानियाँ भी चलायी जा सकें।

विचालक कुंड में मूसल के आगे घूमता है। यह मथण्ड में लटका हुआ रहता है और तिलहनों को ढकेलने के लिए शक्ति प्रदान करने हेतु इस पर लगभग २० पौण्ड अतिरिक्त वजन लटकाया जाता है। विचालक के अंतिम छोर की वक्रता, जो ओखल के पार्श्वों का स्पर्श करता है, ठीक वैसी ही होनी चाहिए जैसी ओखल की हो, ताकि यह आसानी से घूम सके।

चूंकि विचालक किसी एक कोण पर घूमता है, इसलिए इसकी बाह्य वक्रता, ओखल की भीति और वक्रता के बीच में रिक्त स्थान छोड़ते हुए केवल ऊपरी कोन को छूता है, किनारे भीति को नहीं। इस प्रकार किनारे के पेंदे और विचालक के पेंदे के मध्य सामने के बहुत थोड़े से हिस्से को छोड़कर रिक्त स्थान रह जाता है। रिक्त स्थान तिलहनों से भर जाता है और फलस्वरूप विचालन क्रिया अप्रभावकारी हो जाती है। इसलिए यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि विचालक और किनारे की भीति के बीच ऊपर या नीचे रिक्त स्थान न रहे। दूसरे शब्दों में विचालक का पार्श्व और नितल क्रमशः भीति और किनारे के नितल से पूर्णत: अनुरूप होने चाहिए। यह स्थिति, विचालक को, ऊपर से नीचे तक उस कोण के अनुसार बनाने से प्राप्त की जाती है, जिस पर यह किनारे की भीति पर घूमने के लिए बनाया जाता है। विचालक के नितल में रिक्त स्थान से बचने के लिए, यह सामने के हिस्से से केन्द्र की तरफ एक समान आकृति का होना चाहिए। चूंकि विचालक का सामने का हिस्सा चौड़ी लकड़ी से बनाया जाता है और यही हिस्सा घिसता है, इसलिए इसे एक अलग लकड़ी के टुकड़े से बनाना और इसे विचालक के दण्ड से संयुक्त कर देना उत्तम है।

भार-पाट

जो ताकत बैलों पर पड़ती है, वह प्रधानत: भार-पाट की बनावट पर निर्भर करती है। शहतीर की लंबाई, ऊखल के साथ इसका घर्षण और जुताई व्यवस्था ऐसे पहलू हैं, जो बैल पर पड़नेवाली ताकत को कम या अधिक करने में अपनी भूमिका प्रस्तुत करते हैं। यदि भार-पाट की इन दृष्टिकोणों से संतोषप्रद रूप से बनावट की जाये, तो बैलों के लिए कुल ४½ मन वजन को खींचना आसान हो जायेगा, जिसकी

तिलहनों पर आवश्यक दबाव डालने के लिए आवश्यकता पड़ती है।

मार-पाट दो उद्देश्यों की पूर्ति करता है —(१) मूसल के अंतिम शीर्ष पर आवश्यक दबाव पहुंचाने के लिए यह आवश्यक मार-वहन करता है, (२) यह उद्याम के रूप में क्रियाशील रहता है, जिसका एक छोर एक रस्सी के द्वारा बैल से संयुक्त रहता है, जो खींचने की शक्ति प्रदान करती है। दूसरा छोर ओखल के बाह्य तल के साथ सर्पित होता हुआ स्कभा का रूप लेता है, जबकि मूसल को मार-पाट से आसजित करता हुआ बंध-दण्ड ऐसा बिंदु है, जहां मूसल की गति के कारण संपूर्ण रोध केंद्रित हो जाता है।

(अ) उद्याम क्रिया और गति

जितना लंबा मार-पाट होगा बैलों के लिए उसे खींचना उतना ही आसान होगा, क्योंकि लंबाई उद्याम क्रिया प्रदान करती है। साथ ही लंबाई एक दोष भी है, क्योंकि यह उस क्षेत्र को बढ़ाती है, जहां बैल को घूमना पड़ता है। तात्पर्य यह कि उद्याम क्रिया प्राप्त करने के लिए गति खोनी पड़ती है, जिसका मतलब यह है कि प्रति घान में आवश्यक समय की वृद्धि होगी। इसलिए उद्याम क्रिया और गति में मध्यम मार्ग अपनाना है। इसके अतिरिक्त ओसारे के सुविधाजनक विस्तार का भी ध्यान रखना चाहिए। इस प्रकार हम देखते हैं कि हम मार-पाट को उतना ही लंबा बनाना बर्दाश्त कर सकते हैं, जितने से बैल उसे आसानी से खींच सके यानी बैल पार्श्व में बिना अधिक झुके मुड़ सकें। बैल के लिए मार्ग का अधिकतम बाह्य व्यास १६ फुट करके इन शर्तों को पूरा किया जाता है।

(आ) ओखल के साथ घर्षण

मार-पाट के अंत में ऐसे बिंदु पर, जो उस बिंदु के आगे होता है, जहां बंध दण्ड उससे आकर मिलता है। रखा गया भार स्टंटे में इस प्रकार की प्रवृत्ति उत्पन्न कर देता है कि वह खुद-ब-खुद ऊपर उठ आये और इस तरह उस ओखल के प्रतिकूल जिसके ऊपर मार-पाट चक्रमित होता है, एक उर्ध्वगामी निपीडन उत्पन्न करे, यदि उस स्टंठे को क्षैतिज परिधि में घुमाया जाये। यदि मार-पाट की लंबाई संतुलित कर दी जाय तो हम उर्ध्वगामी निपीडन और परिणाम स्वरूप होनेवाले घर्षण को न्यूनतम बनाया जा सकता है।

(ई) जुआरी सम्बन्धी व्यवस्था

कुछ घानियों में जुआ बिना किसी सम्बन्ध के बैल की गर्दन पर रखा जाता है और जब वह चक्कर लगाता है, तब उसके पास कोई अवलम्बन नहीं होता और इसलिए उसे वर्तुल गति प्राप्त करने के लिए आश्रित रूप में एक तरफ झुक पड़ता है। बैल की गर्दन पर जुआ रस्सी से बाँधा जाता है, जो बैल के दोनों तरफ मार-पाट से बंधी हुई रहती है। बैल को रस्सियों के मध्य चलना सिखाया जाता है और साथ ही अपनी गति और शक्ति में संतुलन बनाये रखना भी। नौसिखिया बैल के लिए यह संतुलन बनाये रखना बड़ा कठिन है और उसे एक माह तक या इससे भी अधिक समय तक यह सब सिखाने की आवश्यकता पड़ती है।

असल में इस बनावट का दूसरा दोष यह है कि जुआ अनाश्रित होने के कारण बैल की गर्दन बड़ी जल्दी खराब कर देता है। जुआ गर्दन पर स्वतंत्र रूप से टिका हुआ नहीं होता, लेकिन इसे रस्सी से बाँध कर किसी एक विशेष स्थान पर रखा जाता है। गर्दन का यह भाग लगातार दबाव के नीचे रहने तथा हवा न लगने के कारण गरम हो जाता है और फलस्वरूप सड़ने लगता है। अन्य घानियों में जुआ मार-पाट से आलम्बित होता है। इस बनावट में जुआ बैल को पार्श्विक सहारा प्रदान करता है, जो उसे अपना संतुलन बनाये रखने में सहायता करता है। इसके साथ ही उसे स्वतंत्र रूप से घूमने में भी सहायता मिलती है क्योंकि जुए को मार-पाट पर बैल के अति पार्श्व में ही एक रस्सी लगाकर आलम्बित किये जाने के कारण बाह्य-रस्सी का परित्याग कर दिया गया है।

(ड) बैल के चलने के लिए भूमि

तल से १३ फुट गहरी खाई बनाने का अनुभव स्वास्थ्य सम्बन्धी उद्देश्य के अतिरिक्त और भी उद्देश्य पूर्ण करती है। उदाहरण के लिए कूड़े-कचरे को, बैल के मूत्र व गोबर को तेल से दूर रखती है। यह बैल पर भार भी कम करती है जिससे उसकी कार्य-क्षमता बढ़ती है। जब बैल का चलने का मार्ग समतल भूमि पर हो, तो खिंचाव-रेखा बैल की क्षितिज-गति से कोण बनाती हुई होगी। क्योंकि यह धुरा की रीढ़ के समानांतर नहीं होती, इसलिए इससे किया गया कर्षण पशु पर अधिक तनाव पड़ने का

कारण बनाता है।

फिर जब हम खिचाव रेखा का विश्लेषण करते हैं, जो इसके सघटक भाग में दो शक्तियों का फल है, जिनमें से एक क्षैतिज होगी और दूसरी लबाकार, तो देखते हैं कि केवल क्षैतिज सघटक ही प्रभावकारी है, जबकि लबाकार सघटक केवल, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, बैल पर पड़नेवाले अतिरिक्त तनाव के लिए ही जिम्मेदार नहीं है, वरन् यह भार-पाट के अन्त में रखे जानेवाले भार से प्राप्त होनेवाली शक्ति में भी बरता है। खाई खोदकर तैयार किये गये मार्ग से हम लबाकार सगठक का बिल्कुल लोप कर देते हैं और केवल क्षैतिज सगठक का ही उपयोग करते हैं, क्योंकि खिचाव रेखा क्षैतिज और बैल के रीढ़ के समानान्तर हो जाती है।

अध्याय ९

घानी निर्माण और प्रस्थापना

१ ओखल

१ एक ७½ फुट लम्बा लट्ठा लो और उसे दोनों सिरों पर तराश सीधा बनालो ।

२ ऊपर के हिस्से से करीब २½ फुट दूरी से प्रारम्भ करते हुए लट्ठा की परिधि का टेढ़ापन दूर करने के लिए लट्ठे को थोड़ा तराशो । तराशे गये तेल के नीचे का हिस्सा २७ इंच व्यास का होना चाहिए । (चित्र संख्या ९) इस दलान के साथ ही साथ लट्ठे को पूर्णरूपेण गोल और चिकना बनाना चाहिए ।

३ लट्ठे के उस हिस्से में, जो भूमि के अन्दर गाड़ा जाता है, बालू मिट्टी और कोल्तार से पोता जाता है । लट्ठे को सीधा प्रस्थापित करने में काफी सावधानी बरती जानी चाहिए । ऊपरी तला बिल्कुल सीधा होना चाहिए । प्लेटफार्म के तल से ओखल के ऊपर का हिस्सा २½ फुट ऊंचा होना चाहिए ।

२ कुण्ड के लिए रिक्त स्थान

४ ओखल के ऊपरी तले पर केन्द्र निश्चित करो और और उससे ८" त्रिज्या का एक वृत्त खींचो ।

५ वृत्त की १६" के व्यास का पूर्ण रूपेण रिक्त रम्भीय स्थान बनाते हुए २१" तक खुदाई करो । इस उद्देश्य के लिए साहुल और गुनिया का उपयोग किया जा सकता है । खुदाई किये हुए रिक्त स्थान की दुरुस्ती की जांच करने के लिए ओखल के ऊपर तल पर साहुल के केन्द्र को रिक्त स्थान के केन्द्र से अनुरूप बना कर साहुल को रखना चाहिए और साहुल की डोरी से स्थान की त्रिज्या के
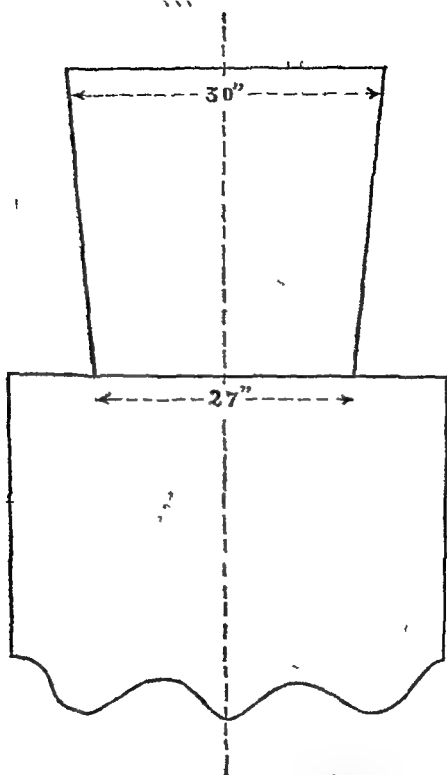
THE MORTAR
Fig. 9

बाहर नहीं आनी चाहिए, क्योंकि ऐसी दशा में पात्र के लिए अपेक्षाकृत अधिक गहरे कुंड की आवश्यकता पड़ेगी। कुंड गहरा होगा तो पात्र को जब यह तेल से भरा होगा, तब बाहर निकलना कठिन होगा और साथ ही साथ नाली को साफ करने तथा जब कभी पानी बन्द हो, तब इसमें छड़ लगाना भी कठिन होगा। नाली भूमि की सतह के ऊपर आसानी से बाहर आ सकती है। यदि पेंदे में रिक्त स्थान की भीति के पास लगायी गयी हो, लेकिन यह आवश्यक है कि इस भीति से कुछ दूरी पर लगाया जाये, ताकि जब मूसल नाली के सुराख की सम्मुख दिशा में घुसे तब यह खली चूरा से भरने के लिए खुली न रह जाये। ऐसा करने के लिए नाली उस स्थान पर बनानी चाहिए, जहां यह प्याला कुंड में मूसल के नीचे आधी खुली रहे। नाली को बंद करनेवाली लोहे की छड़ का कुन्दा नाली में लगाने के लिए पर्याप्त रूप से उपयुक्त होना चाहिए।

२ कुण्ड

१ लट्ठे की विषमताओं को दूर करते हुए उसे पूरे रूप से गोल बना लीजिए और खराद की सहायता से इसे १६" व्यास का परिपूर्ण बेलन बना लीजिए।

२ पूर्ण रूप से सीधा करने पर इसे कम करके रिक्त स्थान की गहराई अर्थात १७" लम्बा रखिये।

३ एक चोटी का केन्द्र निश्चित करो और ८" त्रिज्या का वृत्त बनाओ, एवं कोई भी एक व्यास खींचो। व्यास के एक सिरे पर परिधि के ऊपर इसके दोनों ओर १½" की दूरी पर दो बिन्दु लो और इन दोनों बिन्दुओं को दो त्रिज्याओं से मिलाओ। त्रिज्या-रेखाओं के साथ लट्ठे को लम्बाकार रूप में काटो। (चित्र संख्या ११)

यह द्वितीय हिस्से के लिए स्थान बनाता है, जिसे 'की' कहते हैं तथा कुंड की खुदाई पूर्ण होने पर इसे दो हिस्सों के साथ कुंड में प्रविष्ट करना पड़ता है।
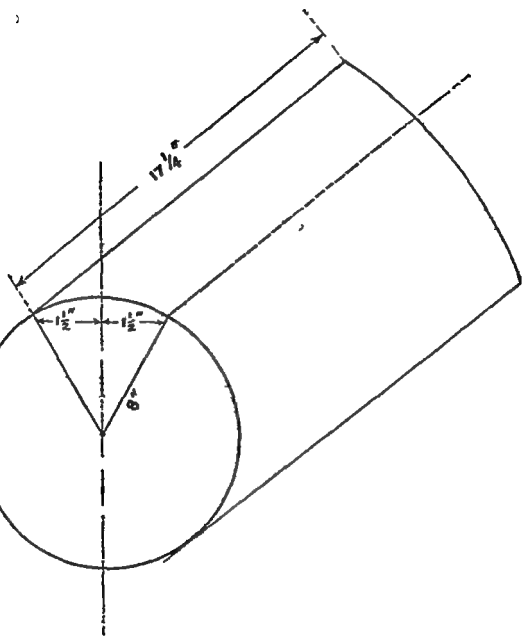
Fig. 11

टिप्पणी – इस 'की' के लिए स्थान बनाने में यह आवश्यक है कि दोनों हिस्सों से कम से कम १½" काटा जाये, क्योंकि १" या इससे अधिक एक ही हिस्सा काटा जाये तो दूसरे हिस्से में जो कुड के आधे के बराबर है, इसके बाद उसमें किसी प्रकार की पैबन्दी (पैकिंग) नहीं की जा सकती।

४ दो हिस्सों के चिपटे तलों पर लम्बाकार तिर्यक रेखाएं खींचो। स्थानान्तरण योग्य कुड के निर्माण में उपयोगित सांचे की सहायता से सांचे को तिर्यक रेखाओं पर दोनों ओर रखते हुए चिपटे तलों पर कुण्ड की बनावट अंकित करो। इस बात का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए कि चिपटे तल पर अंकित लम्बाकार तिर्यक रेखाएं और सांचे की सीधी रेखा मेल खाती है। दो सीधी रेखाएं गलरेखा और ओल्वल रेखा पर अनुप्रस्थ रूप से काटती हुई खींचो।

५ अभी बनायी गयी रचना और ऊपरी तल पर खींचे गये वृत्त के अनुसार प्रथम अनुप्रस्थ रेखा के ऊपर इस हिस्से के अंश की खुदाई करो।

६ सांचे की सहायता से गल–त्रिज्या के बराबर गहराई की रेखा की खुदाई करो, जब सांचा एक साथ रेखा के दोनों बिन्दुओं का स्पर्श करे, तब यह गहराई पूर्ण हो जायेगी।

७ इसी प्रकार दूसरी अनुप्रस्थ रेखा की भी खुदाई करो।

८ सांचे की सहायता से दोनों हिस्सों के पेंदे में ढलान बनाओ

९ अन्त में दोनों हिस्सों को सांचे के साथ मिलान करना चाहिए।

१० तृतीय हिस्से का शीर्ष जिसे 'कुंजी' कहते हैं और जिसके बनने से कुण्ड पूर्ण हो जायेगा। २" लम्बा और २" मोटा होना चाहिए। यह शीर्ष खुदाई किये हुए दोनों हिस्सों और 'कुंजी' का ओल्वल के रिक्त स्थान के अन्दर डालने के पश्चात हटा लिया जायेगा। यह कुंजी जब खुदाई किये हुए दो हिस्सों के साथ रखी जाती है, तब बिना किसी सवेष्टन के कसी हुई होनी चाहिए। चूने का पटलेप और टाट–पत्र लगाने के पश्चात यह मजबूती से जम जायेगी। 'की' इस प्रकार तैयार

5½"
16"
5½"
4½"
17"
3'
REPLACEABLE PART
DRAIN CHANNEL
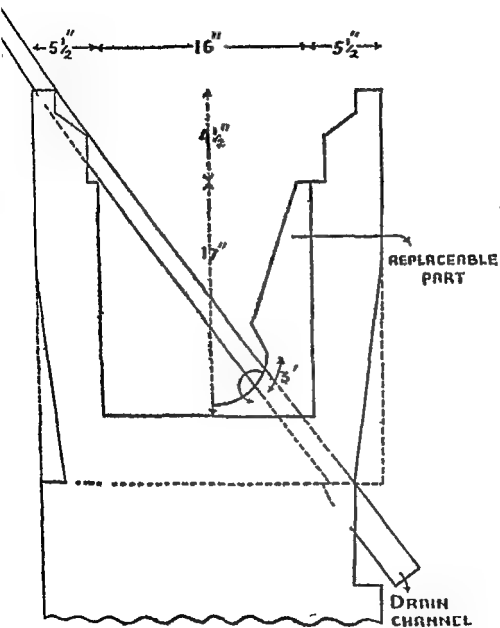
Fig. 12

की जाती है। लकड़ी के टुकड़े के पीछे के हिस्से की बनावट इस प्रकार करो कि इसकी भी वही परिधि हो, जैसी उपर्युक्त दोनों हिस्सों की परिधि है। तब इसके ऊपरी तल पर ३" की लकड़ी रखो, जो पूरे बेलन से काटी गयी हो और इस पर इसके दो पार्श्वों को अंकित करो। अन्तर को पूरा करने के लिए आवश्यक अतिरिक्त चौड़ाई के लिए कुछ हिस्सा छोड़ कर कुंजी के पार्श्वों के उपर्युक्त ढलाव की दिशा में काटो। तब शीर्ष रखते हुए इसे अन्य दो भागों के अनुसार बनाओ।

११ अब चित्र में निर्दिष्ट ढंग पर नाली का सुराख बनायें। बरमे की सहायता से इसका पैना सिरा इस हिस्से के कोण को १ इंच की दूरी पर रख कर नाली बनाना चाहिए। अब बरमे को ४५ अंश पर रखो और सुराख बनाओ। यह आवश्यक है कि जब सुराख बनाया जाये, तब कुंड का एक हिस्सा इस स्थान पर रखना चाहिए। यह इस हिस्से और रिक्त स्थान के बीच दोनों सिरों पर पेंदे में और ऊपरी सिरे पर बड़ी मजबूती से काठ की पट्टी लगा कर किया जा सकता है।

१२ उस बिन्दु से ठीक नीचे, जहां नाली का सुराख बाहर आता है, अर्ध वृत्ताकार पर नालीदार एक छोटा सा काठ का टुकड़ा समुचित रूप से ओखल के अन्दर उस कोण पर, जिस लोहे की छड़ में किसी प्रकार की रुकावट न आये लगा दिया जाता है। इस परनाली द्वारा तेल नीचे रखे हुए पात्र में आवेगा।

१३ रिक्त स्थान की भीति पर चूने की परत लगाओ और इस पर टाट का कपड़ा प्रयोग करो। दोनों हिस्सों के बीच में भी दुगुना टाट का कपड़ा लगाओ और कुंजी के दोनों पार्श्वों में थोड़ा तेल लगाकर उसे अन्दर लगाते हुए दोनों हिस्सों को आसजित करो। जब 'की' लगायी जाये तब इसके स्थान पर खोये हुए हिस्सों को रखने के लिए एक इंच की एक लोहे की छड़ नाली के सुराख में नीचे से स्थानान्तरण योग्य हिस्सों तक लगाओ। अब 'कुंजी' पर एरण्डी का तेल लगा कर जिससे 'की' को आसानी से रिक्त स्थान में लगाने के लिए सहायता मिलेगी, दोनों हिस्सों और 'कुंजी' को ठोकते हुए अन्दर को ठोंको। कुण्ड की भीति पर और 'कुंजी' के शीर्ष पर बाहर निकले टाट को काट डालो।

PIT
A
B
6"
2¼"
8"
C
D
3"
G
4"
H
E
F
2¼
I
SCALE ¼ FULL SIZE
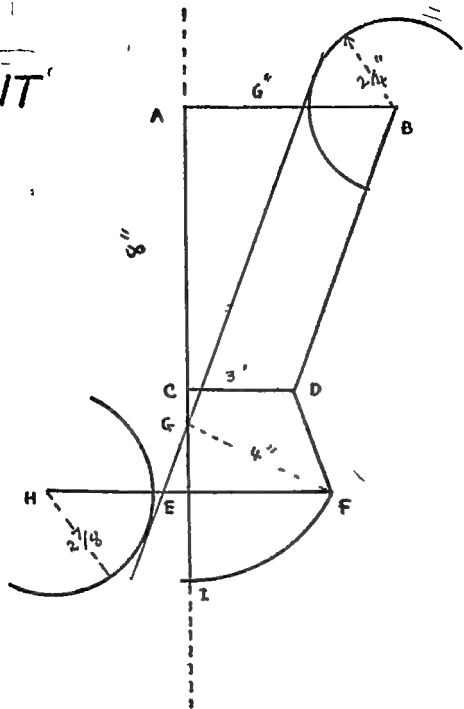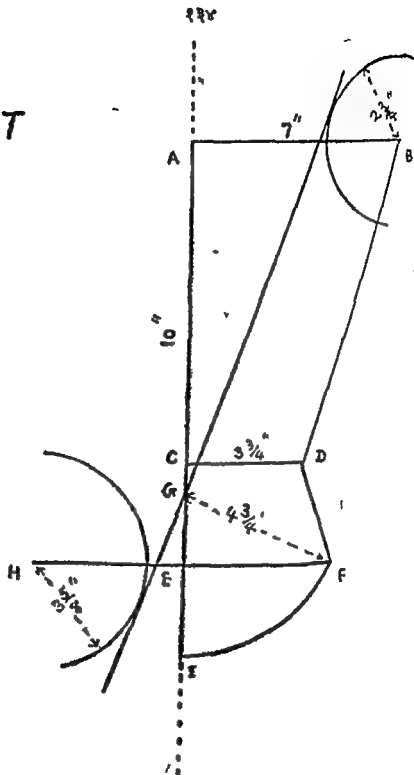
SCALE 1/4 FULL SIZE

दूसरी विधि

१ यदि १७" व्यास का लाठा न मिले, तो कुड के लिए ४, ५, या ६ बदले जाने योग्य हिस्से बनाने पड़ेंगे ।

२ कोई लम्बा और लगभग १२" व्यासवाला पके हुए कुसुम या बबूल का लट्ठा लो । इसे चीर कर व्यास के साथ इसे लम्बाकर बनाओ। प्रत्येक टुकड़े के सबसे चौड़े हिस्से को रिक्त स्थान के सामने आसजित करने के लिए तैयार करो।

३ बदलने योग्य हिस्से को रिक्त स्थान में रखो और रिक्त स्थान के व्यास के दानों हिस्सों पर १'×१' के लगभग दो दाते काटते हुए और इसे बदलने योग्य हिस्से के ऊपरीतल तक बढाते हुए तथा साहुल के केन्द्र को रिक्त स्थान के केन्द्र के अनुरूप बना रिक्त स्थान के शीर्ष पर साहुल रखो । साहुल के केन्द्र से त्रिज्या रेखाए खीचों, जो रिक्त स्थान की भीति को स्पर्श करती हुइ बदलने योग्य हिस्से के दो अग्य सिरों से मिलें । ये रेखाए बदलने योग्य हिस्से की प्रवण रेखाए होंगी । रन्दे से इन प्रवण रेखाओं में पार्श्व को सुधारों और उन्हें सीधी तथा चिकनी बनाओ । फिर बदलने योग्य कुण्ड के शीर्ष पर साहुल के केन्द्र से ७" त्रिज्या का एक वृत्त बनाओ ।

४ प्रथम विधि के ४ से ९ तक के नियमों के अनुसार ½ इच किनारा गर्दन के स्थान के बजाय पेंदे में बनाते हुए अन्य हिस्से तैयार करो ।

टिप्पणी –ऊपर लिखे अनुसार बदलने योग्य कुण्ड तैयार करने के पश्चात् अन्य सब हिस्से प्रथम विधि के अनुसार बनाते हैं । उन्हें पहले रिक्त स्थान की भीति और परिपूर्ण हिस्सों के पार्श्वों के सामने सजोना चाहिए और तब पेन्सिल से निशान लगाइये तथा उसके अनुसार तमाम बदलने योग्य हिस्सों का साचे से मिलान करना चाहिए ।

५ प्रथम विधि में वर्णित सिद्धातों के अनुसार 'की' बनाइये ।

६ बदलने योग्य हिस्सों को आसजित करने से पूर्व साचे की सहायता से प्रथम विधि से वर्णित बातों के अनुसार नाली की दिशा में एक सुराख बनाते हुए

७ इन व्यास का तल-भार बनाइये । तब प्रथम विधि के अनुसार हिस्सों को आसजित करो ।

७ सुराग की स्थिति कायम रखते हुए तल पर धागे और छोटी-छोटी कील लगाये हुए इसे आसजित करिये और प्रथम विधि में वर्णित शर्तों के अनुसार कुण्ड भी लगाइये ।

३ मूसल

मूसल की लकड़ी के दो शीर्ष होते हैं, प्रारम्भ में मोटा सिरा ऊपर रखा जाता है। इससे एक ही मूसल का दो बार उपयोग में लाने की सहायता मिलती है। निम्न शीर्ष का लगातार उपयोग होने से मूसल घिस जाता है और कुण्ड भी अधिक हो जाता है। ऊपर के सिरे पर आगे निकला हुआ हिस्सा जिस पर मूसल-टोपी रखी जाती है, अलग कर दिया जाता है और नीचेवाले हिस्से मूसल-टोपी रखने योग्य-तराश कर बनाया जाता है । इस प्रकार शीर्ष परस्पर बदले जाते हैं । कुंड का विस्तार प्राप्त रिक्त स्थान मूसल को मजबूती से पकड़े रहता है और इस प्रकार पर्याप्त क्षमता में बिना किसी प्रकार की कमी हुए मूसल और कुंड का उपयोग किया जाता है । मरम्मत में होनेवाले खर्च की भी बचत होती है ।

१ लट्ठे की आकृति में जो अनियमताएं हों, उन्हें दूर कीजिए और जहां तक सम्भव हो सके, इसे अधिकाधिक वृत्ताकार बनाइये, जिसका व्यास लगभग ८ इंच हो ।

२ लम्बाई देखने में लट्ठे के दोनों [illegible] समकोण पर बनाइये, लट्ठे की लम्बाई ७ फुट [illegible] सिरे पर के [illegible] करो और केन्द्र से गुजरती हुई एक रेखा खी[illegible] लो और [illegible] केन्द्र पर रखो और लट्ठे के दूसरे सि[illegible] रेखा [illegible] से लम्[illegible] को लट्ठे पर इस प्रकार [illegible] कि यह [illegible] व्या[illegible] क [illegible] दोनों [illegible] ताकि [illegible] तक [illegible] इस [illegible] इन्च

३ रस्सी को सीधी बढ़ाओ और लट्ठे के दूसरे सिरे से गुजरती हुई रस्सी के साथ-साथ रेखा अंकित करो ।

४ लट्ठे की दूसरी ओर पतले सिरे के तल पर पहले लिए व्यास के समकोण स्वरूप दूसरा व्यास लीजिए ।

५ व्यास के साथ रस्सी को रखते हुए इस लट्ठे के दूसरे सिरे तक ले जाओ । रस्सी को फिर लट्ठे पर इस प्रकार गुजरने दीजिये कि यह मूसल के आवश्यक व्यास के आधे के बराबर स्थान दोनों ओर छोड़ती जाये । रस्सी को सीधी बनाइए और इसके साथ-साथ लट्ठे के दूसरे सिरे के तल को पार करती हुई रेखा अंकित कीजिये ।

६ दोनों खींची हुई रेखाओं का मिध्यछेद-बिन्दु अंकित कीजिये । बिन्दु मूसल के ऊपरी-अन्त का केन्द्र होगा । मूसल के ऊपरी-अन्त में अर्थात मोटे सिरे में किसी प्रकार की गांठ नहीं होनी चाहिए अन्यथा भार-पाट के पड़नेवाले दबाव के कारण जो मूसल के शीर्ष पर लटका रहता है, यह टूट सकता है ।

७ मूसल के बेलन को खराद पर रखिये और दोनों सिरों पर अंकित केन्द्र बिन्दुओं पर उसे रुक रहने दीजिए, जो कि खराद के दोनों सिरों पर बनाये गये हैं ।

८ नीचे का हिस्सा ५½" तक ७¾" व्यास का बनाइये । इस बिन्दु से १¾" दूरी पर एक स्थान अंकित कीजिये और उस स्थान पर व्यास को कमकर ५½" बना दीजिये । साचे की सहायता से पेंदे पर ढलाव लाइये । (कुंड का साका कैसे बनाया जाये अंश देखिये) एक सीधे ढलाव से दोनों व्यासों को जोड़िये ।

९ इस ८½" के व्यास को १८½" तक रखो ।

१० इसी प्रकार दूसरे सिरे को अर्थात् मोटे सिरे को बनाइये, जिसमे ६" मूसल टोपी रखने के लिए सिरा छोड़ दीजिए ।

इन दोनों सिरों में अन्तर केवल इतना ही होगा कि मोटे सिरे का नीचे का हिस्सा ८½" तक ७½" व्यास का होगा और इससे १¾' के पश्चात् १८½" तक ८¾' व्यास का ।

११ मूसल के सिरे पर लकड़ी का आकार दो बालबियरिंग, एक बी बी-१ नीचे कम से कम ३" व्यास की और दूसरी बी बी-२ ऊपर के लिए कम से कम २½" व्यास की रखने के लिए कम कर दीजिए।

१२ गले पर मूसल के एक ओर ४" लम्बा, १½" चौड़ा और ⅜" गहरा एक रिक्त स्थान बनाइये अर्थात् नीचे का हिस्सा ऐसा हो कि तेल ऊपर की ओर से उखल में आ सके। मोटे सिरे पर भी इसी प्रकार का रिक्त स्थान बनाइये।

४ मूसल टोपी

इस हिस्से को चित्र संख्या १३ की सहायता से बनाइये। बी बी-१ और बी बी-२ क्रमशः ३" और २½" व्यास की दो बाल-बियरिंग टोपी की लकड़ी के दोनों पार्श्वों के बीच में जोड़िये। अब इन हिस्सों को मूसल के सामने के भागों में जोड़ना चाहिए।

५ भार-पाट

इस अंग को चित्र संख्या १४ की सहायता से बनाओ। तख्ते का ६½'× १'×२" अनुसार समुचित रूप से आकार बनाने के पश्चात् इसके एक पार्श्व में कीलों की सहायता से २½'×३"×२" के माप का लम्बा तख्ता काटिये और यह लम्बे पार्श्व में ½" आगे निकला रहना चाहिए। हंसिया सतह के दोनों ओर ½' आगे निकला हुआ होना चाहिए। इस हंसिये का शीर्ष इस प्रकार से बना हुआ होना चाहिए कि इससे बांधी जानेवाली रस्सी बैल से पड़नेवाले दबाव के कारण निकल कर बाहर न आ जाये।

दूसरा हंसिया २"×३"×१" के नापका हिस्से पर कीलों से लगाया जाना चाहिए यह हंसिया भी सतह के दोनों पार्श्वों में ½" आगे निकला हुआ होना चाहिए। शेष १'×३"×१" का हंसिया भार-पाट के अधिक चौड़े हिस्से पर लगाना होगा। यहां हंसिया सतह के दोनों पार्श्वों में ½" आगे निकला हुआ होना चाहिये।

तख्ते के दूसरे पार्श्व में बेल्नों से फिट किया हुआ वक्र हिस्सा आसज्जित कीजिए।
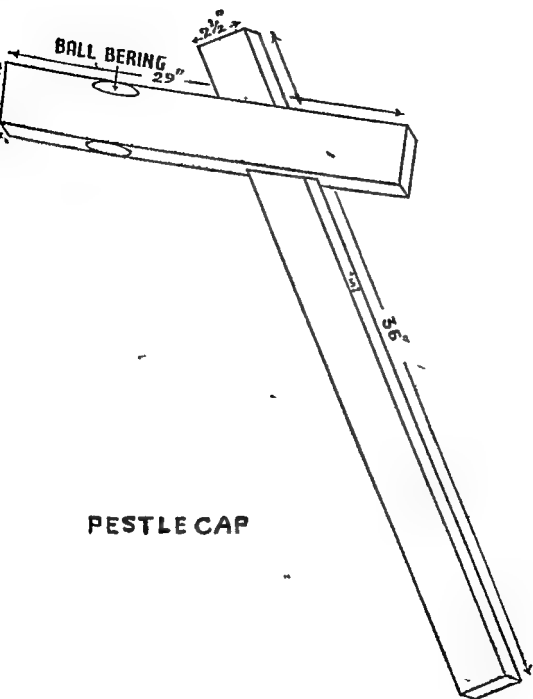
Fig. 13
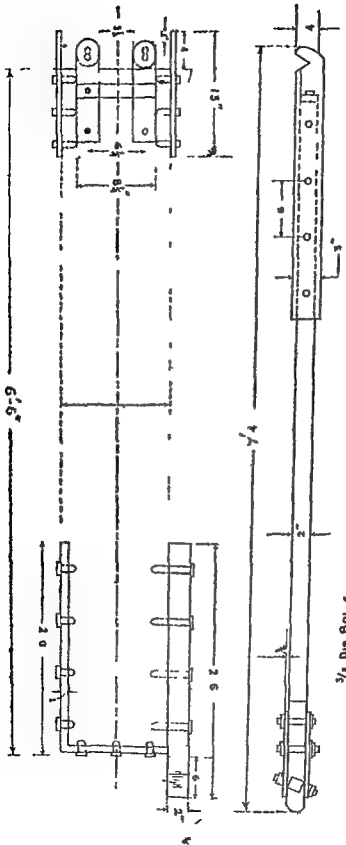
Scale 1½ inches to 1 Foot

LOAD BEAM

Fig. 14

वर्धा घानी बनाने के लिए आवश्यक काठ व अन्य उपकरणों की सूची –

क्र० सं०	हिस्से का नाम	आवश्यक काष्ठ की किस्म	विस्तार
अ) काष्ठ			
१	ऊखल	टिप्पणी यह परिपक्व काष्ठ, पत्थर, सीमेंट या लोहे की बनायी जा सकती है। इमली, कटहल, नीम, सिरीश और बबूल	लम्बाइ ५½ फुट व्यास २½ से २½ फुट तक
२	कुड	बबूल और कुसुम	लम्बाई २०" व्यास १७"
३	मूसल	बबूल, कुसुम और बहेड़ा	लम्बाइ ७½ फुट व्यास ८"

आ) अन्य उपकरण

क्र०	नाम	प्रयोजन	आवश्यक आकार
१	लोह की छड़	तेल की नाली का माग साफ करने के लिए	लम्बाइ १½' गोलाइ १"
२	खुरा दण्ड	तिलहन पेराइ के वक्त जब कभी आवश्यक हो, खली खोदने व खली को चलाने के लिए	लम्बाइ २½ फुट तथा मोटाई ½" आठकोण का
३	तराजू और वजन	प्रत्येक घान से पूर्व तिलहन मापने के लिए और उनसे प्राप्य तेल तथा खली मापने के लिए	

क्र०	नाम	प्रयोजन	आवश्यक आकार
४	पीपा और बाल्टी	तेल नाली से आने वाले तेल को प्राप्त करने व इकट्ठा करने और खली संग्रह करने के लिए भी	२ सेर
५	लोहे का फावड़ा	गोबर हटाने के लिए	
६	लोहे की कढ़ाही	बैलों को खली आदि खिलाने के लिए	
७	चलनी	तेल छानने के लिए	
८	रस्सियां	बैलों को जोतने के लिए	लम्बाई १२ फुट मोटाई आध इंच
९	जल पात्र	पेराई के समय तिलहनों में पानी देने के लिए	३० तोला पानी समा जाने लायक पात्र
१०	टीन की परात	तेल को नष्ट होने से बचाने के लिए नाली से नीचे कुंड में और तेल के पीपे के नीचे रखने के लिए भी	कुंड के लिए पर्याप्त आकार के दो सेर और २ परातें २' × ४' के विस्तार की
११	चूना और टाट बस्ता	परिवर्तन योग्य कुंडों की पैकिंग—सामग्री	२ गज टाट

६ घानी की प्रस्थापना

अ) काठ की घानी

एक १६'×१६' क्षेत्र की जगह का चुनाव कीजिये। यदि आप घानी तमाम ऋतुओं में चलाना चाहते हैं, तो आप घानी की अर्ध स्थायी रचना कर सकते हैं। फर्श के केन्द्र में कुंड बनाने के लिए ३' ३½' तक व्यास की जमीन खोदो ताकि जब ऊखल को कुंड में अच्छी तरह रख, तो इसके चारों ओर आध फुट की सहायक वस्तु रखी जा सके। ऐसा ऊखल की नींव मजबूत बनाने के लिए किया जाता है। सतह से कुंड की गहराई घानी की सम्पूर्ण लम्बाइ पर आधारित है। तमाम व्यावहारिक बातों के लिए यह वांछनीय है कि घानी सतह से ३¾' ऊपर रहनी चाहिए, ताकि १¼ ऊंचा चबूतरा बनाने के पश्चात् चबूतरे से ऊपर २½ फुट स्वतत्र लम्बाइ शेष रह सके, जिससे कोइ व्यक्ति बिना अधिक झुके आसानी से उस पर काम कर सके और मूसल व भार-पाट घानी में उचित जगह लगाये जाते हैं, ताकि बैल को भार-पाट में सुविधापूर्वक जोता जा सके।

ऊखल को कुंड के बीच में सीधी रखो और बीच के खाली स्थान को पत्थर के टुकड़ों, कंक्रीट व मिट्टी से भरो और जब तक प्रत्येक चीज सतह तक बिल्कुल ठीक न आ जाये, तब तक इसे खूब ठोंको। ऊखल को दीमक लगने से बचाने के लिए कुंड को भरते समय चूने के पत्थरों का उपयोग करना और भी सुरक्षा की बात होती है। ऊखल के सम्पूर्ण कुंड को पानी से भरो और यदि पानी की सतह किनारों के अनुरूप है तो समझो घानी का निर्माण बिल्कुल ठीक है। यह समतल मापक (स्प्रिट लेविल) से भी जाना जा सकता है। कोई भी ग्रामीण राज इसके सही निर्माण की यथार्थता का परीक्षण कर सकता है।

नाली के नीचे जहां कुल्पा खण्ड लगाया गया है, तेल-पात्र रखने के लिए, जो घानी से टपकने वाले तेल को इकट्ठा करने के लिए आवश्यक है, एक कुंड खोदना चाहिए। कुंड इस विस्तार का हो सकता है गहराइ १½', चौड़ाई १½' और लम्बाइ १½' से १¾' तक। लम्बाइ विशेष रूप से लाट की छड़ की लम्बाइ पर आश्रित है, जिसे हम कुल्पा गड बन्द करने के लिए काम में लाते हैं।

यह कुंड नीचे स्रोत रहने की वजह से कमजोर होता है और इसलिए सुरक्षा स्वरूप पत्थर के टुकड़े या काठ के तख्ते रखे जा सकते हैं। यदि इस कुंड की भीतियां कमजोर हैं, तो सम्पूर्ण नींव कमजोर पड़ जायेगी। अतएव इस कुंड के बनाने में बहुत बड़ी सावधानी रखी जानी चाहिए।

ऊखल के चारों ओर से और भूमि की सतह से १½' ऊंचा और २' चौड़ा चबूतरा बनाओ। तेल पात्र को कूड़ा कचरा आदि गिरने से बचाने के लिए अब कुण्ड को काठ के तख्ते से ढक दो।

आ) लोहे की घानी

आसानी व साधारण रूप से काठ की घानी काम कर सके, इसमें सुविधा प्रदान करने के लिए आम तौर पर यह इस ढंग से प्रस्थापित की जाती है कि भूमि सतह से घानी की ऊंचाई लगभग ४५" रहे। इसी प्रकार जब लोहे की ऊखल वाली घानी प्रस्थापित की जाये, तो हमें यह देखना चाहिए कि इसका ऊपरी हिस्सा भूमि की सतह से ४०" ऊपर हो, जिसमें चबूतरे की १५" ऊंचाई भी सम्मिलित है।

एक छप्पर वाले ओसारे में जिसका विस्तार १६'×१६' है, केन्द्र स्थान से अंकित ३०½" विस्तार के स्थान की भूमि सतह से १८" गहराई तक खुदाई करनी चाहिए। कंक्रीट और सिमेंट व गारे से १ : ३ के अनुपात में मिश्रण तैयार कीजिये और इस कंक्रीट मिश्रण से कुण्ड को ३" गहराई तक भरिये और जब तक यह मिश्रण समतल न हो जाये, तब तक इसे खूब कूटिये। इस काम के लिए चार ऐसे आधारीय बोल्टों की जिनका व्यास ¾" का हो और समस्त लम्बाई २" से लेकर २¾" तक की हो तथा इस लम्बाई में १½" लम्बे का एक सिरे में चूड़ियां डाली हुई हों और दूसरे सिरे पर ऐसी आंख बनी हो, जिसका अन्दरूनी व्यास ¾" का हो और यह इस तरह की बनी हो कि जिसमें ४½" लम्बा तथा ¾" व्यास का छड़ आसानी से पिराया जा सके।

चार आधारीय बोल्ट कुंड के प्रत्येक कोने में एक कंक्रीट बिठाये हुए कुंड के धरातल पर बिल्कुल सीधे रखे जाते हैं। केन्द्र से बोल्ट के केन्द्र का अन्तर उस लम्बाई के बराबर होना चाहिए, जो केन्द्र और घानी के पेंदे की सहायता

रनेवाले लोहे के पट्टे पर बनाये गये सुराखों के बीच में है। देशी लकड़ी के ख्तों से दो साचे तैयार कीजिये, जिनमें एक ३०½"×३०"×१५" का हो और सरा ३०" व्यास का हो और कुंड को काटाट।

चारों आधारीय बोल्ट कुण्ड के पेंदे के हरेक कोने पर एक-एक के हिसाब धरातल पर सीधे रखे जाते हैं। बोल्ट के केन्द्र और केन्द्र का फासला केन्द्र सुराख के केन्द्र के फासले के बराबर होना चाहिए, जो कि घानी में पेंदे को हारा देने वाले लोह छड़ के कोण पर बनाया गया है। लकड़ी के दो साचे नाइये। एक ३०½"×३०"×१५" के परिमाप का और दूसरा ३०" के व्यास ा। इन्हें एक दूसरे पर रखिये। कुण्ड को ठास मिश्रण से थोड़ी-थोड़ी देर बाद मिश्रण हटाते हुए भरिये। घानी के पदे में एक वृत्ताकार नली के जरिए तेल निकालने की व्यवस्था की जाती है और तेल पात्र रखने के लिए कुण्ड भी नाया जाता है। विशेष विवरण के लिए उपयुक्त काष्ठ घानी की प्रस्तापना देखिये।

लोह-ऊखल चारों आधारीय बोल्टों पर ¾" के षटभुजीय नट्सों, दृढ़तापूर्वक कसी जाती है।

(इ) पुरानी घानी का वर्धा घानी में परिवर्तन

उपर्युक्त परिमाप के अनुसार तैयार किये गये परिवतनीय हिस्सों को पुरानी ऊखल में फिट करके पुरानी घानी भी वर्धा घानी में परिवर्तित की जा सकती है। ऊखल के भीतरी हिस्सों को इस प्रकार बना लेना चाहिए कि उसमें परिवतनीय हिस्से समा सकें और चित्र संख्या-१० में बताये गये अनुसार निचोलक के लिए स्थान रह सके तथा घानी के ऊपर छोटी सी किनारी रह सके।

अध्याय १०

तेल पेराई

तिलहन में तेल कई जगह सूक्ष्म बिंदुओं के रूप में निहित रहता है और उसके चारों ओर मजबूत खोल होती है। तेल पेराई में तीन विभिन्न प्रक्रियाएं होती हैं—१) कुचलना २) गर्मी पहुंचाना और ३) पेरना। तेल पेराई के लिए तिलहन में कुछ पानी डालने का विशेष महत्व है। तेल-बिंदुओं के चतुर्दिक जो खोल रहती है, वह पानी देने से मुलायम पड़ जाती है। कुचलने से तिलहन के विभिन्न तत्व पृथक-पृथक हो जाते हैं। गर्मी पहुंचाने से खोल गर्म होकर फैलती है, फट जाती है और उससे तेल निकल आता है। और पेराई करने का अभिप्राय होता है—दबाकर तेल अलग कर लेना और खली के टुकड़े अलग कर देना। पेराई चाहे मिल में की जाये चाहे ग्रामीण घानी में, ये तीनों प्रक्रियाएं अत्यावश्यक हैं।

यदि तेली पेराई करते समय पानी देने की कला नहीं सीख लेता, तो पेराई में दोष रहेगा, अधिक समय लगेगा और प्राप्त हुए तेल का अनुपात भी बहुत कम रहेगा। और यह हुनर सीखना आसान नहीं है, क्योंकि इसके लिए कोई सुनिश्चित नियम नहीं है और पानी किस अनुपात से दिया जाये, यह बात कई बातों पर निर्भर होती है, जैसे कि तिलहन कितना पका हुआ है, मौसम की स्थिति आदि। यह जानने का सिर्फ एक ही तरीका है कि पानी ज्यादा पड़ गया है या कम है या ठीक है और वह है खली को लेकर देखना। यह बात निरीक्षण और अनुभव से जानी जा सकती है और इसके लिए तेली की दक्षता ही खास चीज है। वर्षा ऋतु में वायुमण्डल में नमी रहती है, इसलिए तब पेराई के लिए जाड़े की ऋतु के मुकाबले कम पानी देना होता है और गर्मी के मौसम से और भी कम।

यदि पानी जरूरत से कम दिया गया है, तो संपूर्ण तेल की प्राप्ति न होगी और खली सूखी होगी। इसके विपरीत यदि पानी ज्यादा हो गया, तो खली चिपचिपी

होगी और इस दशा में भी तेल की प्राप्ति कम होगी। इसलिए यह जरूरी है कि पानी ठीक उतना ही दिया जाये, जितना कि आवश्यक है। पानी पर्याप्त मात्रा में मिलाया गया है, यह जानने का एक स्थूल उपाय यह है कि कुछ कुचला हुआ तिलहन लेकर उसकी एक गोली बनायी जाये। यदि वह ठीक बन जाये, तो समझना चाहिए कि पानी पर्याप्त है और यदि वह गोली बिखर जाये, तो समझिये कि पानी पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलाया गया।

पानी की मात्रा के अतिरिक्त यह जानना भी बहुत जरूरी है कि पानी किस समय डाला जाये। चूंकि पानी देने से बीज से तेल मजे में निकल आता है और पेराइ में भी सरलता होती है, इसलिए यह प्रारंभ में ही मिला दिया जाना चाहिए और फिर ज्यों-ज्यों तिलहन पिस कर महीन होता जाये और सूखता जाये, थोड़ा-थोड़ा पानी देते रहना चाहिए। यदि बारीक पिसाई होने के पहले ही पानी ज्यादा डाल दिया गया, तो तिलहन चिपचिपा हो जायेगा और उसे बारीकी से पिसने में अधिक समय लगेगा। इसके खिलाफ अगर ठीक समय पर पानी न दिया गया, तो सूखा कुचला तिलहन घानी में ढुलकता रहेगा और वह खली का रूप न लेगा और इस कारण भी घान पूरा करने में अधिक समय लगेगा। खली बने, इसके लिए जरूरी है कि घानी के निचले भाग में कुछ पानी डाला जाये, क्योंकि जब तक नीचे खली नहीं तैयार होगी, तब तक ऊपर वाला चूर घूमता ही रहेगा और खली नहीं तैयार होगी।

आगे के अध्यायों में बड़े आकार की घानी में विभिन्न प्रकार के तिलहनों की पेराइ के संबंध में विस्तृत विवरण देने का प्रयास किया गया है। इसमें २० पौण्ड तिल प्रति घान डाला जा सकता है, जबकि छोटी घानी में केवल १२ पौण्ड प्रति घान ही डाला जाता है। इसी हिसाब से यह आंका जा सकता है कि छोटी घानी में दूसरे तिलहन प्रति घान किस मात्रा में पेरे जा सकते हैं।

४— प्रति घान किस परिमाण में तिलहन डाला जाये, यह इस बात पर निर्भर है कि घानी से तेल निकल जाने के बाद उसमें खली कितनी रह जाती है। जिन तिलहनों में तेल का अनुपात अधिक होता है, उनकी पेराई के पश्चात् घानी में कम खली रहेगी और इसलिए उसकी अधिक मात्रा घानी में प्रति घान डाली जा सकती है और जिन तिलहनों में तेल की मात्रा कम रहती है, वे कम परिमाण में

ही डाले जा सकते हैं, क्योंकि वे ज्यादा खली प्रस्तुत करेंगे।

घान में तिलहन उपयुक्त मात्रा में है और जरूरत से कम या ज्यादा नहीं है, इस बात की पहचान यह है कि ऐसी दशा में मूसल सतुलन बिन्दु पर टिकेगा।

गरम पानी मिलाना हमेशा अच्छा होता है। पानी की जो निर्धारित मात्रा है। उसे बिल्कुल ठीक ही नहीं मानना चाहिए, वह यह देखकर कम ज्यादा की जा सकती है कि तिलहन की किस्म कैसी है, उसमें किस हद तक नमी मौजूद है, चेरुट और कुट के गहुए में खली अनुपात में बनती है, घानी की लकड़ी किस किस्म की है (हरी या पकी हुई) तथा इसी तरह की दूसरी बातें।

ब) जिंजली

प्रति घान क्षमता २० पौण्ड। प्रतिघान समय १ घटा १५ मिनट

तेल पराद मिलाये गये पानी की मात्रा ४५ प्रतिशत, जाड़े और गर्मी में ६५ तोले, वर्षा ऋतु में ४५ से ५५ तोले तक

पहला पानी घान शुरू करने के लगभग ५ मिनट बाद १५ तोला पानी चेरुट में और १० तोला गहुए में

दूसरा पानी पहली बार के ५ मिनट बाद, चेरुट में ३५ तोले

तीसरा पानी ढका हटाने से ठीक ५ मिनट पहले, ५ तोले पानी डालने से नीचे तलछट आसानी से बैठ जाता है।

मूसल घानी में घूमे, इसके लिए पहले कुल घान का केवल तीन चौथाई तिलहन कुचला जाता है और शेष को ओखली के सिरे पर रखा जाता है। लगभग ५ मिनट पश्चात्, जब कुंड के निचले भाग में डाला गया तिलहन ऊपर आ जाता है, तब पहला पानी दिया जाता है। बरसात के मौसम में बीज चिपचिपे हो जाते हैं और आसानी से ऊपर नहीं आते। यदि ऐसी दशा हो, तो पानी मिलाने के पहले उन्हें दो-एक बार कुरेदना जरूरी होगा। गहुए में डाला गया पानी चेरुट में नहीं रह जाये और साकेट में पहुच जाये, इसके लिए पानी जाने के लिए जगह बना कर गले के पास चमचे से फिर पानी डालना चाहिए।

यदि गलुए में पर्याप्त मात्रा में पानी नहीं पहुंचेगा, तो चेस्ट की खली चिपचिपी हो जायेगी और बीजों की बारीक पिराइ होने के पहले ही तेल निकलने लगेगा। गलुए में जो चूरा है, उसकी भी खली नहीं बनेगी और जब हिलाये जाने से वह ऊपर जायेगा, तो इससे तेल बहुत समय तक अलग न हो सकेगा। जब नली खोली जायेगी, तो जो तेल निकलेगा, उसमें चूरा भी मिला होगा। अत यदि चेस्ट में आवश्यकता से अधिक पानी है, तो तेल भली-भाति पेराइ हुए बिना ही और ठीक-ठीक अनुपात में होने पर निकलनें लगेगा। बरसात के दिनों में पहला पानी केवल ५ तोले गलुए में डालना चाहिए अन्यथा मूसल ऊपर उठ आयेगा।

पहला पानी मिलाये जाने के बाद विलोचक्र से घान को हिलाना चाहिए और करीब ५ मिनट पश्चात दूसरा पानी ३५ तोले और यदि वर्षा ऋतु है, तो केवल १५ या २० तोले चेस्ट में डाला जाना चाहिए। यह दूसरा पानी मिलाते समय यदि यह जान पड़े कि गलुए में पानी पर्याप्त मात्रा में नहीं पहुचा, तो दूसरे पानी में से ३ तोला पानी गलुए में डाला जाना चाहिए। दूसरा पानी देने के बाद शेष बीजों को चूरे के साथ मिला देना चाहिए, जो कि दबाव पड़ने पर अधिक जगह प्रस्तुत करता है, ताकि मूसल तिरछा चल सके।

दूसरा पानी मिलाते समय यदि केवल समय का ही ध्यान रखा गया, तो ज्यादा काम नहीं बनेगा। पिसाई की दशा भी ध्यान में रखनी होगी। दूसरा पानी तभी मिलाया जाना चाहिए, जब ७५ प्रतिशत पिसाइ हो चुकी हो अन्यथा खली बनना जल्दी शुरू हो जायेगा और अधपिसे बीज खली में समा जायेंगे, जिससे पिसाई अपूर्ण रह जायेगी और तेल कम मात्रा में निकलेगा। यदि दूसरा पानी देने में देर की गयी और वह तब मिलाया गया, जब बीज पूर्ण रूप से पिस चुके हों, तो पिसे बीज 'गाढ़ी लेइ' की तरह घूमते रहेंगे और उनकी खली नहीं बनेगी।

दूसरा पानी देने के १० मिनट बाद, जब तेल प्रकट होने लगे, तो कुंड से थोड़ा सा चूरा लेकर उसकी गोली बनानी चाहिए। यदि यह गोली बिखर जाये, तो जैसा कि पहले कहा जा चुका है, समझना चाहिए कि पानी अपर्याप्त मात्रा में मिलाया गया है। यह त्रुटि दूर करने के लिए चेस्ट में लगभग ५ तोला पानी डालना चाहिए। इस दशा में खली को एक छड़ से ५-६ बार उलटना-पलटना चाहिए। ऐसा

करने से चूरा खली के साथ मिल जायेगा और तेल शुद्ध निकलेगा। अब तीसरा पानी मिलाया जाना चाहिए और विलोचक हटा देना चाहिए, ताकि खली सिरे पर इकट्ठी हो जाये। ऐसा करने के लगभग ५ मिनट बाद नली खोल देनी चाहिए तेल बहकर बाहर निकल आये। एकत्रित तेल को स्थिर होने देना चाहिए और जो तलछट नीचे बैठ जाये, उसे फिर कुंड में डाल देना चाहिए। नली को समय-समय पर एक छड़ से साफ करते रहना चाहिए। सारा तेल लगभग १½ घंटे में निकल आता है। अंत में २–३ तोले पानी खली पर छिड़कना चाहिए, ताकि खली मुलायम हो जाये और कुंड से अलग हो जाये। तब बैल को ४–५ बार चक्कर घुमाना चाहिए और फिर खली निकाल लेना चाहिए।

आ) मूंगफली

क्षमता प्रति घान २० पौंड समय प्रति घान १ घंटा

तेल प्राप्ति ४५ से ४९ प्रतिशत, कुल पानी की मात्रा जाड़े व गर्मी में ६० तोले
वर्षा ऋतु में ३०–३५ तोले।

बीजों को घानी में डालने से पहले लोहे के कड़ाह में गरम करना अच्छा रहता है। यदि बिना गरम किये गये वे बीज पेरे गये, तो तेल देखने में दूध की तरह सफेद होगा और उसमें तलछट मिली होगी। गरम करने से विशुद्ध तेल प्राप्त होता है।

मूंगफली की पेराई का तरीका लगभग वैसा ही है जैसा तिल्ली की पेराई का, फर्क सिर्फ इतना ही है कि गड्ढे में पानी ५ तोला कम डालना चाहिए।

वर्षा ऋतु में नमी के कारण दाने मुलायम पड़ जाते हैं, इसलिए पानी कम मात्रा में मिलाया जाता है, लगभग ३५ तोले पानी देना चाहिए, जिसमें से केवल ५ तोले गड्ढे में डालना चाहिए।

अनुभव से ज्ञात हुआ है कि मूंगफली को छिलका सहित पेरना, उसे छिलका पृथक करके पेरने से अच्छा है। इससे समय की बचत होती है और तेल भी निर्मल निकलता है। एक्सपेलर में भी उसी सुविधा के लिए पेराई के लिए छिले

हुए मूगफली के दानों के साथ कुछ बगैर छिलके मूगफली भी डाली जाती है। इसकी खली पशुओं के खाने योग्य होती है और खानदेश जैसे कुछ स्थानों में इस रूप में प्रयुक्त भी होती है।

लेकिन यह ध्यान में रखना चाहिए कि यदि बगैर छिले दानों को पेरना है, तो उन्हें अच्छी तरह धोकर मिट्टी आदि उनमें बिल्कुल नहीं रहने देना चाहिए। तेल पूरी मात्रा में प्राप्त हो और पशुओं के लिए शुद्ध खली तैयार हो। छोटे दाने और पतले छिलके वाली मूगफली, जो अधिक अनुपात में तेल देती है, छिलका सहित पेराइ के लिए ठीक है। यदि बड़े दाने की मूगफली को पेरना हो, तो कुल मूगफली का केवल कुछ भाग ही छिलकेदार रखा जा सकता है। छिलकों के साथ बीजों की पेराइ करने से प्राप्त होने वाले तेल के अनुपात में कमी नहीं होती और इससे पेराइ में निस्सदेह आसानी होती है, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। इससे छिलाई करने की मेहनत बच जाती है। लेकिन प्रति घान की क्षमता तनिक कम हो जाती है।

लेकिन यदि खली को मनुष्य के उपयोग के लिए रखना है, तो केवल छिले हुए दाने ही पेरने चाहिए।

(इ) नारियल

क्षमता प्रति घान २० पौण्ड, समय प्रति घान ४५ मिनट, तेल की प्राप्ति ५५ से ६२ प्रतिशत तक, पानी की मात्रा—गर्मी व जाड़े में ३० तोले और वर्षा में १५ से २० तोले तक।

पहला पानी प्रारभ में चेस्ट में ५ तोले।

दूसरा पानी १० मिनट पश्चात १० तोले चेस्ट में और गट्टए में ५ तोले।

तीसरा पानी दूसरा पानी देने के १० मिनट बाद ५ से १० तोले तक।

पहला पानी देने के बाद, जब कि बड़े टुकड़े पिस रहे हों, चूरे को छड़ से दो-एक बार हिलाना-डुलाना चाहिए। जब वह सूख जाये, तब उसमें दूसरा पानी देना चाहिए। इसके लगभग १० मिनट बाद, जब चूरा तेज वेग से घूम रहा हो, तीसरा पानी दिया जाता है। इससे चूरे से तेल अलग हो जाता है

और चूरा शेष खली के साथ मिल जाता है । इस दशा में खली को फिर एक या दो बार हिलाना-डुलाना चाहिए ।

(ई) अलसी

क्षमता प्रति घान-१२ पौण्ड, समय प्रति घान- १½ घंटा,

तेल प्राप्ति ३२ प्रतिशत से ३५ तक, पानी की मात्रा : जाड़े व गर्मी में ६५ तोले, बरसात में ५० तोले ।

पहला पानी प्रारम्भ में १० तोले चेस्ट में ।

दूसरा पानी २५ मिनट बाद, १५ तोले चेस्ट में और १० तोले गल्ए में ।

तीसरा पानी दूसरे पानी के १५ मिनट बाद २५ से ३० तोले तक चेस्ट में ।

जिन चीजों को एक घान में डाला जाता है, उन सबको शुरू से ही कुचला जाता है । चेस्ट में लगभग १० तोले पानी छिड़का जाता है । यह पानी सख्त और चिकने अलसी के बीजों को मुलायम कर देता है, जिससे बीज फिसलते नहीं हैं ।

पहला पानी देने के लगभग २५ मिनट पश्चात, जब कि बीज अधकुचले रहते हैं, दूसरा पानी देना चाहिए, जैसा कि ऊपर बताया गया है। यह पानी चूरे को ज्यादा मुलायम और चिपचिपा बना देता है, जिससे वह दबकर ठोस हो जाता है और तेजी से घूमता है । इस अवस्था में विलोचक से उसे हिलाना-डुलाना चाहिए।

दूसरा पानी देने के लगभग १० मिनट बाद; जब चूरा सख्त हो जाये, तेल निकालने लगे और प्रवाह मन्द हो जाये, तब तीसरा पानी देना चाहिए । इससे चूरा फिर मुलायम और चिपचिपा हो जाता है और प्रवाह को गति मिलती है । इस बार चूरा बहुत बारीक हो जाता है और तेल लगभग १० मिनट में आता है । चूंकि अलसी में तेल का अनुपात अपेक्षतया कम होता है, इसलिए जो तेल कुंड में जाता है, वह यदि गल्ए में पर्याप्त पानी पहुंच जाता है, तो गल्ए में चला जाता है । अब चेस्ट में तेल नहीं रहना चाहिए, यदि अब भी निकाला गया तेल चेस्ट में रहे, तो समझना चाहिए कि गल्ए में पर्याप्त पानी नहीं पहुंचा और विशुद्ध तेल होने के बजाय उसमें तलछट शामिल है ।

अलसी की खली को पलटना खास जरूरी नहीं है। लेकिन जो कीच आदि घानी में जमा होती है, वह घान के साथ मिल न जाये, इसके लिए खली को चार-पाच बार पलटना चाहिए।

जब तेल चूरे से अलग हो जाये, तब विन्चोलक को हटा लेना चाहिए। यदि चेस्ट में एकत्रित हुआ तेल गलुए में न जाये, तो नली को खोल देना चाहिए और जो तलछट हो उसे फिर खली क साथ मिला देना चाहिए। कुड से खली को अलग करने के लिए पानी छिड़कने की कोइ जरूरत नहीं है। प्रक्रिया के सबध में अन्य जानकारी के लिए जिंजली के विषय में जो विवरण दिया गया है, वह देखना चाहिए। अलसी के मामले में नली को जल्दी खोल देना बेहतर होगा।

(उ) सरसों -

क्षमता प्रति घान १५ पौण्ड, समय प्रति घान १½ से १¾ घटा, तेल प्राप्ति ३० प्रतिशत, पानी की मात्रा गर्मी व जाड़े म ७० तोले, बरसात में ६० तोले।

सरसों पेरने का तरीका अलसी पेरने जैसा ही है।

(ऊ) राई

क्षमता प्रति घान १६ पौण्ड, समय प्रति घान १½ घटा तेल प्राप्ति ३० प्रतिशत से ४० प्रतिशत, पानी की मात्रा ६० तोले से ६५ तोले तक।

पराइ प्रक्रिया वैसी है जैसी अलसी और सरसों की पेराई की।

नोट - राइ और सरसों में पानी देन का दूसरा तरीका यह है कि एक लोहे की कड़ाही में तिलहन रखकर उसमें लगभग १५ तोले पानी भली-भाति मिलाया जाये, ताकि पानी सभी बीजों तक पहुच जाये। फिर उसे घानी में डालना चाहिए। शेष तिलहन में पेराइ के समय डाला जाता है।

(ए) महुआ

क्षमता प्रति घान १६ पौण्ड, समय प्रति घान ¾ घटा।

तेल प्राप्ति ३५ प्रतिशत, पानी की मात्रा २० से २५ तोले तक।

पहला पानी शुरू में ५ तोले चेस्ट में ।

दूसरा पानी २० मिनट पश्चात १० तोले चेस्ट में और ५ तोले गड्डए में।

तीसरा पानी दूसरे पानी के १० मिनट बाद, ५ तोले गड्डए में ।

यदि बीज पके नहीं हों और सफेद तथा गीले हों, तो पानी की जरूरत बिल्कुल नहीं है । ऐसे बीजों से तेल भी कम अनुपात में प्राप्त होता है । यदि बीज पके हुए, लाल और सूखे होते हैं, तो पानी की आवश्यकता होती है । साधारण तथा ताजे बीज केवल वर्षा ऋतु के प्रारंभ में ही प्राप्त होते हैं, इसलिए उनमें अपेक्षतया कम पानी मिलाना चाहिए । केवल ताजे बीज ही भलीभांति पेरे जा सकते हैं। पुराने बीजों में कुछ महुआ फूल मिलाये बिना उनसे तेल निकालना बहुत कठिन होता है । यदि बीज सूखे हों, तभी पहला पानी चेस्ट में मिलाया जाना चाहिए । दूसरा और तीसरा पानी उसी तरह मिलाया जाना चाहिए, जैसे पहले बताया जा चुका है । खली को २-३ बार पलटना चाहिए ।

(ऐ) अंडी

क्षमता प्रति घान १८ पौण्ड (मय छिलका),

समय प्रति घान १ घंटा तेल प्राप्ति ४० प्रतिशत,

पानी की मात्रा कुछ नहीं ।

बीजों को गरम पानी से सिर्फ धोया जाता है और फिर उनसे पानी बिल्कुल निकाल कर उन्हें कुंड में डाल दिया जाता है । इससे बीज मुलायम हो जाते हैं। विधि यह है कि बीजों को एक ऐसे डिब्बे या टोकरी में लिया जाता है, जिसमें एक झूठा पेंदा' लगा होता है जिसमें छेद होते हैं । बीजों पर खौलता पानी डाला जाता है । यह पानी बीजों के बीच में होता हुआ पेंदे तक पहुंचता है । पानी डालने के दो मिनट बाद बीज घानी में डाले जा सकते हैं ।

तेल १०-१५ मिनट में निकलने लगता है और तब खली को २ या ३ बार पलटना चाहिए और नाली खोल देनी चाहिए ।

जिस समय बीजों को कुंड में डाला जाता है, उस समय यदि बीजों के साथ थोड़ा सा पानी भी रह जाता है, तो खली बहुत चिपचिपी हो जाती है। मूसल बाहर आ जाता है और गर्मी नहीं पैदा होती। ऐसी स्थिति में बीजों को, कुंड में एक जलती मशाल घुमा-घुमा कर, गरम करना चाहिए। गर्मी से पानी भाप बन कर चला जाता है। कुंड में गर्मी पैदा होती है और तेल निकलने लगता है।

पेरते समय जो पानी बीजों के साथ मिलाया जाता है, वह तेल के साथ नहीं मिलता, बल्कि उसे खली सोख लेती है। लेकिन यदि तेल में खली का कुछ चूरा रह जाता है, तो उसमें पानी का भी कुछ अंश बना रहता है। यह पानी और वह चूरा भी, तेल में कुछ समय बाद दुर्गंध पैदा कर देते हैं। यदि बीज निम्न कोटि के होते हैं या उन्हें भलीभांति रखा नहीं जाता अथवा घानी में डालने के पहले उन्हें पूर्ण रूप से साफ नहीं कर लिया जाता, तो भी तेल में गंध पैदा हो जाती है।

तेल को सुरक्षित रखना और उसे परिष्कृत करना

ताजे पेरे गये घानी तेल में निम्नलिखित कचरा रहता है –

१) नमी, २) श्लेष्मीय पदार्थ, ३) तैरते हुए खली के टुकड़े आदि, ४) विकरीय पदार्थ जो मिश्रित तत्वों को प्रथक कर देते हैं और ५) मुक्त स्नेहाम्ल।

घानी के तेल को तरजीह मिलने का खास कारण यह है कि उसके स्वाद और रंग, मिल तेल के मुकाबले अच्छे होते हैं।

तेल में जो इधर-उधर की चीजें मिल जाती हैं, उनसे उसकी अधिक दिन तक न बिगड़ने की खूबी नष्ट होती है।

बगैर साफ किये गये घानी तेल के सम्बन्ध में दो शिकायतें सुनने में आती हैं कि (१) वह गोदामों आदि में रखे जाने पर खराब हो जाता है और उससे दुर्गंध आने लगती है और वह खाने योग्य नहीं रहता और (२) जब गरम तेल में पूरी आदि पकाने के लिए डाली जाती है, तो उसमें फेन बहुत उठता है। यह स्पष्ट है कि ये दोनों दोष नमी तथा श्लेष्मीय व विकरीय पदार्थों को

जमा कर हटाया जा सकता है और अम्ल को भी हटाया जा सकता है। इस प्रकार के आवश्यक परिष्करण के पश्चात तेल को ६ मास से अधिक समय तक रखा जा सकता है और फिर भी वह खराब नहीं होगा।

ऊपर जो दोष बताये गये हैं, उन सबकी शुरुआत इस बात से होती है कि तिलहन के साथ कुछ खराब, विकृत और आंशिक रूप में सड़े हुए बीज भी आ जाते हैं और दोष उत्पन्न करते हैं। यदि इस तरह के दोष युक्त पदार्थों को पहले ही हटा देने का ध्यान रखा गया, तो जल्दी ही तेल खराब होने की सभावना बहुत कम रहेगी। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि तेल साफ बर्तनों में रखा जाये, जिनके भीतर नमी और हवा या बिल्कुल नहीं पहुंचे या बहुत ही कम।

इन त्रुटियों को दूर करने के ध्येय से जो जांच-पड़ताल की गयी है, उससे निम्नलिखित निष्कर्ष निकले हैं —

(१) यदि तिल्ली के तेल को सावधानी से छान कर हवा और नमी से बचा कर रखा जाये, तो उसमें ६ मास बाद भी खराबी नहीं आयेगी, जब कि कोरे अनछने तेल में १ सप्ताह में ही खराबी आने के लक्षण प्रकट होने लगते हैं और छना हुआ तेल भी यदि हवा और नमी से बचा कर न रखा गया, तो वह ज्यादा समय तक खराब होने से नहीं बच सकता।

(२) यदि तेल में उसके परिमाण का १ प्रतिशत पिसा हुआ नमक मिला दिया जाये, तो उसमें मिले हुए द्वितीय पदार्थ जम जाते हैं और तेल ६ सप्ताह से ९ सप्ताह तक अच्छा बना रह सकता है। लेकिन यह ध्यान रखना चाहिए कि नमक मिलाने के जो परिष्करण हों जिसमें २४ घंटे का समय लगेगा, उसके बाद फौरन वह द्वितीय पदार्थ निकाल डाला जाये, जो पेंदे पर नमक के साथ बैठ जायेगा।

(३) युक्त स्नेहाम्ल से रहित किया गया तेल ६ सप्ताह तक नहीं खराब होता। इस परिष्करण की विधि में तेल के साथ लकड़ी की भस्म का वह अंश मिलाया जाता है, जो घुलनशील होता है और जिसमें ऊंचे तापमान पर ५ प्रतिशत से ९ प्रतिशत तक पोटाश रहता है। फिर तेल को छानना चाहिए अथवा निथार कर फेनिल और जमी हुई चीज निकाल देनी चाहिए। तिल्ली के तेल में ज्यादा सफलता नहीं होती और उसके लिए ऊपर दिये गये अनुपात में ही राख की

जरूरत होती है। लेकिन ऐसे भी तेल हैं, जिनका अम्ल मूल्य (एसिड वेल्यू) २० तक होता है और उनके लिए अम्ल का शमन करने के निमित्त अपेक्षतया अधिक मात्रा में भस्म डालने की जरूरत होती है।

(४) नमक और भस्म के मिश्रणसे परिष्कृत करना बहुत अच्छा रहता है और इससे तेल की ताजगी ३ मास तक कायम रहती है।

(५) यह जाचने के लिए थान में गरम तेल डालने से (तेल प्राप्ति में वृद्धि के लिए) तेल में आगे चलकर खराबी तो नहीं आती, यह ज्ञात हुआ कि वह ऐसा करने के फलस्वरूप विकृत नहीं होता।

(६) अभी तक नमी को केवल प्लास्टर आफ पेरिस से दूर किया जाता था, क्योंकि अन्य किसी प्रकार की मिट्टी इसके लिए विशेष उपयुक्त नहीं सिद्ध हुई थी। लेकिन ज्ञात हुआ है कि नमक और भस्म से साफ किया गये तेल को नमी विशेष रूप से कुप्रभावित नहीं करती।

(७) तेल से फेन उठने के सम्बन्ध में यह बात ज्ञात हुई कि जिन कारणों से तेल खराब हो जाता है, उन्हीं कारणों से वह फेन भी देता है। रासायनिक ढंग से साफ किया गया तेल फेन तभी दे सकता है, जब पूड़ी आदि उसमें बिना उसके भलीभांति गरम हुए ही डाल दी जायेगी, अन्यथा नहीं।

अध्याय ११

सहायक उद्योग

किसी उद्योग के जीवित रहने के लिए यह आवश्यक है कि वह इतना शक्तिशाली हो, जिससे उसके कार्यकर्ताओं को सम्मानपूर्ण जीवन-यापन योग्य कमाई हो सके। ग्रामोद्योगों के बारे में तो यह बात और भी ज्यादा सही साबित होती है। ग्रामोद्योगों की आज की गिरावट का प्रधान कारण अगर ढूंढा जाये, तो पता चलेगा कि यह कारण उन उद्योगों में काम करनेवाले लोगों की जीवन-यापन योग्य रोजी जुटा पाने की उनकी असमर्थता ही है। इस सम्बन्ध में तेल मिलों को घानियों की अपेक्षा अधिक सुविधाएं प्राप्त हैं। घानियों के साथ स्पर्धा करते हुए उन्हें साबुन, रंग, वार्निश, वनस्पति घी आदि सहायक उद्योगों के संचालन से पर्याप्त सहायता मिलती है। घानियां भी अपनी क्षमता के अन्तर्गत यथा सम्भव इन प्राप्त सीमित साधनों द्वारा सहायक उद्योगों को चला कर लाभ उठा सकती हैं। इन सहायक उद्योगों के संचालन का आर्थिक विवरण अध्याय ५ में दिया जा चुका है।

सहायक उद्योग सम्बन्धी इस अध्याय में इन उद्योगों के प्राविधिक पहलू का विवरण देने की कोशिश की गयी है।

संक्षिप्त रूप से नीचे लिखे सहायक उद्योग तेलियों की औद्योगिक सहकारी समितियां लाभकर रूप में अपना सकती हैं –

(१) क्वथित (उबले) तेलों का तैयार करना,

(२) अखाद्य तथा चिपचिपे तेलों से साबुन बनाना,

(३) मेध्य तेल तैयार करना,

(४) तेल और खली से बिस्कुट और मिठाइयां वगैरह तैयार करना।

(१) क्वथित तेल तैयार करना

केवल अलसी के तेल से ही क्वथित तेल तैयार किये जाते हैं। अधिलेपी रंग (पेण्ट) वार्निस, मोमजामा लिनोनियम् तथा नहाने के साबुन बनाने में अलसी का तेल आम तौर पर इस्तेमाल होता है। अलसी के तेल को सोख्ता तेल कहा जाता है, क्योंकि वह बड़ी जल्दी सूख जाता है। ऐसा इसलिए होता है कि अलसी का तेल वायुमण्डल से आक्सीजन गैस बड़ी जल्दी सोख लेता है और उसकी ऊपर की सतह कड़ी पड़ जाती है।

किसी चीज पर पोतने के (अधिलेपन) रंग यानी पेण्ट तथा वार्निस बनाने में अलसी के तेल का जिन रूपों में प्रयोग किया जाता है, उन्हें चार विभागों में विभक्त किया जा सकता है। अ) ताजा पेरा हुआ कच्चा तेल, आ) पका तेल, इ) परिष्कृत तेल, ई) क्वथित तेल।

ताजा कच्चा तेल बहुत धीरे-धीरे सूखता है और सूखी हुई पपड़ी में दोष बहुत होते हैं।

पका तेल कच्चे तेल से इस कारण अच्छा समझा जाता है कि वह बिल्कुल शुद्ध होता है और उसमें निलंबित गंदगी नहीं होती। पका तेल तैयार करने के लिए ताजे कच्चे तेल को वातप्रतिषिद्ध पीपों में एक साल तक भाडीकृत करना चाहिए। इसके बाद तुरन्त ही उसे क्वथित तेल के उत्पादन के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

यदि पका तेल अप्राप्य हो तो, ताजे कच्चे तेल को केवल तपाकर काम में लाया जा सकता है। कच्चे तेल को पहले तेजी से २६० डिग्री सेंटीग्रेड तक गरम किया जाता है और तब उसे ठंढा होने देते हैं। इसके बाद इस तेल को निथारने के लिए एक हफ्ते तक बैठने देते हैं और फिर ऊपर का साफ तेल लेकर उबालते हैं। यह उबला हुआ साफ तेल ही परिष्कृत तेल के नाम से मशहूर है।

ऊपर लिखे ये तीनों किस्मों के तेल यानी ताजा कच्चा तेल, पका तेल और परिष्कृत तेल बहुत धीरे-धीरे सूखते हैं। उनका यह दोष कुछ शोषक पदार्थ उनमें मिलाकर और तब तेल को २०० डिग्री सेंटीग्रेड तक ६ से लेकर ८ घंटे तक उबालकर दूर किया जा सकता है। इस तरह तैयार किया गया तेल क्वथित तेल कहलाता है,

जिसमें शीघ्रतापूर्वक सूख जाने का गुण होता है ।

शोषक पदार्थ बनाना

आजकल ज्यादातर इस्तेमाल किये जाने वाले शोषक पदार्थों में कोबल्ट, सीसा और मैंगनीज के रोजिनेट ही रहते हैं। इन धातुओं के केवल आक्साइड लवण ही इस काम के लिए इस्तेमाल किये जा सकते हैं। लेकिन वे रोजिनेटों की तरह प्रभावी नहीं होते। रोजिनेट लवण आक्साइड लवणों की अपेक्षा अधिक आसानी से तेल में घट जाते हैं और शोषण की गति तेज कर देते हैं। रोजिनेट बनाने के कोबल्ट, सीसा और मैंगनीज आक्साइड्स को रोजिन से संयुक्त करने के लिए नीचे लिखा तरीका अमल में लाया जाता है —

एक तामचीनी या पीतल के बर्तन में रोजिन को रखकर गरम करते हैं। पिघल जाने पर और सारे रोजिन के तरल हो जाने पर ऊपर लिखित तीनों धातुओं में से किसी एक का ओषजिद निम्नलिखित अनुपात के अनुसार लेकर पिघली हुई धातु में मिलाया जाता है और तब इस मिश्रण की इतनी घोटाई की जाती है कि तली में जरा सा भी आक्साइड शेष न रह जाये और सबका सब द्रव धातु में घुल जाये। इस प्रकार तैयार किया गया यह योग रोजिनेट कहलाता है। प्रत्येक प्रकार का रोजिनेट अलग–अलग बनाया जाता है।

रोजिन और आक्साइड का अनुपात

रोजिन	कोबल्ट आक्साइड	सीसा आक्साइड	मैंगनीज डाइ आक्साइड
१००	६	१८	७

तैल उबलते समय रोजिनेट्स मिलाने योग्य परिमाण निम्नलिखित हैं —

तेल	कोबल्ट रोजिनेट	सीसा रोजिनेट	मैंगनीज रोजिनेट
१००	५	१	७

उबालने का तरीका

तेल को किसी भी सुविधाजनक बर्तन में उबाल सकते हैं। बर्तन में केवल दो तिहाई भरना चाहिए। उबालते वक्त बर्तन ढकना नहीं चाहिए। तेल का तापमान जब २०० डिग्री सेंटीग्रेट तक पहुँच जाये,

तब तुरंत शोषक पदार्थ उसमें मिला देना चाहिए और उन्हें खूब अच्छी तरह चलाते रहना चाहिए। इसके बाद से घोल का तापमान ७ घंटे तक लगातार २०० डिग्री सेंटीग्रेड के आसपास बनाये रखना आवश्यक है। इसके बाद तेल को कुछ थोड़ा ठण्डा होने दिया जाता है और जब वह आधा गरम रहे, तभी कपड़े से उसे ऐसे बरतन में छान लेना चाहिए, जिसमें हवा न जा सके। भर जाने पर बरतन सहेज कर रख देना चाहिए। इस तरह से तपाये गये तेल को क्वथित तेल कहा जाता है।

क्वथित तेल की परीक्षा का तरीका यह है कि पहले उसे एक लकड़ी के तख्ते पर पोतें और तब देखें कि इस तेल की तह या पुचाड़ा कितनी देर में सूख जाता है। अच्छा तेल १२ से लेकर १४ घंटे के अन्दर सूख जाने पर पुचाड़े का रंग चमकीला हो जाता है और वह कुछ चिपकने लगता है, लेकिन अगर उस पर ऊंगली फेरी जाये, तो ऊंगली का निशान उस पर नहीं बनना चाहिए।

उबालते समय ऊपर लिखे तापमान को लगातार बनाये रखने की पूरी सावधानी रखना आवश्यक है। इससे कम तापमान पर उबालने से रंग तो जरूर अच्छा आयेगा और तेल सूखेगा भी जल्दी, लेकिन गर्म करने में काफी वक्त लग जायेगा। तापमान ताप नियंत्रण (थर्मामीटर) के जरिये रखा जा सकता है। थर्मामीटर ३५० डिग्री का तापमान नाप सकता है। निश्चित तापमान से १० डिग्री कम या ज्यादा की गुंजाइश अलबत्ता रखी जा सकती है, लेकिन अच्छा तो यही होगा कि बजाय २०० डिग्री से ज्यादा तापमान बनाये रखने के १० डिग्री तक कम तापमान रखा जाये। इस बात की सावधानी रखना भी जरूरी है कि तापमान ३०० डिग्री तक न पहुंच जाये, क्योंकि उस तापमान पर आप से आप तेल में आग लग जाने का भय रहता है और आग लग जाने पर पूरी इमारत और इन्सानों की जिन्दगी का खतरा पेश हो जाता है। उतने ऊंचे तापमान पर तेल में से बड़ी बदबू आने लगती है और धुआं सा उठने लगता है। जहां तक मुमकिन हो, वह ओसारा जहां तेल गरम किया जाता है, अग्नि निरोधक होना चाहिए यानी उसकी दीवारें गारे की बनी हों और उस पर टीन की या जस्ते की चादरों की छत पड़ी हो।

जिसमें शीघ्रतापूर्वक सूख जाने का गुण होता है।

शोषक पदार्थ बनाना

आजकल ज्यादातर इस्तेमाल किये जाने वाले शोषक पदार्थों में कोबल्ट, सीसा और मैंगनीज के रोजिनेट ही रहते हैं। इन धातुओं के केवल आक्साइड लवण ही इस काम के लिए इस्तेमाल किये जा सकते हैं। लेकिन वे रोजिनेटों की तरह प्रभावी नहीं होते। रोजिनेट लवण आक्साइड लवणों की अपेक्षा अधिक आसानी से तेल में घुल जाते हैं और शोषण की गति तेज कर देते हैं। रोजिनेट बनाने के कोबल्ट, सीसा और मैंगनीज आक्साइड्स को रोजिन से संयुक्त करने के लिए नीचे लिखा तरीका अमल में लाया जाता है –

एक तामचीनी या पीतल के बर्तन में रोजिन को रखकर गरम करते हैं। पिघल जाने पर और सारे रोजिन के तरल हो जाने पर ऊपर लिखित तीनों धातुओं में से किसी एक का ओषजिद निम्नलिखित अनुपात के अनुसार लेकर पिघली हुई धातु में मिलाया जाता है और तब इस मिश्रण की इतनी घोटाई की जाती है कि तली में जरा सा भी आक्साइड शेष न रह जाये और सबका सब द्रव धातु में घुल जाये। इस प्रकार तैयार किया गया यह योग रोजिनेट कहलाता है। प्रत्येक प्रकार का रोजिनेट अलग-अलग बनाया जाता है।

रोजिन और आक्साइड का अनुपात

रोजिन	कोबल्ट आक्साइड	सीसा आक्साइड	मैंगनीज डाइ आक्साइड
१००	६	१८	७

तेल उबलते समय रोजिनेट्स मिलाने योग्य परिमाण निम्नलिखित हैं –

तेल	कोबल्ट रोजिनेट	सीसा रोजिनेट	मैंगनीज रोजिनेट
१००	१	१	[illegible]

उबालने का तरीका

तेल को किसी भी सुविधाजनक बर्तन में उबाल सकते हैं। बर्तन में केवल दो तिहाई भरना चाहिए। उबालते वक्त बर्तन ढकना नहीं चाहिए। तेल का तापमान जब २०० डिग्री सेंटीग्रेट तक पहुंच जाये,

ब तुरत शोषक पदार्थ उसमें मिला देना चाहिए और उन्हें खूब अच्छी तरह लाते रहना चाहिए । इसके बाद से घोल का तापमान घंटे तक लगातार २०० डिग्री सेंटीग्रेड के आसपास बनाये रखना आवश्यक है। इसके बाद तेल को कुछ थोड़ा ठण्डा होने दिया जाता है और जब वह आधा गरम रहे, तभी कपड़े से उसे ऐसे बर्तन में छान लेना चाहिए, जिसमें हवा आ सके। भर जाने पर बर्तन सहेज कर रख देना चाहिए। इस तरह से पाये गये तेल को क्वथित तेल कहा जाता है।

क्वथित तेल की परीक्षा का तरीका यह है कि पहले उसे एक लकड़ी के खते पर पोतें और तब देखें कि इस तेल की तह या पुचाड़ा कितनी देर में ख जाता है। अच्छा तेल १२ से लेकर १४ घंटे के अन्दर सूख जाने पर चाड़े का रंग चमकीला हो जाता है और वह कुछ चिपकने लगता है, लेकिन गर उस पर उंगली फेरी जाये, तो उंगली का निशान उस पर नहीं नना चाहिए।

उबालते समय ऊपर लिखे तापमान को लगातार बनाये रखने की पूरी सावधानी खना आवश्यक है। इससे कम तापमान पर उबालने से रंग तो जरूर अच्छा आयेगा और तेल सूखेगा भी जल्दी, लेकिन गर्म करने में काफी वक्त लग जायेगा। तापमान नाप नियन्त्रण (थर्मामीटर) के जरिये रखा जा सकता है। थर्मामीटर ३५० डिग्री का तापमान नाप सकता है। निश्चित तापमान से १० डिग्री कम या ज्यादा की गुंजाइश अलबत्ता रखी जा सकती है, लेकिन अच्छा तो यही होगा कि बजाय २०० डिग्री से ज्यादा तापमान बनाये रखने के १० डिग्री तक कम तापमान रखा जाये। इस बात की सावधानी रखना भी जरूरी है कि तापमान ३०० डिग्री तक न पहुंच जाये, क्योंकि उस तापमान पर आप से आप तेल में आग लग जाने का भय रहता है और आग लग जाने पर पूरी इमारत और इन्सानों की जिन्दगी का खतरा पैदा हो जाता है। उतने ऊंचे तापमान पर तेल में से बड़ी बदबू आने लगती है और धुआं भी उठने लगता है। जहां तक मुमकिन हो वह ओसारा जहां तेल गरम किया जाता है, अग्नि निरोधक होना चाहिए यानी उसकी दीवारें गारे की बनी हों और उस पर टीन की या जस्ते की चादरों की छत पड़ी हो।

अखाद्य तेलों तथा बदबूदार तेलों से साबुन तैयार करना

आज साबुन का इस्तेमाल शहर के घर-घर में दैनिक आवश्यकता की चीज बन गया है और साबुन का व्यवहार गावों में भी बड़ी तेजी के साथ होने लगा है।

साबुन बनाने में ज्यादातर कुरेदनेवाले क्षारों को रासायनिक तरीके पर तेल से संयुक्त किया जाता है। इस प्रकार के संयोजन की विधि को ही साबुन निर्माण की विधि कहते हैं। क्षारों और तेलों के बीच एक निश्चित संबंध बनाये रखा जाता है। इन दोनों के संयोग से जो रासायनिक परिवर्तन होता है, उसे निम्न लिखित समीकरण के रूप में लिखा जा सकता है -

तेल = वसाअम्ल+ग्लिसरीन।

तेल + कास्टिक सोडा = वसाम्ल का सोडियमजन्य लवण (साबुन)+ग्लिसरीन।

साबुन दो प्रकार के होते हैं। कठोर और मृदु यानी नरम। कठोर साबुन कास्टिक सोडा से बनाये जाते हैं और मृदु साबुन कास्टिक पोटाश की सहायता से। साबुनों का श्रेणी विभाजन नीचे लिखे तरीके पर किया जाता है -

(१) उनके निर्माण में प्रयोग किये जानेवाले तेलों, क्षारों आदि की प्रकृति के आधार पर यानी कास्टिक सोडा से बने हुए साबुन कठोर साबुन कहलाते हैं और कास्टिक पोटाश से बने हुए साबुन मृदु साबुन।

(२) उनके निर्माण में प्रयोग की जानेवाली विधि के आधार पर जैसे-शीत निर्माण विधि से बने साबुन अर्ध क्वथित साबुन, उष्ण विधि निर्मित साबुन, दानेदार और फिटेड साबुन।

(३) उनके उपयोग के आधार पर जैसे धोने का साबुन, प्रसाधन साबुन, उद्योगों में काम आनेवाला साबुन, फर्श सफाई साबुन, औषधीय साबुन इत्यादि। संख्या (२) की प्रथम तीन प्रक्रियाओं में वर्णित साबुन बनाने के लिए उपयोग की गयी समूची सामग्री साबुन में ही मौजूद बनी रहती है। दानेदार साबुन में ग्लिसरीन तथा अन्य अशुद्धताओं का कुछ ही अंश निकाला जाता है, वहाँ फिटेड (अवक्षिप्त) साबुन में से ग्लिसरीन और अशुद्धता पूर्णतया बाहर निकाल दी जाती है। इससे साबुन पूर्णरूपेण शुद्ध हो जाता है।

शीत प्रक्रिया साबुन

इस प्रक्रिया में तेल या स्नेहिल (चरबी) को आवश्यक परिमाण के कास्टिक सोडे के कड़े घोल में सीधे ही मिला दिया जाता है और उसे सामान्य तापक्रम के पानी में छोड़ दिया जाता है। स्नेहिल स्टाक यानी कास्टिक घोलों के साथ तेलों को सम्मिलित करने हेतु किसी प्रकार की गर्मी की जरूरत नहीं पड़ती, सिर्फ ठोस तेल या स्नेह को पिघलाने के लिए ही उसकी जरूरत पड़ती है। वास्तव में कास्टिक घोल और तेलों को संयुक्त करते वक्त जो प्राकृतिक गर्मी पैदा होती है, उसका लाभ उठाया जाता है। इस समाग और समानुरूप उत्पादन प्राप्ति करने के लिए तेल या स्नेहिल के सभी स्टाक तथा कास्टिक सोडा का सर्वाधिक रूप से शुद्ध होना आवश्यक है, फिर भी तेल बेहद चिपचिपा या उग्र स्नेहाम्ल भरा नहीं होना चाहिए और उसमें किसी भी प्रकार की मिलावट नहीं होनी चाहिए। चूंकि विभिन्न प्रकार के तेलों को विभिन्न मात्रा में कास्टिक सोडा की जरूरत पड़ती है और शीतप्रक्रिया निर्मित साबुन में तो बिल्कुल सही परिमाण में ही तेल और कास्टिक घोल मिलाये जाते हैं, इसलिए इस प्रकार के साबुन बनाने के लिए उनमें कोई मिलावट होनी ही न चाहिए, क्योंकि मिलावट होने से साबुन अच्छा नहीं बनेगा। कास्टिक घोल का घनत्व भी ऐसा होना चाहिए कि उससे बने साबुन में अतिरिक्त पानी बिल्कुल न रहे। इस प्रकार के साबुन के लिए आमतौर पर नारियल तेल अच्छा समझा जाता है। कभी-कभी कुछ मात्रा में मूंगफली या तिल्ली अथवा महुआ का तेल भी मिलाया जा सकता है। इस प्रकार के साबुन में भर्ती (पूरक) की चीजें भी मिलायी जा सकती हैं। अगर सिलिकेट सोडा अधिक अनुपात में इस्तेमाल किया जाये तो स्नेहिल (चिकनाई) पदार्थ के साबुन में बदलने में जितने कास्टिक सोडे की जरूरत होती है, उससे ज्यादा मात्रा काम में लानी पड़ेगी।

कास्टिक की लेइ (गाढ़ा घोल) जैसे भत का, जिसे साबुन में मिलाने का इरादा हो, वजन करने के बाद तेल को सबसे पहले कड़ाह में उड़ेलते हैं। गर्म करने से ठोस तेल या स्नेहिल पिघल जाता है। तरल हो जाने पर उसमें कास्टिक का घोल मिलाया जाता है और उसे जल्दी-जल्दी चलाते या बिलोते हैं। बिलोते समय तेल और घोल दोनों का तापक्रम एक सा होना चाहिए। जब मिश्रण गाढ़ा होने लगे, तब यदि आवश्यक हो, तो सोडा सिलिकेट जैसे भत मिला कर पहले की तरह ही चलाते रहना चाहिए। तब में किसी प्रकार की सुगन्धे

पतला और तरल रखने हेतु समय-समय पर कड़ाह में थोड़ा बहुत पानी भी डाला जा सकता है, ताकि भाफ बनना आसानी से बचाया जा सके। शुरू-शुरू में जब साबुन तेजी से बनता है, तो झाग बड़ी तेजी से उत्पन्न होते हैं और मिश्रण ऊपर उठने लगता है, लेकिन जब यह प्रक्रिया पूरी होती है, तो फेन कम होने लगते हैं और मिश्रण धीरे-धीरे उबलने लगता है। साबुन बनने की क्रिया ८° से १०° पि० तक के कम शक्तिवाले घोल से प्रारम्भ होती है और १८° से २०° पि० या २५° पि० तक के शक्तिशाली घोल के साथ पूरी हो जाती है।

जब साबुन इस तरह बन जाये, तो इसे ठण्डा होने और नीचे बैठने देना चाहिए, ताकि फेन मिट जाये तब साँचों में इसे डालना चाहिए, जब तापक्रम १६०° फ० से १८०° फ० तक आ जाये। ऐसा साबुन साधारणतया कपड़े आदि धोने के काम में लाया जाता है और इसे सोडा सिलिकेट के साथ मिलाकर बनाया जाता है। उपयोगित सोडे की मात्रा स्वफेनीकरण के लिए प्रयुक्त तेल के वजन के ५ प्रतिशत से १२½ प्रतिशत तक होती है और सिलिका भी लगभग १६ प्रतिशत से २० प्रतिशत तक, लेकिन दोनों चीजें अलग-अलग ही मिलानी चाहिए। सोडा उसके वजन से करीब दुगुने पानी में और सिलिका करीब-करीब बराबर के पानी में पूरी तरह घोल लिया जाता है। यह काम साँचे में डालने के पहले किया जाना चाहिए। यदि कोई रंग डालना हो, तो वह बहुत कम मात्रा में डाला जाना चाहिए। रंग पहले पानी में डाला जाना चाहिए और काम में लाने से पहले उसे छान लेना चाहिए।

सोडा कार्बोनेट का अनुपात कुल साबुन के २ प्रतिशत से २½ प्रतिशत तक से अधिक नहीं होना चाहिए अन्यथा साबुन सूखने पर यह एक सफेद झाग की तरह दिखायी पड़ने लगता है। इसी तरह सोडा सिलिकेट भी साबुन के वजन के ५ प्रतिशत से १० प्रतिशत तक से अधिक नहीं होना चाहिए। पिछले साबुन को साँचों में रखने के बाद जब तक वह ठोस न हो जाये, तब तक बिना छेड़े यहीं पड़ा रहने देना चाहिए। इसके बाद साँचे खोलकर साबुन को एक दिन तक सूखने देना चाहिए। तत्पश्चात् उसे टिकियों और डण्डों के रूप में काटा जा सकता है। इस साबुन में पानी के तत्त्व ,५० प्रतिशत से ,६५ प्रतिशत तक होते हैं।

सूत्र

नारियल तेल	६ हिस्से
महुआ तेल	½ हिस्सा
रोजिन	½ हिस्सा

तेल को साबुनीकृत करने लायक मात्रा में कास्टिक सोडा ।

गर्म प्रक्रिया

इस प्रक्रिया में शीत प्रक्रिया की अपेक्षा यह अन्तर है कि तेल और कास्टिक घोल को मिलाने से पहले उन्हें १२०° फ० से १४०° फ० तक गर्म कर लिया जाता है और जब तक स्वफेनीकरण करीब-करीब पूरा न हो जाये, तब तक मिश्रण को चलाते रहते हैं। इसके बाद समूची सामग्री सांचों में ढाल दी जाती है । शीत प्रक्रिया की तरह इसमें तेल को ऐसी स्थिति में नहीं छोड़ा जाता कि उसमें कुछ बिगाड़ हो सके और शीत प्रक्रिया द्वारा बनाये गये साबुन से यह ज्यादा अच्छा भी होता है । शीत प्रक्रिया की तरह इसमें भी नारियल तेल का मुख्य रूप से उपयोग किया जाता है । एक अच्छे उत्पादन के लिए तेल आदि स्निग्ध और कास्टिक घोल के बीच ठीक-ठीक अनुपात होना चाहिए अन्यथा कोई न कोई चीज अधिक मात्रा में रह जायेगी । परिपूर्ण स्वफेनीकरण होने के कारण गर्म प्रक्रिया शीत प्रक्रिया की अपेक्षा अच्छी समझी जाती है ।

तेल को स्वफनीकृत करने के लिए १२०° फ० से १४०° फ० तक गर्म कीजिये। यदि रोजिन मिलाना हो, तो उसे पीस कर चूरा कर लीजिये । तेल कड़ाह में डालें और गर्म करें । इसमें रोजिन थोड़ा-थोड़ा करके तब तक मिलायें, जब तक कि सम्पूर्ण रोजिन तेल में अच्छी और पूरी तरह से घुल न जाये । तब शेष वजन किया हुआ तेल भी कड़ाह में डाल दीजिये । अब इसे १२०° फ० या १४०° फ० तक गर्म होने दें । जब यह इस तापक्रम तक पहुंच जाये, तो इसमें ३०° पि० पर आवश्यक कास्टिक घोल डालिये और ठीक तरह से चलाते रहिये । फिर कुछ देर तक इसे शान्त पड़ा रहने दीजिये, जब तक कि मिश्रण गाढ़ा न होने लगे । फिर थोड़ी देर तक चलाइये और १० मिनट तक बिना छेड़े पड़े रहने दीजिये । अब यह अधिकाधिक दानेदार

बनता जायेगा। इस प्रकार चलाने और फिर बिना छेड़े पड़े रहने देने से अन्ततोगत्वा यह मोटी-मोटी कणिकाओं में बदल जायेगा और तब यह शहद जैसा हो जायेगा, घोल अधिकाधिक कड़ा होता जाता है। कास्टिक सोडा, घोल और तेल एक हो जाते हैं और अंत में सम्पूर्ण कास्टिक सोडा, घोल तथा तेल अदृश्य हो जाते हैं तथा मिश्रण 'जेली' के पान के सामान दिखायी देने लगता है। इस अवस्था में मिश्रण को साँचों में उड़ेला जा सकता है या जब तक यह ठोस न हो जाये, तब तक इसे चलाया जाना जारी रखा जा सकता है और इसके बाद इसे ऐसे साँचों में डाल कर, जिनमें हवा जाने के लिए रास्ता न हो, एक समान रूप में दबाकर साबुन की टिकिया बनायी जा सकती है।

यदि इसमें भी कोई रंग मिलाना हो, तो उसे सदैव कास्टिक घोल के साथ मिलाना चाहिए। सुगन्ध तभी मिलानी चाहिए, जब यह पदार्थ शहद जैसा तरल हो। यदि और कोई मल मिलाना हो, तो उसे इस प्रक्रिया से पहले अर्थात् साबुनीभूत पदार्थ के शीरा या शहद की शक्ल में आने के ठीक पहले मिलाना चाहिए, क्योंकि स्पफनीकरण पूर्ण होते ही ठोस द्रव्य में मल मिलाना मुश्किल होता है।

इस प्रक्रिया से बनाया गया साबुन कपड़े धोने के लिए तो अच्छा होता ही है, पर नहाने के लिए भी यह ठीक रहता है, यदि इसमें कोई मिलावट न की गयी हो और यह प्राकृतिक रूप से शुद्ध हो।

सूत्र

नारियल तेल	५ पौण्ड
एरण्डी तेल	½ पौण्ड
रोज़िन	½ पौण्ड

कास्टिक घोल ३०° पि० पर जो १ पौण्ड शुद्ध कास्टिक सोडा के बराबर होता है।

दानेदार साबुन

उपर्युक्त तीनों प्रकार की प्रक्रियाओं में मुख्यतः नारियल का तेल और कुछ मात्रा में अन्य तेलों का उपयोग किया जाता है। इन प्रक्रियाओं के लिए अधिकतर शुद्ध और उज्ज्वल तेलों की आवश्यकता होती है, जबकि दानेदार साबुन में कोई

भी स्वफेनीकरण योग्य वनस्पति तेल प्रयुक्त किया जा सकता है। यह आवश्यक नहीं कि तेल शुद्ध और साफ किया हुआ हो, केवल ध्यान इसी बात का रखना चाहिए कि धात्वीय तेलों की कोई मिलावट उनमें न हो, क्योंकि मिलावट से स्वफेनीकरण नहीं होता।

दाना उठानेवाले जो पदार्थ अक्सर साबुनों में मिलाये जाते हैं, उनमें खाने का नमक मुख्य ७ से १० प्रतिशत तक या नमक का घोल तेल में मिलाने से साबुन ऊपर उठ आता है और सभी प्रकार की अशुद्धियां और ग्लिसरीन साबुन से अलग हो जाती है। साबुन दानेदार हो जाने के बाद नमक के घोल पर तैरने लगता है। यह घोल पेंदे में लगी टोंटी के जरिये बाहर निकाला जा सकता है। महुआ, मूंगफली और तिल्ली के तेल नमक की कम से कम मात्रा द्वारा अलग किये जाते हैं, जबकि नारियल तेल जैसे तेलों को अलग करने में खूब अधिक मात्रा में नमक की जरूरत पड़ती है। यदि तेल अशुद्ध या निम्न स्तर का हो तो इसमें से कचरा व अन्य अशुद्धियां अलग करने के लिए अधिक नमक की जरूरत पड़ती है। वास्तविक प्रक्रिया में साबुन उसी प्रकार गर्म किया जाता है जैसे अर्द्ध क्वथित (अध उबला) साबुन। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जितना तेल गर्म करना हो, कड़ाह उससे पांच गुना हो, क्योंकि इस प्रक्रिया में साबुन काफी ऊंचा उफनता है। जब तेल कास्टिक सोडा के घोल के साथ काफी स्वफेनीकृत हो चुके, तो थोड़ी मात्रा में नमक साबुन में डाला जाता है। दूसरी बार डालने से पहले उसे तरल साबुन में भली भांति उबलकर पूर मिल जाने देना चाहिए।

शुरू-शुरू में नमक जब घोल में पहुंचता है, तो साबुन तरल हुआ सा लगता है। जब तक साबुन तरल पदार्थ से अलग न हो जाये, नमक डालना जारी रखा जाता है। इस समय साबुन अच्छी तरह उबलता होना चाहिए और जब साबुन और नमक का पानी अलग-अलग किया जाये, तब साबुन को जमने देना चाहिए। कुछ समय बाद जो नमक नीचे पेंदे में जम गया हो, उसे अलग कर दें। इस प्रक्रिया में ग्लिसरीन आदि सभी प्रकार की अशुद्धियां अलग कर दी जाती हैं। ऊपर जो साबुन जमता है, यह करीब-करीब शुद्ध होता है। नमक अलग करने के बाद साबुन को फिर करीब ८° से १०° डि० तक के कमजोर कास्टिक घोल के साथ उबालते हैं। साबुन का पर्याप्त तरल बनाने और ठीक तरह से उबालने के लिए कुछ पानी भी दिया जाता है। पानी गर्म

होना चाहिए । कमजोर कास्टिक घोल के साथ फिर उबालने का उद्देश्य यही है कि यदि थोड़ा बहुत तेल बचा हो, तो वह अलग हो जाय । कुछ समय इसे पड़ा रहने देने के बाद बेकार घोल निकाल दिया जाता है । कड़ाह में मौजूद साबुन अलग किया जाता है और गर्म पानी से इसका उपचार किया जाता है । उसे फिर गर्म किया जाता है, ताकि बचा-खुचा नमक भी अलग किया जा सके । साबुन को इसके बाद एक दिन तक पानी की टंकी में रखा जाता है । साबुन को धीरे-धीरे ठण्डा होने देना चाहिए । इससे साबुन के डण्डे तैयार किये जा सकते हैं ।

केश तेल बनाना

कस्बों और बड़े-बड़े नगरों में सुगंधित केश तेल बड़े लोकप्रिय हो रहे हैं। यद्यपि इनके उत्पादक काफी हैं, लेकिन फिर भी उनमें से कुछ ने ही पूरी लोकप्रियता हासिल कर पायी है । केश तेल तैयार करने के उनके रहस्य तथा जनता के सामने उन्हें पेश करने के उनके तरीकों की वजह से ही ऐसा होता है । औद्योगिक सहकारी समितियाँ नारियल और जिंजीली के तेल से केश तेल बनाकर उसे लाभप्रद रूप से बेच सकती हैं । नीचे संक्षेप में ब्राह्मी आंवला केश तेल तैयार करने का तरीका दिया जाता है –

कपूर	१ भाग
कायोबर	२ भाग
नागर	२ भाग
मोथा	२ भाग
कानरी	२ भाग
नालछड़	२ भाग
नतवु पाड़िया	३ भाग

इन औषधियों को अच्छी तरह पीस कर महीन कीजिये, अब इसे पानी में मिश्रित करें और तीन दिन पड़ा रहने दें । इसमें नारियल या जिंजीली का तेल मिलाइये और धीरे-धीरे एक समान तापक्रम पर गर्म कीजिये । यदि तेल को ऊंचे तापक्रम पर गर्म किया जाता है तो तेल आग पकड़ लेगा और औषधियों की सुगंधी उड़ जायेगी । तेल को आग पकड़ने से ,

झोखिम से बचाने के लिए तेलवाले पात्र को पानी से भरे हुए किसी दूसरे पात्र में रखकर स्टोव या चूल्हे पर रखना चाहिए। इससे धीमी आंच पहुंचेगी। अब तेल को साफ, सुन्दर बोतलों में पैक कर उन्हें मोम से मुहर बंद कीजिये तथा उन पर आकर्षक लेबल लगाइये।

खली से बिस्कुट बनाना

सुपाच्य स्नेहिल और सुपाच्य प्रोटीन की पौष्टिकता समान ही मानी जाती है, जब कि इसमें सुपाच्य कार्बोहाइड्रेट्स (प्रांगोदीय) से २५ अधिक पौष्टिकता मानी जाती है। खली में प्रोटीन काफी होता है, जो कि हमारी दैनिक खुराक में कम पाया जाता है। मूगफली की खली में ५२.८५ प्रतिशत प्रोटीन होता है। मूंगफली की खली का प्रोटीन गेहू के आटे की तिक्त अम्लीय कमियों को पूरा करने का बहुत सुन्दर स्रोत है। मूगफली की खली का प्रोटीन ५ भाग और गेहू का आटा ९५ भाग मिलाकर माड़ने से प्रोटीन का प्रतिशत्य १६ प्रतिशत से १९ प्रतिशत तक बढ़ जाता है। केन्द्रीय भोज्य प्राविधिक अनुसंधान शाला मेसूर (सेण्ट्रल फुड टेक्नोलोजिकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट मैसूर) द्वारा किये गये प्रयोगों से साबित हुआ है कि शकरकंद और शफतालू के आटे की कम पुष्टिकारक खुराकों के निमित्त मूगफली की खली उल्लेखनीय पूरक साबित हुई है। चार भाग यह आटा और एक भाग मूगफली की खली लेकर तैयार किये गये मिश्रण का पौष्टिक मूल्य चावल से भी अधिक होता है।

—

भारत सरकार की अन्नोत्पादन समिति ने भी सिफारिश की है कि मनुष्यों के भोजन के रूप में विशेष रूप से तैयार की गयी मूगफली की खली का उपयोग किया जाना चाहिए। अतएव हमारे जैसे देश में जहां औसत दर्जे के आदमियों की खुराक संतुलित नहीं है, मूगफली की खली का उपयोग बहुत आवश्यक है।

इस सम्बन्ध में यह विचारणीय है कि मनुष्य के उपयोग में लायी जानेवाली खली ताजा होनी चाहिए और उसे शुद्धता और सफाई का पूरा ध्यान रखते हुए तैयार किया जाना चाहिए। ये उच्च स्तर तभी कायम रखे जा सकते हैं, जबकि घानियों में मूगफली के छोटे-छोटे घान डाल कर उन्हें पेरा जाये।

सर्व प्रथम मूगफली की गिरी अच्छी तरह साफ करें । उ‍
थोड़ा भुने और सुचारु रूप से रगड़ें । गिरी का ऊपरी छिल्का अलग हो जायेगा
आमतौर पर यह माना जाता है कि यह ऊपरी छिलका पचाने में कठिन होता ।
और इसलिए इसे उतार दिया जाता है । अब खराब सिकुड़े और बगैर छि‍
बीजों को अलग करें और केवल अच्छे बीज ही पेरें ।

अब साफ किये हुए बिजों को घान में डालिये । तेल निस्सारण के बा‍
खली निकाल लीजिये और अच्छी खली को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटिये तथा
उन्हें धूप में सुखाइये । खली के अच्छी तरह सूख जाने पर उसे चक्की में पीसें
और इसका महीन आटा बना लें । गेहू के आटे में खली का आटा किसी भी
हालत में १० से लेकर १५ प्रतिशत से अधिक नहीं मिलाना चाहिए ।

एक साफ बर्तन लें और उसमें तीन अण्डों की सफेदी डालें । अब इसमें
४ औंस मक्खन और डाल दें । इसमें उपर्युक्त विधि से तैयार किया हुआ गेहू
और खली का २ पौण्ड आटा मिला दें । अब इसमें ३ ड्राम अमोनिया कार्बोनेट,
४ औंस चीनी और आवश्यक दूध डाल कर परस्पर खूब माड़ लें । तत्पश्चात इस
मिश्रण को लकड़ी के बेलन की सहायता से ⅛" की परत में फैला दें और फिर
ठप्पों से काट लें । अब इन टुकड़ों को एक लोहे की तश्तरी में रखें और इसे
तन्दूर में रख दें, जो इसी काम के लिए खासतौर से तैयार किये गये हों । अब
बिस्कुट तैयार हो गया ।

भाग ४

संगठन

अध्याय १२

विकास कार्यक्रम

ग्रामीण तेल उद्योग के ह्रास का इतिहास

परंपरानुसार तेल पेराइ एक ग्रामीण उद्योग है, जो इस देश के विभिन्न भागों में पायी जानेवाली घानियों के जरिये चलाया जाता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, सन् १९५६ में घानियों की संख्या ३,०७,२२२ थी, जिनमें २० लाख टन तिलहन वार्षिक पेरने की क्षमता थी। पिछली कुछ दशाब्दियों तक अकेला घानी विभाग देश की खाद्य-तेल संबंधी आवश्यकता पूरी कर रहा था। तेल मिलों और तेल उपयोग करनेवाली मिलों के अनुक्रमिक विकास के साथ-साथ तेल उद्योग भी शहरी क्षेत्रों में जमने लगा। देश में इस समय करीब १,०३४ पंजीकृत और काफी तादाद में पंजीकृत तेल मिलें हैं, जिनकी करीब ४० लाख टन तिलहन पेरने की क्षमता है।

सन् १९११ की गणना के अनुसार ग्रामीण तेल उद्योग में ५,२०,८०५ कामगार कार्यरत थे, जबकि तेल मिलों में केवल ९,७४५ कामगार ही थे। घानियों से इस उद्योग का मिलों में परिवर्तन होने से इस उद्योग में लगे लोगों की संख्या भी कम होती गयी, जैसा कि सन् १९५१ की गणना से यह स्पष्ट है। इसके अनुसार ग्रामीण तेल उद्योग में केवल १,८४,५८८ लोग लगे हुए थे, जबकि मिलों में ३२,२१५ व्यक्ति।

घानियों द्वारा पेरे जानेवाले तिलहनों के परिमाण में कमी होने की वजह से रोजी में कमी हुई और तेल मिलें इन बेकार व्यक्तियों को काम पर लगाने में समर्थ नहीं हो पायीं, यद्यपि मिलों द्वारा तेल का कुल उत्पादन बढ़ा है।

आज घानियां केवल खाद्य तेल की पेराइ के लिए ही चलायी जाती हैं, जबकि मिलें खाद्य तेलों और उद्योगों में काम

आनेवाले तेलों की भी माग पूरी करती हैं। ग्रामीण तेल उद्योग में रोजी प्रदान करने की महान् शक्ति पर विचार हुए योजना आयोग ने सुझाव दिया है कि खाद्य प्रक्रिया उद्योगों के क्षेत्र में किन्हीं विशेष परिस्थितियों के अलावा भारी उद्योगों के और अधिक विस्तार की स्वीकृति नहीं दी जानी चाहिए। योजना में यह भी अनुबध था कि घानियों को सन् १९५०-५१ के १० लाख टन के मुकाबले सन् १९५५-५६ में १३८ लाख टन तिलहन दिया जाना चाहिए। इस बात पर विचार करते हुए कि प्रथम पचवर्षीय योजना में निश्चित लक्ष्य के अनुसार सिर्फ ४ लाख टन तिलहन उत्पादन करता है और, उसमें से भी ३८ लाख टन तिलहन घानी उद्योग को विनियोजित करने का अर्थ है—अतिरिक्त माग को कुटीरोद्योग के जरिये पूरा करना।

जब तक घानिया देश की तेल संबधी आवश्यकता की पूर्ति करती रहीं, तब तक देहाती जनता को ताजा और शुद्ध तेल मिलता रहा तथा ढोरों को खली मिलती रही। जब से खली का पशुओं के चारे के रूप में इस्तेमाल बद हो गया है, जोकि काफी परिमाण में स्निग्ध पदार्थ और प्रोटीन युक्त होती है और एक आवश्यक खुराक है, देश में काम के पशुओं की नस्ल का ह्रास हो रहा है। अब काफी परिमाण में तिलहनों की पेराई मिलों में होती है और वहां इकट्ठी खली खाद के रूप में बेच दी जाती है। भारी पैमाने पर तेल उद्योग के इस यांत्रीकरण से देहातियों को शुद्ध और ताजा तेल मिलना भी दुर्लभ हो गया है। प्राय जो तेल मिलता है, उसमें भी इस व्यवसाय में चलनेवाली मध्यस्थ एजेंसियों द्वारा मिलावट कर दी जाती है। वितरकों की एक लबी श्रृंखला के कारण उत्पादन और उपभोग में काफी लबी अवधि का फर्क पड़ जाता है, जिससे परिणाम स्वरूप तेल में युक्त स्नेहाम्ल प्रकट होने लगते हैं, जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं।

इसके अलावा उपभोक्ताओं द्वारा तिलहन सग्रह कर उसे घानियों द्वारा पेराये जाने की प्रवृत्ति का परित्याग करने से भी घानियों के सामने एक बड़ी समस्या खड़ी हो गयी है। गृह-स्वामियों की इस स्वावलबी पद्धति के अन्तर्गत तेलियों को स्थानीय रूप में काफी काम मिल जाता था। जबकि तेलियों को अच्छा पारिश्रमिक मिल जाता था तो ढोरों को खिलाने के लिए खली भी तुरन्त उपलब्ध होती थी। जबसे ग्रामीणों ने मिल तेल खरीदना शुरू किया, उनके ढोरों

क लिए खली प्राप्त करना एक कठिन चीज बन गयी ।

घानियों द्वारा तेल उत्पादन कम होने से पेगड़ म लगी घानियों की सख्या कम हो गयी और कोइ नयी घानी प्रस्थापित नहीं की गयी । चूकि यह उद्योग लाभप्रद नहीं रहा, इसलिए जिन घानियों की यत्र-तत्र टूट-फूट के कारण मरम्मत कराने का जरूरत थी, तेलियों ने वह भी नहीं करवायी । इस प्रकार घानी उत्पादन और उनकी मरम्मत के काम म लगे हुए बढ़इयों को भी कोइ काम नहीं मिला और फलस्वरूप उन्होंने दूसरे पेशे अपना लिये । इसका परिणाम घानी बनानेवाले बढइयों की सख्या में कमी हुआ ।

इस प्रकार घानी उद्योग में निम्नलिखित कमिया हैं –

(१) देश में घानियों की किसी निश्चित सख्या के अभाव में घानी क्षेत्र का अपेक्षाकृत कम उत्पादन ।

(२) फसल के समय किसानों के पास तिलहनों का स्टाक करने के लिए पूंजी की कमी होने के कारण घानियों की पूर्ण क्षमता का उपयोग न होना ।

(३) मिलों के साथ प्रतिस्पर्धा होने के कारण तेल और खली की बिक्री में कठिनाइ ।

(४) परपरागत सरजाम की माग में कमी होने के कारण घानी बनानेवाले बढइयों की कमी ।

(५) तेलियों के सगठन का अभाव, जिसके बिना कोइ भी उद्योग और खास करके ग्रामोद्योग वर्तमान अवस्थाओं में विकसित नहीं हो सकते ।

खादी और ग्रामोद्योग कमीशन का ग्रामीण तेल उद्योग का कार्यक्रम, इसलिए इन कठिनाइयों पर काबू पाने की व्यवस्था करता है ।

१) घानी क्षेत्र की उत्पादन वृद्धि

घानी क्षेत्र के कम उत्पादन का कारण चालू घानियों की सख्या में तेजी से गिरावट होना है । इसलिए द्वितीय पचवर्षीय योजना-काल में खादी और ग्रामोद्योग कमीशन की ५०,००० वर्धा घानिया प्रस्थापित करने की योजना है ।

वर्धा घानियों की प्रस्थापना के लिए कमीशन निम्न सहायता प्रदान करता है –

(अ) प्रति १५० रु० का अनुदान या घानी की कीमत का ५० प्रतिशत, इनमें से जो भी कम हो और इसके बराबर ही ब्याज मुक्त ऋण, जो ५ वर्षों में वापिस करना होता है ।

(आ) वर्धा घानियों की कार्यशीलता तथा तेल निस्सारण की विकसित प्रविधियों के प्रदर्शनार्थ कमीशन की सहायता से विभिन्न जिलों में आदर्श केन्द्र शुरू कर दिये गये हैं ।

(इ) आमतौर पर यह देखने में आया है कि तेली या तो अपने घरों में या बाहर खुले में परम्परागत घानियां चलाते हैं, जहां साल के कुछ महीनों में काम सम्भव है यदि वे वर्धा घानियां चलाने लगें तो भी बिना ओसारों का निर्माण किये वे साल भर इन्हें नहीं चला सकेंगे । इसलिए वर्धा घानियों के लिए ओसारे बनाने के लिए तेलियों को पंजीकृत संस्थाओं और सहकारी समितियों की मार्फत प्रति ओसारे के निर्माण पीछे २५० रु० अनुदान और ऋण के रूप में दिया जाता है ।

(ई) वर्धा घानियों का निर्माण और उनकी सप्लाई के लिए खादी कमीशन संस्थाओं या सहकारी समितियों को भी अनुदान और ऋण के रूप में सहायता देता है । घानियों और उनके हिस्सों की सप्लाई के प्रबन्ध के लिए राज्य मण्डलों या राज्य सरकारों द्वारा संगठित राज्य कारखाने (वर्कशाप) भी हैं । वर्धा घानियों के लिए खादी कमीशन द्वारा विभिन्न केन्द्रों में प्रशिक्षित कर निर्मित किये गये बिल्ला बढ़इयों के रूप में नियुक्त प्रशिक्षित बढ़ई तुरन्त मरम्मत संबंधी सुविधाएं प्रदान कर तेलियों को साल भर लगातार घानी चलाने में सहायता करते हैं ।

(उ) तेलियों को ३० रु० मासिक वजीफा देकर एक महीने तक तेल निस्सारण की उन्नत तकनीक में प्रशिक्षित किया जाता है । घानी क्षेत्र की क्षमता बढ़ाने के हेतु दूसरा कदम वर्तमान घानियों को अपनी शक्ति भर चलाने में समर्थ बनाना है । यह दो प्रकार से किया जा सकेगा— (अ) माल संग्रह और (आ) भाण्डागारण संबंधी सुविधाएं प्रदान कर ।

(अ) ग्राम संकल्प

घानी तेल के लिए गावों और शहरों में पक्के ग्राहक तैयार करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं, ताकि उपभोग का विश्वास हो जाये और उसी प्रकार उत्पादन किया जा सके। यह परिवार संकल्पों और ग्राम संकल्पों के जरिये किया जायेगा, जिनके अनुसार परिवार या गाव एक शपथ लेते हैं कि वे इन चीजों की जरूरतें शुद्ध और ताजा घानी तेल से पूरी करेंगे। घानी तेल की बिक्री का इस प्रकार विश्वास होने पर आज जो घानियां गावों में बेकार पड़ी हैं, वे फिर से चालू की जा सकती हैं और इस प्रकार उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

(आ) भाण्डारीकरण की सुविधाएं :

जब बाजार भाव कम होता है, तब तेलियों के पास तिल्हन एकत्रित करने के लिए रुपये न होने के कारण वे साल भर काम नहीं कर सकते। इस पर तेलियों को सहकारी समितियों के अन्तर्गत सगठित कर के काबू पाया जायेगा, क्योंकि इस तरह वे नये स्रोत जुटा सकते हैं। भारत सरकार तेलियों को उनके प्रति १२.५० रु० के पीछे ८७.५० रु० हिस्सा-पूंजी के रूप में ऋण देती है। भारत सरकार तिल्हन भाण्डारीकरण के लिए भी इन समितियों को ऋण देती है, जिससे जब बाजार भाव कम हो, तब ये समितिया तिल्हन भाण्डारीकृत कर सकती हैं और इस प्रकार तेल मिलों के साथ प्रभावकारी रूप से मुकाबला कर सकती हैं। सरकार द्वारा दी जानेवाली इन दो प्रकार की सहायताओं से उत्पादन बढ़ाने में काफी सहायता मिलेगी। ग्रामीण तेल उद्योग के कार्यकर्ता लोगों को व्यक्तिगतरूप से भी तिल्हन इकट्ठा करने के लिए तैयार करते हैं, जिनसे वे अपनी सालाना जरूरत पूरी कर सकें और तेलियों को नियमित तिल्हन सप्लाई का विश्वास हो सके। देश भर में भाण्डागारण निगमें शुरू करने की भारत सरकार की योजना से भी लाभ उठाकर सहकारी समितियाँ अपनी गतिविधियां बढ़ा सकती हैं।

(२) पूंजी की कमी

अधिकांश घानियां पूरे समय काम नहीं करतीं। इसका एक कारण कच्चे माल की नियमित सप्लाई के लिए पूंजी की कमी है। जैसाकि किसान तुरत रुपये

प्राप्त करने के लिए अपने तिलहन फसल के तुरत बाद बेच देते हैं, इसलिए तिलहन गांव में पैदा होते हुए भी तेलियों को गांव में ही प्राप्त नहीं होते। केवल कुछ ही लोग अच्छे भावों का इन्तजार कर सकते हैं और इनमें भी कम, यहां तक कि अपनी घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी, तिलहन भाण्डारीकृत करना बर्दाश्त कर सकते हैं। चूंकि ग्रामीण व्यापारी भी बड़े शहरों में स्थित मिलों के मध्यस्थों के रूप में ही काम करते हैं, जहां सभी देहाती क्षेत्रों से तिलहन आते हैं, इसलिए इन व्यापारियों द्वारा इकट्ठे किये गये तिलहन भी फिर ग्रामीणों या तेलियों को स्थानीय रूप में नहीं बेचे जाते। इसी स्थिति के कारण बड़े नगरों और शहरों तथा अन्य मण्डियोंवाले स्थानों पर कुछ घानियां साल भर चलती रहती हैं, जबकि ग्रामीण घानियां तिलहन प्राप्ति के अभाव में बेकार पड़ी रहती हैं। इन स्थानों में चाहे ऊंचे भावों पर ही सही, लेकिन तेली तिलहन प्राप्त कर लेते हैं।

इस आंशिक समय में ही काम करने का एक दूसरा कारण इस उद्योग का कृषि सह-उद्योग होना है, क्योंकि यह कृषि से बहुत निकट सम्बंधित है और इसलिए इस प्रकार की घानियां तो गैर फसली मौसम में कुछ किसान और कृषि मजदूर चलाते हैं। ग्राम सकल्प से इन घानियों को तिलहन प्राप्त होते रहेंगे और उनकी आर्थिक स्थिति शक्तिशाली होगी।

मुख्य रूप से समस्या यह है कि उत्पादन स्थल पर तिलहन इकट्ठे रखे जायें और उनकी लगातार सप्लाइ होती रहे। यह लोगों को खुद ही तिलहन संग्रहित करने और उन्हें किराये पर स्थानीय घानियों में पेराने के लिए तैयार करके हल की जा सकती है। इस पुराने रिवाज को पुनर्जीवित करने और ठोस रूप में प्रस्थापित करने के प्रयत्न किये जाने चाहिए। उद्योग को पुनर्जीवित करने की दिशा में यदि उपभोक्ता ग्राम सकल्प और परिवार संकल्प लें और तेली शुद्ध और ताजा तेल की नियमित सप्लाई का विश्वास दिलायें, तो काफी सहायता मिलेगी। गांव या परिवारों को अपनी सालाना आवश्यकता संबंधी तिलहन इकट्ठा करने के लिए तैयार किया जा सकता है या ग्रामीण व्यापारी को यह आश्वासन देकर कि घानियां लगातार चलायी जाकर और स्थानीय आवश्यकता के लिए नियमित सप्लाई करने उसके द्वारा भाण्डारीकृत तिलहनों को काम में ले लगी, तिलहन भाण्डारीकृत करने के लिए तैयार किया जा सकता

है । जब तक उपभोक्ता अपनी आवश्यकतानुसार तिलहन भाण्डारीकृत करने में समय न हो जायें, तब तक तिलहन भाण्डारीकरण का काम सहकारी आधार पर सगठित किया जाना चाहिए ।

तेलियों को हिस्सा-मूल्य का ८७½ प्रतिशत हिस्सा-पूजी के रूप में ऋण देने की व्यवस्था करके सहकारी समितिया सगठित करने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है । इससे तेलियों को अपने स्रोत सग्रहण और उधार लेने की क्षमता बढ़ाने में सहायता मिलती है, ताकि वे सेंट्रल बैंकों या सरकार से कम ब्याज दर रुपये उधार लेकर तिलहन भडारीकरण के लिए आवश्यक रकम जुटा सके । आज महाजनों आदि को तिलहन खरीदने के लिए लिये गये रुपयों पर तेलियों को काफी ऊची दर पर ब्याज देना पड़ता है, जबकि सरकार से लिया जानेवाला ऋण ब्याज-मुक्त होता है और ५ साल में वापिस करना होता है ।

सहकारी समितियों को हिस्सा-पूजी बढाने के लिए दिये जानेवाले ऋण के अलावा तिलहन भाडारीकरण के लिए भी ऋण दिया जाता है, जो पहले वर्ष ब्याज मुक्त होता है और फिर ३ रु० प्रति सैकड़ा सालाना ब्याज के हिसाब से तीन साल में वापिस करना होता है ।

(१) बिक्री की समस्या –

तेल और खली की बिक्री की विधि के तथा सबधित समस्याए प्रथम भाग के तृतीय अध्याय में वर्णित की गयी है । आज घानी तेल के उत्पादन और उसके उपभोग में अनेक कारणों से बहुत गिरावट है । यह निश्चय ही तेल उद्योग में एक कूट चक्र है । तेलियों द्वारा कुछ मिलावट की जाने के कारण उपभोक्ता घानी तेल की विशुद्धता म शक करते हैं और वे काफी सख्या में मिल तेल खरीदते व व्यवहार करते हैं । अपने घानी तेल के उपभोग म इस प्रकार की कमी होने के कारण तेलियों का व्यापार अधिकाधिक रूप से अलाभकारी हो गया और उन्होंने इस हानि को मिल तेल की मिलावट कर के पूरा करने की ठान ली ।

वास्तव में उपभोक्ता शुद्ध घानी तेल को प्राथमिकता देता है, जैसा कि तिलहन उद्योग जाच समिति के प्रतिवेदन (अध्याय ४ पन्ना १२) मे प्रकट है । यह घानी उद्योग के लिए अनुकूल बात है और यदि तेली ऐसी पद्धति अपनाय

जिससे उनमें तेल के लिए उपभोक्ता की इस प्राथमिकता को बल मिले, तो कोई संदेह नहीं कि बहुत जल्दी ही ग्रामीण तेल उद्योग अपने स्वत्व को प्राप्त कर लेगा। इस कुट चक्र को तोड़ने और उपभोक्ता की इस प्राथमिकता को बढ़ावा देने के लिए यह आवश्यक है कि कुछ उपाय तेलियों द्वारा अपनाये जायें और कुछ उपभोक्ताओं द्वारा। तेलियों को गारंटी शुदा शुद्ध तेल सप्लाई करने का इन्तजाम करना चाहिए। यह इन्तजाम किसी संगठन के जरिये, अच्छा हो कि यह सहकारी संगठन हो, किया जा सकता है, जिसमें स्वयं कुछ तेली और उपभोक्ता सदस्य बन सकते हैं। द्वितीय, जहां उपभोक्ताओं को ग्राम और परिवार संकल्प लेने के लिए किये, वे केवल घानी तेल ही काम में लें, जैसा कि पहले बताया जा चुका है, ताजा और मिलावट रहित तेल का प्रोत्साहन देना चाहिए और तेलियों को यह संकल्प लेना चाहिए कि वे स्वच्छ तेल बेचेंगे तथा मिलावट करने की प्रवृत्ति का त्याग करेंगे, जोकि पिछली दशाब्दियों में उनके लिए अभिशाप रहा है। उत्पादक और उपभोक्ताओं का एक न्यायसंगत हित सम्पूर्ण ग्राम द्वारा तेल उत्पादन और उपभोग के लिए स्वावलंबन योजना अपनाकर, जिसमें अनेक उपभोक्ता खासकर किसान और आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न परिवार फसल काल में तिलहनों का स्टाक करते हैं और स्थानीय घानियों में पेराई करवाते हैं, जैसा कि पहले किया जाता था, प्रभाव में लाया जा सकता है। इस स्थानीय आत्मनिर्भरता की पद्धति से बिक्री की जटिल समस्या हल हो सकती है और उपभोक्ताओं को शुद्ध तथा ताजा खाद्य तेल की सप्लाई एवं उत्पादक को नियमित रोजी प्राप्ति सरल हो सकती है।

(४) घानी बनानेवाले बढ़इयों की कमी

परंपरागत घानियों की बनावट और उनकी पेराई क्षमता में सुधार करने की जरूरत है। जैसा कि तेली अपना अधिकांश व्यवसाय खो बैठे हैं, इसलिए वे अपने सरंजामों में सुधार करने और यहां तक कि उन्हें कायम रखने में भी दिलचस्पी लेनेवाले नहीं रहे। फलतः घानी निर्माण और मरम्मत दोनों अस्त-व्यस्त हो गये। साधारण बढ़ई घानी बनाने और उसकी मरम्मत करने की कला से अनभिज्ञ है।

वर्धा घानी की शुरुआत से घानी कारीगिरी अपेक्षाकृत आसान बन गयी है, क्योंकि इन घानियों के अधिकांश हिस्से प्रमाणित हैं। वर्धा घानी के निर्माण

और उसकी मरम्मत करने के लिए तथा बढ़इयों को प्रशिक्षित करने के लिए खादी कमीशन के विभिन्न प्रमाणित केन्द्रों में पेशेवर बढ़इयों को ग्वास कर्के घानी बनाने वाले बढ़इयों को, ७५ रु० मासिक वजीफा देकर तीन महीने तक उन्नत घानिया बनाने की कला में प्रशिक्षित किया जाता है ।

(५) सहकारी सगठन

आज का युग मशीन की अपेक्षा सगठन का युग है। सगठन के जरिये कोई भी चीज सफलतापूर्वक और सन्तोषप्रद रूप से की जा सकती है। ऐसा देखने में आया है कि ग्रामीण तेल उद्योग का मौजूदा सगठनात्मक ढाचा कमजोर और खोखला है। ग्रामीण तेल उद्योग के पुनरस्थापन के लिए आज सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि तेलियों का एक सघ हो जो समूचे देश के लिए एक समन्वयकारी सस्था के रूप में काम कर सके और इस उद्योग की रोजमर्रा की समस्याओं से जानकार रह कर उनका हल कर सके। तेलियों को सहकारी आधार पर सगठित करने, उनके स्रोत सग्रहीत करने, उत्पादन वृद्धि करने और उनके उत्पादन की बिक्री करने के उद्देश्य से सहकारी आधार पर आधारित एक चार स्तरीय ढाचा बनाने की योजना है। अगले अध्याय में इस पर विस्तृत प्रकाश डाला जायेगा।

खादी कमीशन द्वारा बनाये गये विकास कार्यक्रम के परिणामस्वरूप साधारण घानियों के चलाने से १,५०,००० तेलियों को रोजी प्रदान किये जाने की और जो उन्नत घानिया चलाते हैं, उन्हें अधिक लाभप्रद रोजी प्रदान की जाने की आशा है। इसके अलावा उन्नत घानियों के निर्माण और मरम्मत काय में लगे हुए काफी बढ़इयों को काम भी मिलेगा।

अध्याय १३

संगठन

सहकारी ढांचा

पिछले अध्यायों में ग्रामीण तेल उद्योग की वर्तमान स्थिति पर तथा उसके विकास की समस्याओं पर प्रकाश डालने की कोशिश की गयी थी। ग्रामीण तेल उद्योग को विकसित तथा तेलियों की दशा सुधारने के लिए प्राथमिक रूप से खुद कोशिश करने की आवश्यकता है तथा इसके बाद ही बाह्य सहायता का सहारा लिया जा सकता है। ग्रामीण तेल उद्योग के संगठनात्मक ढांचे में सहकार का विशेष स्थान तथा महत्व है। इस बाबत में तिलहन उद्योग जांच समिति ने भी तेलियों की सहकारी समितियां के कार्य के शृंखलाबद्ध होने का सुझाव दिया था, ताकि वह इस उद्योग को तिलहन मुहैया कर सके, उनके उत्पादनों को बेच सके और अन्य प्रकारों से वित्तीय सहायता भी दे सके।

इस समिति के सुझावों पर भारत सरकार ने विचार किया तथा ग्रामीण तेल उद्योग की बाबत नीचे दिये गये निश्चय किये—

भारत सरकार ने निश्चय किया है कि बिनौला पेराई उद्योग के विकास के लिए सहकारी ढांचे पर ही योजनाएं बनायी जायें, जैसे कि तिलहन उद्योग जांच-पड़ताल समिति ने सुझाव दिया है।

भारत सरकार ने यह भी मत प्रकट किया, कि वांछनीय है कि ग्रामीण तेलियों की सहकारी समितियां देश भर में स्थापित की जायें। इस प्रकार की समितियां ऐसे गांव या गांवों में स्थापित की जा सकती हैं, जहां पर तेलियों की बहुसंख्या हो।

इन समितियों का मुख्य कार्य यह होना चाहिए कि वे तेलियों को निरन्तर कच्चा माल मुहैया करती रहें। यह तभी सम्भव होगा, जब वे ठीक फसल के बाद, जब भाव ऊंचे नहीं होते, तिलहनों को गोदामों में एकत्रित कर लें। इन समितियों को अपने सदस्यों द्वारा उत्पादित तेल और खली भी खरीद करनी चाहिए और फिर उत्पादन की अधिक मात्रा को सहकारी बिक्री समितियों तथा केन्द्रीय गोदामों अथवा राज्यीय गोदाम निगमों में भेजने का भी प्रबन्ध करना चाहिए।

उन स्थानों को, जहां समितियां स्थापित नहीं की जा सकती, वहां बड़ी साख समिति गोदामों से तिलहन मुहैया किये जाने चाहिए। इसी प्रकार की सहूलियत बिक्री सहकारी समितियां भी दे सकती हैं।

खादी कमीशन ने ग्रामीण तेल उद्योग के विकास के लिए एक कार्यक्रम बनाया है, जिसके अन्तर्गत विभिन्न स्तरों पर सहकारी समितियों की शृंखला स्थापना करना और हिस्सा पूंजी, चालू पूंजी, विकसित घानियों की सब्सिडी प्राप्त मूल्यों पर सप्लाई करना, घानी ओसारे बनाने के लिए बिक्री अनुदान तथा तेल की बिक्री पर छूट देना आदि अन्य सहूलियतें देना भी आ जाता है।

तेलियों को सहकारी समितियों में संगठित करने, उनके स्रोतों को एकत्रित करने, उत्पादन बढ़ाने में सहायता करने और उनके उत्पादनों की बिक्री में सहायता करने के लिए चार स्तर का ढांचा बनाने का विचार किया गया है, जो कि सहकारिता पर आधारित होगा। (१) ग्रामीण स्तर पर घानी कार्यवाहकों तथा तेलियों में दिलचस्पी लेने वालों की सहकारी समितियां स्थापित करना, (२) जिला स्तर पर जिला सहकारी संघ की स्थापना करना, (३) राज्य स्तर पर राज्य सहकारी परिषद बनाना तथा (४) राष्ट्रीय स्तर पर अखिल भारतीय सहकारी परिषद की स्थापना करना।

(१) प्राथमिक सहकारी समितियों की स्थापना

घानी कार्यकर्ताओं तथा अन्य दिलचस्पी रखनेवाले सदस्यों की प्राथमिक सहकारी समितियां देश भर में स्थापित की जायेंगी। इनका मुख्य लक्ष्य होगा—उत्पादन का या तो अपरोक्ष रूप से अथवा उसके सदस्यों द्वारा संगठन करना या कराना।

ये समितियां तिलहन एकत्रित करेंगी और उन्हें अपने सदस्यों को मुहैया करेंगी। इसके अलावा ये समितियां अपने सदस्यों के उत्पादनों, तेल और खली की बिक्री की स्वय या अपने सदस्यों द्वारा भी प्रबंध करेंगी, इस काम के लिए वे जहां भी आवश्यक हो, बिक्री केन्द्र खोल सकती हैं। जहां पर कई वजह से इस प्रकार की प्राथमिक सहकारी समिति खोलना मुश्किल हो, वहां पर बहु-उद्देशीय सहकारी समिति स्थापित की जा सकती है, ताकि विकास कार्यक्रम कार्यान्वित किया जा सके। इन समितियों द्वारा विकसित सरंजाम भी समाविष्ठ किये जायेंगे, जो कि कार्यक्रम में समान महत्ता रखते हैं। हिस्सा-पूंजी के लिए भारत सरकार तेलियों को ऋण भी देती है। इन समितियों का एक हिस्सा १०० रु० का होना चाहिए जिसके लिए तेली को १२½ रु० देने पड़ते हैं और बाकी के ८७½ रु० कमीशन देता है। भारत सरकार की स्वीकृति के अनुसार प्रत्येक तेली ज्यादा से ज्यादा पांच हिस्से खरीद सकता है। जिस समय तेली समिति को एक हिस्से के लिए (प्राथमिक अथवा बहुउद्देशीय) अपना १२½ रु० का चन्दा दे देता है, तो समिति कमीशन से हिस्सा-ऋण की मांग करती है, जो उसे सीधे रूप में प्राप्त होगा। समिति के सदस्य सामूहिक एवं व्यक्तिगत रूप में इस ऋण को लौटाने के लिए दायित्वशील होंगे, इसलिए यह आवश्यक है कि समिति या तो व्यक्तिगत प्रतिज्ञापत्र अथवा व्यक्तिगत जमानत उस प्रत्येक सदस्य से ले, जो इस प्रकार का ऋण लेना चाहता है।

(२) जिला तेली सहकारी संघ का संगठन

ग्रामीण स्तर के बाद जिला स्तर पर यह उद्योग संगठित किया जायेगा। इसके लिए यह निश्चय किया गया है कि प्राथमिक समितियों और व्यक्तिगत तेलियों के जिला संघ स्थापित किये जायें। इन जिला संघों का मुख्य कार्य जिले की विभिन्न प्राथमिक घानी सहकारी समितियों तथा बहुधंधी समितियों की विभिन्न कार्यवाहियों में सहायता देना होगा ताकि वे घानी तेल के उत्पादन में वृद्धि कर सकें। ये संघ तिलहनों की खरीद की बाबत में सलाह देंगे। तेल और खली की बिक्री के लिए मण्डियां ढूंढेंगे और इस काम के लिए बिक्री केन्द्र, जिलों में उपयुक्त स्थानों पर, आरम्भ करेंगे। ये जिला संघ तिलहनों, तेल और खली तथा मिलावट आदि रोकने लिए उनकी किस्म के परीक्षण के लिए प्रयोगशालाएं स्थापित भी कर सकते हैं। ये

विकसित घानियों और तेलियों के काम आनेवाले छोटे-मोटे पुर्जों के निर्माण कार्य को भी हाथ में ले सकते हैं। इसके अलावा वे सरजामों का मरम्मत काम भी कर सकते हैं, ताकि कार्यक्षमता बढ़ायी जा सके। वे तेलियों को विकसित घानियों को चलाने का प्रशिक्षण भी दे सकते हैं।

(३) राज्य के तेलकार परिषदों का संगठन

जिला स्तर के बाद राज्य स्तर पर इस उद्योग को संगठित किया जायेगा। इसकी मुख्य कार्यवाहियों में राज्य के जिला संघों तथा प्राथमिक समितियों की विभिन्न कार्यवाहियों का समन्वय तथा एकीकरण करना शामिल होगा। इसके लिए उत्पादन की उन्नत तकनिकों की उपयोगिता प्रदर्शित करने की दृष्टि से प्रात्यक्षिक केन्द्र प्रस्थापित या संगठित कर सकते हैं। सप्लाइ करने के लिए घानी और अन्य अलग पुर्जे बनाने के निमित्त उत्पादन केन्द्र खोलने के अलावा तेलियों, घानी बढ़इयों व उद्योग संगठकों के प्रशिक्षणार्थ प्रशिक्षण केन्द्र भी खोल सकते हैं। प्रदर्शिनियों आदि का संगठन कर तथा उनमें भाग लेकर प्रादेशिक भाषाओं में बुलेटिन और पर्चे प्रकाशित करने और समाचारपत्रों, पत्रिकाओं व सिनेमा स्लाइड्स आदि जैसे विभिन्न प्रचार माध्यमों के जरिये वे तेल और खली को लोकप्रिय बनाने के लिए प्रचार कार्य कर सकते हैं। राज्य परिषदें सरकारी विभागों से सार्वजनिक या निजी संस्थाओं और अन्य साधारण व्यावसायिक एजेंसियों से तेल सप्लाइ के लिए आर्डर भी प्राप्त करेंगी और यदि आवश्यक हुआ, तो अपनी तेल की बिक्री के लिए राज्य के बाहर से भी आडर प्राप्त करेंगी और अपनी विभिन्न सदस्य समितियों या संघों को सप्लाइ करने के लिए सस्ती दरों पर अच्छी किस्म के तिलहन खरीदेंगी। ये प्रयोग, मानक-नियंत्रण और 'आगमार्क' करने का काम भी कर सकती हैं। घानी व अन्य छुट्टे पुर्जे तैयार करने के लिए आवश्यक इमारती लकड़ी की सप्लाइ के लिए राज्य परिषद क्रियात्मक कदम उठायेगी। उद्योग विकास के सम्बन्ध में संशोधन भी कर सकती है। राज्य परिषद, प्राथमिक सहकारी समितियों और जिला संघों के संगठन में भी सहायता करेगी। संक्षेप में राज्य परिषदों को राज्यीय स्तर पर ग्रामीण तेल उद्योग का विकास करने के लिए केन्द्र बिन्दु के रूप में काम करना चाहिए।

ग्रामीण तेल उद्योग का संगठनात्मक ढांचा प्रदर्शित करनेवाली तालिका

अखिल भारत घानी सहकारी परिषद

आयोजन अन्वेषण	प्रचार, समन्वय समितियां आदि

राज्य तेलकार सहकारी परिषद

प्रशिक्षण, आदर्श केन्द्र और उत्पादन केन्द्र	बिक्री सम्बन्धी सलाह, सब्सिडी का विनियोजन, भाव नियंत्रण, घानी आदि का उत्पादन और सप्लाइ, प्रादेशिक भाषाओं में प्रचार

जिला तेलकार सहकारी संघ

समन्वय, बिक्री और खरीद

प्राथमिक और बहुधंधी सहकारी समितियां

तिलहन खरीद और उनका भाण्डारीकरण	तेल और खली का उत्पादन तथा विक्रय

अध्याय १४

खादी और ग्रामोद्योग कमीशन की योजनाएं

खादी कमीशन जिन रूपों में ग्रामीण तेल उद्योग के विकास के लिए सहायता देता है, वे निम्न हैं–

१ खादी कमीशन द्वारा घानी तेल बिक्री के लिए पंजीकृत विक्रेता की एजेंसियों के जरिये तेल की फुटकर बिक्री पर	१.८७ रु० की सहायता प्रति एक मन तेल की बिक्री पर। ३५ पौण्ड से अधिक तेल खरीदने वाले को साधारणतः कोई छूट नहीं दी जाती है।
२ उन विक्रेता एजेंसियों को, जो एक वर्ष में १५,००० रु० से अधिक तेल की बिक्री करती हैं, उन्हें प्रबन्ध खर्च के लिए	प्रत्येक एजेंसी को ६४० रु०
३ तिलहन भाण्डारीकरण के लिए कर्ज	एक घानी पर ३,००० रु० तक, किन्तु यह तेली की हैसियत पर भी निर्भर करता है।
४ हिस्सा-पूंजी के लिए कर्ज	प्रत्येक हिस्सा के लिए ८७.५० रु०, अधिक से अधिक प्रति हिस्सेदार को ५ हिस्सों के लिए।
५ उन्नत घानियां लगाने के लिए सब्सिडी	१५० रु० कुल घानी की लागत का ५० प्रतिशत, इनमें से जो भी कम हो। लेकिन यह सब्सिडी तभी मिलेगी, जब घानी खादी कमीशन द्वारा मान्य संस्था से खरीदी जायेगी।
६ उन्नत घानियों के ओसारा के लिए सहायता	यह सहायता ओसारे की कुल लागत का ५० प्रतिशत या २५० रु० तक इनमें से जो भी कम हो, दी जायेगी।

७	उन्नत घानिया लगाने के लिए कर्ज	१५० रु० प्रति घानी	
८	उन्नत घानियों के लिए ओसारा बनाने के लिए कर्ज	२५० रु० प्रति घानी	
९	घानी बनानेवाले केन्द्र	अनुदान	कर्ज
	अ) राज्य स्तरीय कारखाना		
	इमारत	३,७५० रु०	३,७५० रु०
	सरजाम	५००' ,,	५०० ,,
	चालू पूंजी	—	५,००० ,,
	आ) घानी निर्माण केन्द्र		
	इमारत	१,२५०	१,२५०
	सरजाम	५००	५००
	चालू पूंजी	—	३,०००
१०	प्रशिक्षण छात्रवृत्ति		
	निरीक्षक	५० रु० प्रति माह, ६ महीने तक	
	मिस्त्री	७५ रु० प्रति माह, ३ महीने तक	
	तेलकार	३० रु० प्रति माह, १ महीने तक	

१ तेल की बिक्री पर सहायता या छूट

आजकल मिलों की प्रतिस्पर्धा के कारण तेलकारों को अपना तेल बेचने में कठिनाई अनुभव हो रही है। घानी तेल के उत्पादन में सहायता के विचार से, ताकि उन्हें पूरे समय की रोजगारी मिल सके और उपभोक्ताओं में तेल की शुद्धता के प्रति विश्वास जमाने के लिए भी, कमीशन उन घानियों का पंजीकरण करता है, जिनके फालतू तेल को खादी और ग्रामोद्योग कमीशन द्वारा प्रमाणित विक्रय एजेंसिया खरीद लेती हैं (फार्म १), जैसे प्रमाणित खादी भंडार, पंजीकृत संस्थाएं (समितियों को पंजीकरण करने वाले कानून के अंतर्गत पंजीकृत की गयी) तथा सहकारी समितियां। पंजीकृत घानियों को एक ऐसा रजिस्टर रखना पड़ेगा, जिसमें वे रोजाना उत्पादन (फार्म दिया है) लिखेगी और बिक्री एजेंसियों को घानी तेल की शुद्धता का ध्यान रखना होता है और वे तेल की उचित कीमत भी

निश्चित करती हैं। बिक्री करने वाली एजंसियां भी अपने पास एक रजिस्टर रखेंगी, जिसमें वे पंजीकृत घानियों से खरीदे गये तेल का ब्यौरा रखेंगी और उस तेल खरीद का भी वे ब्यौरा रखेंगी, जो अन्य पंजीकृत बिक्री संस्थाओं से खरीदेंगी, (फार्म का नमूना नीचे दिया गया है)

जितना तेल कोई तेलकार सीधे ही अपनी घानी पर बेच देगा, उस पर कोई छूट नहीं दी जायेगी। लेकिन जिस तेल का उत्पादन पंजीकृत घानियों करेंगी और उसे पंजीकृत एजेंसियों के द्वारा बेचेंगी, उस पर छूट दी जायेगी। बिक्री करने वाली एजेंसी को या तो स्वयं तेल का उत्पादन करना चाहिए या उसे पंजीकृत घानियों से खरीदना चाहिए या उसे अन्य पंजीकृत बिक्री करने वाली एजेंसियों से खरीदना चाहिए। छूट दिये जाने के विचार से उपभोक्ता द्वारा खरीदे जानेवाले तेल की मात्रा को निश्चित कर दिया गया है। एक साथ ३५ पौण्ड तक तेल की किसी भी उपभोक्ता द्वारा खरीद पर छूट दी जायेगी। लेकिन अगर यह तेल अस्पताल, सरकारी संस्थाओं, छात्रावासों, क्लबों तथा भोजनालयों द्वारा खरीदा जायेगा, तो ५ मन तक तेल की खरीद पर उन्हें छूट दी जायेगी। छूट देने के उद्देश्य से कमीशन इन संस्थाओं को मान्यता देगी।

छूट लेने के लिये विक्रय एजंसी को निम्न फार्म भर कर भेजना चाहिए –

१ प्रार्थना पत्र (तीन प्रतियां),
२ विवरण–बिलेवार तथा तारीखवार,
३ बिक्री पुर्जे, (कैश मेमो) (तीन प्रतियों में)
४ टिकट लगी अग्रिम रसीद की एक प्रति
५ पंजीकृत घानियों के उत्पादन कार्ड,
६ मान्यता प्राप्त बिक्री एजेंसियों की तरफ से मिलान (टली) कार्ड।

(२) प्रबन्ध कार्य खर्च

ऐसा देखा गया है कि विक्रय एजेंसियां अतिरिक्त कर्मचारियों का बराबर अतिरिक्त खर्च वहन करती हैं। इन कर्मचारियों को वे ठीक प्रकार से हिसाब–किताब रखने के लिए रखती हैं और तेल की

बिक्री बढ़ाने के लिए अतिरिक्त खर्च वहन करती हैं। अगर इन खर्चों को तेल की खरीद कीमत के साथ शामिल कर दिया जाये, तो इन तेलों को सस्ते दर पर बेचना कठिन हो जाये। इस कठिनाई को दूर करने के लिए प्रबंधकीय खर्च के लिए विक्रय एजेंसी द्वारा चलाये जानेवाले प्रत्येक बिक्री भंडार पर ६४० रुपये की सहायता दी जाती है। बिक्री भंडार पर एक प्रबंधक रहना चाहिए, जो कि तेल की बिक्री करे तथा कमीशन के आदेशानुसार हिसाब-किताब को ठीक तरह से रखे। बिक्री भण्डार को प्रति वर्ष १५,००० रुपये का तेल बेचना चाहिए, लेकिन अगर यह बिक्री केन्द्र हाल ही में स्थापित हुआ है और प्रति माह १,००० रुपये अधिक बिक्री कर लेता है, तो उसे अग्रिम सहायता ५० प्रतिशत तक अर्थात् ३२० रुपये तक दी जा सकती है और शेष रकम ६ महीने के भीतर दे दी जायेगी। एक विक्रय एजेंसी के पास दो या तीन बिक्री भंडार हो सकते हैं और वह पूरी ६४० रुपये की सहायता के लिए दावा कर सकती है। अगर कोई ऐसी विक्रय एजेंसी है, जो दो या तीन बिक्री केन्द्रों का संचालन कर रही है, लेकिन बिक्री के लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर रही है, तो उसे सहायता कुल बिक्री के योग पर दी जायगी, बशर्ते कि इनमें पूरे समय के लिए अथवा आंशिक समय के लिए प्रबंधकों को रखा गया हो। अत ६४० रुपयों की यह सहायता विक्रय एजेंसियों की सहायता के लिए दी जाती है, ताकि वे बिक्री भण्डारों द्वारा किये गये खर्च की पूर्ति कर सकें। अनुदान केवल उन्हीं विक्रय एजेंसियों को दिया जायेगा, जो या तो पंजीकृत संस्थाएं होंगी (समिति पंजीकरण समिति के अधिनियम के अनुसार पंजीकृत) या सहकारी समितियां होंगी। विक्रय एजेंसी को प्रबंधकीय खर्च के लिए सहायता की मांग करने के लिए नीचे लिखे कागजात भेजना चाहिए —

१ प्रबंधकीय खर्च के हेतु सहायता के लिए प्रार्थना पत्र (दो प्रति)

२ सब्सिडी रकम के लिए टिकट लगी रसीद की दो प्रति भेजी जानी चाहिए (एक रसीद पर टिकट लगा हो)

३ कम से कम तीन महीनों के हिसाब की दो प्रतियां मंडल के निरीक्षक अथवा राज्य विभाग अधिकारी द्वारा ठीक प्रकार से जंचवा कर भेजनी चाहिए।

४ पंजीकरण की दोहरी प्रतिलिपि संस्था के अध्यक्ष, प्रबन्धक अथवा सेक्रेटरी से सही कराकर भेजनी चाहिए।

५ समिति के उप-नियम।

वह विक्रय एजेंसी, जो प्रबन्धकीय खर्च के लिए सहायता प्राप्त करती है, उसे एक प्रबन्धक को कम से कम ५० रु० मासिक वेतन पर रखना चाहिए।

(३) तिलहन भाण्डारीकरण के लिए ऋण

अगर फसल के समय तेलियों को भाण्डारीकरण के लिए आर्थिक सहायता मिलती है, तो ऐसा देखा गया है कि उन्हें पूरे साल भर पेरने के लिए अच्छा तथा सस्ता तिलहन उपलब्ध रहता है और वे बड़ी हद तक मिलों की प्रतिस्पर्धा का सामना कर सकते हैं। कुछ मुख्य-मुख्य तिलहनों के भावों में बहुत कुछ घटबढ चलती रहती है। फसल पर तो भाव सस्ता होता है, लेकिन बाद में वह धीरे-धीरे बढ जाता है। व्यक्तिगत रूप में तेलियों को सीधे-सीधे कर्ज नहीं दिया जाता है। कमीशन उन सहकारी समितियों तथा संस्थाओं को ऋण देता है, जो समितियों के पंजीकरण अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत होती हैं। सहकारी अथवा उद्योग विभाग, जैसी स्थिति हो, समितियों की हिस्सा-पूंजी तथा जमा कोष के आधार पर उनकी ऋण लेने की अधिक से अधिक क्षमता को निश्चित करती है और उनकी सिफारिश पर कमीशन इन समितियों को तिलहन संग्रह के लिए कर्ज लेने की क्षमता निश्चित हो जाने के बावजूद कमीशन इन समितियों तथा संस्थाओं के अन्तर्गत, वास्तव में जिस संख्या में घानियाँ चलती होती हैं, उनका भी ध्यान रखता है और प्रति घानी पर ३,००० रु० के हिसाब से कर्ज मंजूर करता है। ऐसा अनुमान है कि इतनी रकम से कम से कम ६ महीनों के लिए तिलहन का संग्रह कर लिया जा सकता है। इस राशि को किसी बैंक में जमा कर देना होता है और जरूरत के मुताबिक ही उसे निकाला जाता है। यह भी सुझाव दिया गया गया है कि वे बैंकों से बंधक के आधार पर कर्ज ले सकती हैं। हिस्सा-पूंजी को बढ़ाने के लिए प्रत्येक सम्यक साधन का उपयोग करना चाहिए और तिलहन का संग्रह उधार लेकर और बंधक रखकर भी करना चाहिए। अगर कर्ज पहले ही साल में चुकता कर दिया जाता है, तो यह

बगैर ब्याज के होता है और अगर एक साल के भीतर वह चुकता नहीं कर दिया जाता है, तो उस पर ३ प्रतिशत का ब्याज लिया जाता है। कर्ज हर हालत में तीसरे वर्ष के अंत में मय ब्याज के वापस कर देना चाहिए। तिल्हन संग्रह के लिए कर्ज लेने के लिए निम्न कागजात भेजने चाहिए—

१ निश्चित फार्म पर प्रार्थना-पत्र,
२ निश्चित इकरारनामे का फार्म,
३ टिकट लगी दुहरी रसीदें,
४ पंजीयन प्रमाणपत्र की अभिप्रमाणित प्रतिलिपि,
५ बतौर मान्यता प्राप्त विक्रय एजेंसी के उसे, जो प्रमाणपत्र दिया गया, उसकी तारीख तथा संख्या,
६ समिति के उप-नियमों की प्रतिलिपि,
७ प्रबंधक समिति द्वारा जिस प्रस्ताव के द्वारा ऋण मांगा गया हो और कार्यालय के जिस व्यक्ति को ऋण प्राप्त करने तथा उसे खर्च करने के लिए अधिकारी नियुक्त किया गया हो, उसकी प्रतिलिपि,
८ काम की सबसे हाल की रिपोर्टें और आलेखित तलपट,
९ पहले लिये गये ऋण और चुकता किये जानेवाले ऋण की शेष रकम का वर्णन।

जिन संस्थाओं को कर्ज मिलता है, उन्हें अपनी प्रगति तथा खर्च का मासिक विवरण आदि भेजना पड़ता है। संस्थाओं को दिया गया कर्ज उसी काम में खर्च करना चाहिए, जिसके लिए कि वह दिया गया है और उसका अलग ही बैंक का हिसाब, खर्च का हिसाब मय वाउचरों के रखना चाहिए। इस हिसाब-किताब को खादी कमीशन का कोई भी अधिकारी किसी भी समय देख सकेगा। इस हिसाब-किताब की जांच चार्टर्ड आलेखक द्वारा होनी चाहिए और इन आलेखकों से प्रमाणपत्र लेकर प्रतिवर्ष कमीशन को भेजना चाहिए। कमीशन इन संस्थाओं को अतिरिक्त माफ उस अवस्था में स्वीकार करता है, जब उनके द्वारा की गयी उद्योग के विकासार्थ प्रगति संतोषप्रद होती है।

(४) हिस्सा-पूंजी के लिए कर्ज

साधारणतः तेलियों के पास तिल्हन जमा करने के लिए रुपया नहीं होता

है। यहा तक कि एक परम्परागत घानी के लिए भी तिलहन सग्रह के वास्ते ३,००० रुपयों की आवश्यकता होती है। छ महीने के लिए तिलहन सग्रह करने के लिए एक तेलकार के पास कम से कम १,५०० की पूजी बतौर चालू पूजी के होनी चाहिए। आज उन्हें तिलहन खरीदने के लिए अधिक सूद पर रुपया उधार लेना पड़ता है और फिर भी अच्छे तिलहन का पर्याप्त सग्रह नहीं हो पाता है। अत तेलकारों को कर्ज उनकी हिस्सा-पूजी कर्ज के लिए प्रार्थना करेगा और फिर यह रकम सीधे तौर पर पूजी बढ़ाने के लिए दी जाती है और इस प्रकार से खादी कमीशन द्वारा उनकी कर्ज लेने की शक्ति को बढाया जाता है। प्रत्येक हिस्सा १०० रु० का होना चाहिए। सहकारी सस्थाओं के वत्तमान नियमों में इसी के अनुसार परिवर्त्तन किये जाने चाहिए, ताकि इस प्रकार के हिस्से के लिए यह मुआफिक हो सके। प्रत्येक हिस्से के लिए तेलकार १२ ५० रु० तथा कमीशन शेष ८७ ५० रु० देगा। लेकिन जब तक तेलकार के पास ५०० की हिस्सा-पूजी जमा नहीं होगी, वह अपनी घानी पूरे दिन नहीं चला सकेगा और लाभ के साथ कभी नहीं चला पायेगा। इसलिए प्रत्येक तेलकार को कम से कम ५ हिस्से लेने चाहिए। जब कोई तेलकार ५२ ५० रु० अपने हिस्सों के लिए जमा कर लेता है तो वह कमीशन इस सस्था को दे दिया जायेगा। समिति के सदस्य व्यक्तिगत रूप से भी और सामूहिक रूप में भी समिति के प्रत्येक सदस्य द्वारा लिये गये इस कर्ज के प्रति जिम्मेदार होंगे। अतएव समिति को चाहिए कि वह प्रत्येक सदस्य से, जो इस प्रकार के ऋण लेना चाहे, आवश्यक जमानत ले ले। सदस्य को निश्चित कर्ज-तमस्सुक लिख कर देना होगा। कर्ज को ५ वर्ष के अन्दर बराबर किस्तों में लौटा देना चाहिए और ऐसी आशा है कि तेलकार स्वय भी अपना निज का रुपया बतौर हिस्सा-पूजी के पाच वर्ष के पश्चात् लगा सकेगा। प्रार्थना-पत्र के साथ जो अन्य कागजात भेजने होंगे, वे वैसे ही होंगे, जैसे कि तिलहन सग्रह के लिए कर्ज के फार्म के साथ भेजने पड़ते हैं।

५ उन्नत घानिया लगाने के लिए सब्सिडी तथा ऋण :

आजकल देश भर में विभिन्न प्रकार की परम्परागत घानिया देखने को मिलती हैं। जैसा कि अध्याय ६ में 'प्रादेशिक किस्म की घानी' के अन्तर्गत बताया गया है, ये घानियां एक दूसरे से बहुत भिन्न होती हैं। प्रत्येक घानी में अपनी विशेषताएं और कमियां होती हैं। वर्धा में अखिल भारत ग्रामोद्योग सघ ने एक उन्नत प्रकार की घानी का

आविष्कार किया, जिसे साधारणत लोग 'वर्धा घानी' कहते हैं। अन्य स्थानों पर इस वर्धा घानी में कुछ सुधार किये गये और इन सुधरी हुई घानियों को बिहार घानी, नूतन घानी, दहाणू घानी तथा कल्लुपट्टी घानी का नाम दिया गया। उन्नत घानी को निम्न आधार पर प्रमाणित किया जाता है –

१) यह बीस पौण्ड तक तिल, मूंगफली आदि जैसे तिलहन को पेर सकती हो,

२) यह सब तरह के तिलहन, कड़े या मुलायम, पेर सकती हो,

३) तिल के तेल का पिरान ४५ प्र०श० से और सरसों का पिरान ३३ प्र० श० से कम नहीं बैठना चाहिए।

४) एक घानी एक साधारण बैल द्वारा चलायी जा सके और प्रतिदिन ५ से ६ घान तक पेर सके, कमीशन १५० रु० तक की या कीमत का ५० प्रतिशत आर्थिक सहायता, इसमें जो भी कम हो, देता है जिसमें घानी की कीमत, उसकी ढुलाई तथा स्थापना का खर्च भी शामिल होता है। निर्माण केन्द्रों, विधिविहित मण्डलों, अन्य पंजीकृत संस्थाओं तथा सहकारी समितियों को, जो घानियों को दामों पर सप्लाई करती हैं अग्रिम निधि दे दी जाती है। खरीदार को सब्सिडी प्राप्त करने के लिए इन संस्थाओं के पास प्रार्थना करनी चाहिए। जहां तेलकार इस स्थिति में नहीं है कि वह पूरी घानी की कीमत को वहन कर सके, तो उसे पंजीकृत संस्था या सहकारी समितियों के द्वारा १५० रु० तक का कर्ज दिया जा सकता है। जब तक कर्जदार कर्ज को चुक्ता नहीं कर देता है, घानी को भाड़ा-खरीद पर दी गयी समझी जायेगी।

६ उन्नत घानियों के लिए ओसारे बनाने हेतु सहायता

ऐसा देखा गया है कि तेलकार अपनी परम्परागत घानियों को अपने छोटे से घर के अन्दर ही चलाता है या खुले स्थान में चलाता है, जहां मौसम की खराबियों से काम में असुविधा होती है। लेकिन तेलकार उन्नत घानी को ओसारे के अभाव में नहीं लगा सकता है। इसलिए प्रत्येक ओसारे के लिए कमीशन ५०० रु० (२५० रु० बतौर अनुदान के तथा २५० रु० बतौर कर्ज के) देता

। इन ओसारों के लिए रुपया केवल पंजीकृत संस्थाओं तथा सहकारी समितियों ही दिया जायेगा। जिस भूमि पर ये ओसारे बनाये जायें, वह संस्था अथवा कारी समिति की सम्पत्ति होनी चाहिए या उसे १० वर्ष पट्टे पर लिया गया । ओसारे इन समितियों की सम्पत्ति रहेंगे, लेकिन तेलकार व्यक्तिगत रूप में म-मात्र के किराये पर अथवा प्रति घान मजदूरी या किराया देने पर इस बात देखते रहना चाहिए कि इन ओसारों में लगी घानिया अपनी क्षमता भर काम ती हैं कि नहीं और इस प्रकार से कोष का समुचित प्रयोग करती हैं कि नहीं। न ओसारों का इस्तेमाल केवल उन्नत घानियों के लिए होना चाहिए और किसी म के लिए नहीं।

घानी निर्माण केन्द्र

विधिविहित मंडलों के द्वारा राज्यीय स्तर के कारखाने विभिन्न राज्यों में नी बनाने के लिए खोलने चाहिए या किसी पुरानी ख्याति-प्राप्त संस्था के रा खोले जाने चाहिए। प्रत्येक राज्यीय कारखाने तथा घानी बनानेवाले केन्द्र , जिसे मंडल आर्थिक सहायता करेगा, एक वर्ष में क्रमशः कम से कम ३०० र १०० घानिया तैयार करना चाहिए।

प्रशिक्षण छात्रवृत्ति

तेलकारों, बढ़इयों तथा निरीक्षकों को विभिन्न प्रशिक्षण केन्द्रों में, जिन्हें समस्त देश में खादी कमीशन चला रहा है, प्रशिक्षण दिया जाता है।

अन्य विवरण :

खादी तथा ग्रामोद्योग कमीशन का मुख्य कार्यालय बम्बई में है। तमाम किस्म की आर्थिक सहायता पाने के लिए प्रार्थनापत्र खादी कमीशन के मुख्य प्रशासनाधिकारी के नाम भेजने चाहिए। ग्रामीण तेलोद्योग विभाग का मुख्य कार्यालय नयी दिल्ली में स्थित है, जोकि श्री झवेरभाई पटेल द्वारा संचालित होता है। वह इस उद्योग के सदस्य प्रमुख हैं। प्रारम्भ में सभी पत्र व्यवहार तेलोद्योग के संगठक के नाम होना चाहिए। संगठक की सहायता के लिए एक उप-संगठक होता है और ६ सहायक संगठक होते हैं, जोकि विभिन्न क्षेत्रों के अधीक्षक होते हैं। प्रत्येक राज्य का विकास अधिकारी और प्रत्येक जिले के निरीक्षक (इन्सपेक्टर)

भी सगठक को उसके काम में सहायता पहुंचाते हैं। सभी पत्र व्यवहार उचित अधिकारियों के द्वारा ही होना चाहिए।

कार्यक्रम

ग्रामीण तेलोद्योग का सन् १९५८–५९ का कार्यक्रम निम्न प्रकार है :–

१) उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए घानियों को आर्थिक सहायता देकर उनका पजीकरण करना,

२) आर्थिक सहायता तथा प्रबन्धकीय खर्च देने के लिए विक्रेता एजेन्सियों को मान्यता प्रदान करना,

३) तिलहनों का भाण्डारीकरण,

४) तेलकारों को हिस्सा-पूजी देना,

६) उन्नत घानियाँ बनाना,

७) घानी निर्माता केन्द्रों की स्थापना,

८) उन्नत घानियों के लिए ओजारे बनाना,

९) प्रारम्भिक सहकारी समितियों को पजीकृत करना,

१०) जिला सघों का पजीकरण करना,

११) राज्य सघों का पजीकरण करना,

१२) उत्पादन के लक्ष्य,

१३) सगठकों, मिस्त्रियों तथा तेलकारों को प्रशिक्षण देना।

तालिकाएं

तालिका-

सन् १९५३ में भारत और

देश	मूंगफली		कपास बीज		अलसी	
	क्षेत्र	उत्पादन	क्षेत्र	उत्पादन	क्षेत्र	उत्पादन
मेरिका	१,५४१ ९०	७०८ ७०	२४,३३९ ३५	६,०२५ ८८	४,४५५ २१	११६ ३
ारत	११,३५६ ७१	३,७७१ ८०	१७,०२५ ११	१,३७७ ०४	३,३६७ १७	३५५ ३
ीन	—	२,०६७ ०३	१०,१३१ १०	१,५८९ ६४	—	—
ास						
० अफ्रीका	३,०४९ २१	८८० ९४	५१८ ९१	९ ८४	—	—
ाजील	३३३ ५८	१५७ ८८	६,३९२ ४८	६८४ ०९	—	—
र्जेण्टाइना	४४९ ७२	१६७ ३३	१,३६१.५२	२५१ ०१	१,३६३ ९९	४०३ ५६
डोनेशिया	७१४ १२	३३० ७२	७४१	१९८	—	—
न्य	१०,९७१ २४	२५४६ ३८	१८,०५० ५४	३,५४७ ८९	३,५८७ ८९	८०५ ११
ोग (रूस को छोड़कर)	२८,४१६ ४८	१०,६३० ३८	७७ ८३६ ५०	३,८८४ ८९	१२,७७५ ०६	२,४८० ४३

एफ० ए० ओ० प्रकाशन से प्राप्त विवरण (क्षेत्रफल हेक्टर के बदले एकड़ में

– १

क्षेत्रफल एकड़ मे

ससार भर की तिलहन की स्थिति

उत्पादन टन मे

राइ		तिल		खोपरा		योग	
क्षेत्र	उत्पादन	क्षेत्र	उत्पादन	क्षेत्र	उत्पादन	क्षेत्र	उत्पादन
—	—	—	—	–	—	३०,३३६ ४६	७,६५० ९
५३७१ ९५	८२५ ८२	६१३० ५६	५३० ५३	–	२३० ३२	४३२५२ ३८	७०९० ८
—	२,७०६ ८२	—	६५९ ४८	–	—	१०,१३१ १०	७,०२२ ९
—	—	—	—	–	३ १४	३,५६८ १२	८९३ ९
—	—	—	४ ९२	–	—	६,७२६ ०६	८४६ ४
—	—	—	—	–	—	३,१७५ ७३	८२० ९
—	—	—	—	–	७७८ ३८	७२१ ५३	१,०६० ०
१६,३७२ ८५	१,०९३ ५५	६,८४२ ७९	५२७ ७४	–	१,७५४,८१	५५,८३४ ७१	१०,२६५ ०
२१,७४४ ८०	४,६२६ १९	१२९७२ ७५	१,७१२ ६७		२,७१६ ६५	१५३७४५ ५९	३५६५१ २

और उत्पादन मेट्रिक टन के बदले ब्रिटिश टन में दिखाया गया गया है)

तालिका-२

सन् १९००-१ से सन् १९३०-४० तक फसलवार क्षेत्र और औसत उत्पादन (लाख में)

क्षेत्र (एकड़ में)

	१९००-१ से १९०४-५	१९०५-६ से १९०९ १०	१९१०-११ से १९१४-१५	१९१५-१६ से १९१९-२०	१९२०-२१ से १९२४-२१	१९२५-२६ से १९२९-३०	१९३०-३१ से १९३४-३५	१९३५-३६ से १९३९-४०
१	२	३	४	५	६	७	८	९
१ धान	४३४ ५	४८८ ६	६१२ ८	६१० १	६१३ ८	६८२ ६	७०३ ०	७२७ १
२. गेहूं	२५५ २	२६५ ७	३०५ ५	३०५ ०	२९५ ६	३१५ २	३३९ १	३४३ ९
३ कपास	१६५ ०	२११ ३	२२१ ९	२१५ ७	२२० ८	२५८ १	२३२ ६	२४२ ०
४ अलसी	३५ ५	३० ६	३८ १	३१ ६	२२ २	३२ ३	३२ ६	३७ २
५ राई और सरसों	५४ ०	४० ६	४८ २	४१ ७	४० ६	५१ ९	४० ४	५६ ७
६ तिल	४९ ०	५० २	५१ ८	६४ ५	४२ ३	४१ ३	४२ ५	४२ ९

७ अण्डी *	—	—	—	—	१५ ०	१३ ९	१५ ३	१२ ४
८ मूंगफली	०४ ३	०७ २	१४ २	१५ २	२५ २	४६ २	६१ ४	७५ ४
२) उत्पादन								
१ धान (टन)	१८६ ३	१९१ ८	२४७ १	२७७ ७	२६२ ५	२५४ ६	२६७ ०	२५४ ९
२ गेहूं (,,)	७६ ८	८० ९	९६ ६	९२ ९	९०.१	८९ ०	९३ ८	१०१ ४
३ कपास (गांठें)	३१ ८	३९ ६	४३ ३	४३ ६	४८ ३	५४ ७	४६ ९	५५ ५
४ अलसी (टन)	०४ १	०३ ३	०५ १	०४ ३	०४ ४	०३ ७	०४ ०	०४ ४
५ राई और सरसों (टन)	१० १	०९ ९	१० ३	१० ७	११ २	०९ ५	०९ ८	१० ०
६ तिल (,,)	०४ ७	०४ ६	०४ ७	०४ २	०४ ४	०४ २	०४ ४	०४ ३
७ अण्डी (,,) *	—	—	—	—	०१ १	०१ ३	०१ ३	०१ १
८ मूंगफली (,,)	—	०३ १	०५ ९	०७ ७	०९ ५	२० ७	२५ ०	२९ ४

* सन् १९१९–२० तक अप्राप्य

तालिका-
सन् १९५४-५५ में भारत में मुख्य तिलहनों

		मूंगफली		राई और सरसों		तिल	
		क्षेत्र (१००० एकड़ में)	उत्पादन सहित छिलका (१००० टनमें)	क्षेत्र (१००० एकड़ में)	उत्पादन (१००० टन में)	क्षेत्र (१००० एकड़ में)	उत्पादन (१००० टन में)
१	आंध्र	१ ७७९	७०७	१	(ख)	३०४	३८
२	आसाम			२८८	४४	१५	३
३	बिहार			७२१	३६	६६	६
४	बम्बई	२,६००	६४४	७२	१७	३४६	४२
५	मध्य प्रदेश	५००	१३४	१९४	३३	५३९	४०
६	मद्रास	१,६२५	७६४	२	(ख)	४५९	५८
७	उड़ीसा	६१	१७	१२७	२१	२७२	२१
८	पंजाब	९७	३१	४५३	७४	६१	६
९	उत्तर प्रदेश	२६५	१३०	३,४०९	८९६	१,२७६	११६
१०	पश्चिम बंगाल			२०५	३४	११	२
११	हैदराबाद	२,६७७	७२९	६	१	६१४	४०
	जम्मू और काश्मीर			५०	९		
१३	मध्य भारत	३५४	९१	६९	१२	३८७	४८
१४	मैसूर	५३३	१२०	७	१	६९	६
१५	पेप्सू	३२	६	१७६	३२	५	१
१६	राजस्थान	६९	२०	३२१	४६	१,२१०	१०१
१७	सौराष्ट्र	२,०१७	४१२			२७३	११
१८	ट्रावनकोर कोचीन	२४	१३			३	(ख)
१९	अजमेर	(क)	(ख)	(क)	(ख)	२९	२
२०	भोपाल	३	१	२	(ख)	५४	८
२१	दिल्ली			५	(ख)		
२२	हिमाचल प्रदेश	(क)	(ख)	९	१	२	(ख)
२३	कच्छ	१३	४	१	(ख)	२०	१
२४	त्रिपुरा			११	२	९	१
२५	विन्ध्य प्रदेश	१	(ख)	४०	३	४२६	४२
	योग	१२,६४७	३,८२३	५,६६५	९६२	६,४६०	५१७

टिप्पणी (क) ५०० एकड़ से कम
(ख) ५०० टन से कम

३
के अन्तर्गत क्षेत्र और उनका उत्पादन

अल्सी		अण्डी		कुल तिलहन	
क्षेत्र (१००० एकड़ में)	उत्पादन (१००० टन में)	क्षेत्र (१००० एकड़ में)	उत्पादन (१००० टन में)	क्षेत्र (१००० एकड़ में)	उत्पादन (१००० टन में)
१	(ख)	१६६	१४	२,२५१	७५९
२	(ख)	४	१	३०५	४८
२१८	२६	२१	४	५२६	७२
५५	५	१७१	२६	३,२४४	७३४
१,०५७	८३	१९	३	२,३०९	२९३
(क)	(ख)	३६	६	२,१२२	८२८
२६	३	५२	४	५३८	६६
२६	२			६३७	११३
८३७	१४३	८	२	५,७९५	९८७
८०	८			२९६	४४
३२९	२८	६४९	४०	४,२७५	८३८
४२	९			९२	१८
१९७	२५	८	१	२,०१५	१७७
(क)	(ख)	९४	८	७०३	१३५
२	(ख)			२१५	३९
१५८	२८	२	(ख)	१,७६०	१०५
				२७	१३
(क)	(ख)			२९	२
४०	४			१०९	१०
				५	(ख)
२	(ख)			१३	१
		७	१	४१	६
				२०	३
२१८	२४	(क)	(ख)	६८५	६९
३,२९०	३८८	१,२७३	११२	२९,३३५	५,८७७

स्रोत—सन् १९५४-५५ में भारत में मुख्य फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र और उनका उत्पादन भाग १, संक्षिप्त ज्योग तालिका-पृष्ठ ५२ से ६६

प्रति एकड़ औसत उत्पादन (पौण्ड में)										
मूंगफली (छिल्का सहित)	७५६	७८३	७५७	७०९	७७०	६९१	५७९	५४५	७२४	६७७
अण्डी	१९३	१९५	१८७	१७५	१९६	१६३	१६५	१७२	१७१	१९७
तिल	२१२	१९४	१९८	१६०	१९१	१८०	१६८	१७७	१९५	२०५
राई और सरसों	३७२	४११	३९१	३५५	३७२	३२८	३५०	३६३	३४७	३८०
अलसी	२४२	२२५	२४३	२५२	२४५	२३३	२१६	२४४	२४७	२६४

तालिका–५

चन्द राज्यों के तिलहन क्षेत्रों का तुलनात्मक महत्व

	राज्य	कुल कृषि क्षेत्रों में तिलहन क्षेत्र का प्रतिशत				
		मूगफली	तिल	राइ और सरसों	अल्सी	अण्डी
१	बम्बई	२६ २	७ ३	१ ९	२ १	८ ६
२	आंध्र	१८ ९	७ ८	—	—	१३ ०
३	मद्रास	१७ १	८ ४	—	—	२ ७
४	हैदराबाद	१६ ९	१३ ५	—	१६ ०	५१ ३
५	उत्तर प्रदेश	२ ६	४ २	९ ६	५ ६	—
६	मध्य-प्रदेश	६ ५	१० ०	७ ६	३४ ९	२ ०
७	मैसूर	४ ४	१ ०	—	—	७ ६
८	मध्य भारत	२ ३	६ २	३ ०	८ ८	—
९	सौराष्ट्र	२ ६	२ ३	—	—	१ ८
१०	बिहार	—	१ ७	२० ६	१५ ०	२ ०
११	प० बंगाल	—	—	८ ०	१ ५	—
१२	राजस्थान	—	१६ ०	१० ९	५ ८	—

(स्रोत: भारतीय फसल कैलेण्डर)

तालिका–६

सन् १९५२ में संसार के विभिन्न देशों में तिलहन का प्रति एकड़ औसत उत्पादन

	देश	मूंगफली (पौण्ड में)	तिल (पौण्ड में)	अण्डी (पौण्ड में)	राई (पौण्ड में)	अलसी (पौण्ड में)
१	अर्जेण्टाइना	८१६	–	–	–	६५७
२	बर्मा	५४०	९५	–	–	–
३	भारत	७४४	१९४	१७५	३४४	२३६
४	अमेरिका	०३०	–	–	–	४७१
५	फ्रास प० अफ्रिका	६६२	–	–	–	–
६	पाकिस्तान	–	३७५	–	३७४	३६३
७	तुर्कीस्तान	–	५०५	–	–	–
८	ब्राजील	–	–	६४०	–	–
९	फ्रांस	–	–	–	१,०८८	–
१०	जमनी	–	–	–	१,४७७	–
११	जापान	–	–	–	१,०५२	–
१२	कनाडा	–	–	–	–	५७२
१३	युरुगुवे	–	–	–	–	६१७
	ससार का कुल योग (रूस को छोड़कर)	८४५	२९२	३०८	४९२	४४६

स्रोत भारत में तिलहन १९५३–५४ पृष्ठ सख्या ५२,५५ ५८,६१ और ६४ (कृषि एव खाद्य मत्रालय)

तालिका–७

भारत के विभिन्न राज्यों में सन् १९५४–५५ में प्रति एकड़ तिलहन की सामान्य उपज

	राज्य	मूगफली (छिल्के सहित)	तिल (पौंड में)	राई और सरसों (पौंड में)	अलसी (पौंड में)	अण्डी (पौंड में)
१	आंध्र	८९०	२८०	–	–	१८९
२	बम्बई	५५५	२७२	५२९	२०३	३४१
३	मध्य प्रदेश	६००	१६६	३८१	१७६	३५४
४	मद्रास	१,०५३	२८३	–	–	३७३
५	उड़ीसा	६२४	१७३	३७०	२५८	१७२
६	पंजाब	७१६	२२०	३६६	१७२	–
७	उत्तर प्रदेश	१,०९९	२०४	३१२	३८३	५६०
८	हैदराबाद	६१०	१४६	–	१९१	१३८
९	मध्य भारत	५७६	२७८	३८९	२८४	२८०
१०	मैसूर	५०४	१९५	३२०	–	१११
११	पेप्सू	४२०	४४८	४०७	–	–
१२	राजस्थान	६४९	१८७	३२१	३९७	–
१३	सौराष्ट्र	४५८	१०७	–	–	१२४
१४	ट्रावनकोर-कोचीन	१,२१३	–	–	–	–
१५	कच्छ	६८९	–	–	–	–
१६	आसाम	–	४४८	३४७	–	५६०
१७	बिहार	–	२०४	३६५	२६८	४२७
१८	प० बंगाल	–	४०७	३७१	२२४	–
१९	अजमेर	–	१५४	–	–	–
२०	भोपाल	–	१७५	–	२२४	–
२१	त्रिपुरा	–	२४९	४०७	–	–
२२	विंध्य प्रदेश	–	२२१	१६८	२४७	–
२३	जम्मू तथा काश्मीर	–	–	४०३	४८०	–
२४	हिमाचल प्रदेश	–	–	२४९	–	–
	भारत	६७७	२०५	३८०	२६४	१९७

स्रोत भारत की मुख्य उपजों के उत्पादन और क्षेत्र का अनुमान सन् १९५४–५५ भाग–१ संक्षिप्त तालिकाएं, पृष्ठ संख्या १४४, १४६, १४८, १५० और १५२

तालिका–८

भारत के विभिन्न तिलहनों का अनुमानित उपयोग

(सन् १९५३–५४ में समाप्त होनेवाली त्रैवार्षिक अवधि की औसत पर आधारित)

(हजार टनों में)

तिलहन	निर्यात	बीज के लिए	खाने के लिए	तेल निकालने के लिए	योग
१ तिलहन	१८ (० ६)	३२२ (१२ ०)	२८६ (८ ७)	२,५७० (७८ ७)	३,२६६ (१०० ००)
२ तिल	२ (० ४)	११ (२ ३)	९६ (२० ०)	३७० (७७ ३)	४७९ (१०० ००)
३ अण्डी	३* (२ ८)	६ (३ ७)		९७ (९१ ५)	१०६ (१०० ००)
४ राई और सरसों	(अ) (नहीं)	१३ (१ ५)	७६ (८ ८)	७७२ (८९ ७)	८६१ (१०० ००)
५ अलसी	७* (२ ०)	१७ (४ ९)	२७ (७ ९)	२९३ (८५ २)	३४४ (१०० ००)
योग (औसत प्रतिशत)	२९ (० ५६)	४९० (९ ७०)	४७२ (९ ३४)	४,०६५ (८० ४०)	५,०५६ (१०० ००)

स्रोत भारत में तिलहन सन् १९५३–५४, कृषि और खाद्य मन्त्रालय, पृष्ठ संख्या २४, २९, ३४, ३९ और ४४।

टिप्पणी कोष्ठ में दिये गये आंकड़े कुल उत्पादन के प्रतिशत हैं।

* ये आंकड़े समस्त दो वर्षों के हैं, क्योंकि सन् १९५३–५४ में अण्डी तथा अलसी तिलहनों का निर्यात नहीं हुआ था।

तालिका–९

तेल उत्पादन

(हजार टनों में)

तेल	१९५१–५२	१९५२–५३	१९५३–५४	१९५४–
मूंगफली	६६२	६२८	८४७	९३८
अण्डी	३७	३६	३७	३१
तिल	१३५	१४०	१६५	१८४
राई और सरसों	२७५	२४७	२४६	२११
अलसी	८९	१०३	१०३	११४
योग	११९८	१,१५४	१ ३९८	१,५६६

भारत में तिल्हन (१९५३–५४) कृषि एव खाद्य मनालय (२) औद्योगि
विकास का कार्यक्रम सन १०५६–१९६१ (पृष्ठ सख्या ४०६)

तालिका – २७

भारत में खली उत्पादन

(हजार टनों में)

वर्ष	मूंगफली की खली	तिल की खली	अण्डी की खली	अल्सी की खली	राई और सरसों की खली	योग
युद्ध पूर्व का औसत १९३६–३७ से						
१९३८–३९	५५०	१७७	४५	६५	४३१	१,२६९
१९४७–४८	१,१०७	१६३	६६	२३७	४७७	२,०५०
१९४८–४९	९२९	१५६	६४	२०१	४३५	१,७८५
१९४९–५०	१,०५३	२०१	७२	१९६	४६८	१,९९०
१९५०–५१	१,१२३	२०३	१०	२०७	४४३	१,९८६
१९५१–५२	१,०३०	२०६	६२	१८४	५५४	२,०३६
१९५२–५३	९३८	२१३	६०	२०९	४९९	१,९१९
१९५३–५४	१,२७१	२४८	६४	२०७	४९२	२,२८२

टिप्पणी १) लगभग ३०,००० टन महुवा खली का वार्षिक उत्पादन होता है।

२) ऐसा माना जाता है कि मूंगफली की खली का लगभग आधा भाग पशुओं को खिलाने म तथा बाकी का भाग खाद के काम में लाया जाता था, यद्यपि हाल के वर्षों में इसका खाद के रूप में कम उपयोग होने लगा है और इस प्रकार इसका पहला उपयोग ज्यादा होने लगा है।

३) अलसी की खली पशुओं को ही खिलायी जाती है, इसकी खाद नगण्य मात्रा में बनायी जाती है।

४) तिल, राइ और सरसों की खली केवल पशुओं के काम में आती है।

५) अण्डी की खली केवल गन्नों तथा चाय के खेतों में खाद के काम में लायी जाती है।

६) महुवा की खली अखाद्य है, इसलिए इसकी खाद बनानी है। यह अच्छी उर्वरक भी नहीं है, क्योंकि इसमें नाइट्रोजन की कमी और सेपोनिन की मात्रा होने के कारण यह अच्छी उर्वरक भी नहीं है।

स्रोत कृषि एव खाद्य मंत्रालय का अर्थ एव अंक निदेशालय।

तालिका–११

तिलहन का निर्यात

वर्ष	(हजार टनों में) कुल उत्पादन	(हजार टनों में) निर्यात	तीन और दो का प्रतिशत
१९५१–५२	४,९४९	३०	०६१
१९५२–५३	४,६५९	१९	०४१
१९५३–५४	५,५९१	५	००८
१९५४–५५	५,८७७	२३	०३१

स्रोत भारत में तिलहन सन् १९५३–५४ कृषि एवं खाद्य मंत्रालय पृष्ठ संख्या ४ और १० ।

तालिका–१२

तेल उपयोग के प्रकार

(हजार टनों में)

वर्ष	कुल उत्पादन *	औद्योगिक खपत	निर्यात	खाद्योपयोग के लिए प्राप्ति
१९५०–५१	१,१९५	२८८	११३	७९४
१९५१–५२	१,१९८	३२५	६९	८०४
१९५२–५३	१,१५४	३६५	१३४	६५५
१९५३–५४	१,३९८	३३०	२५	१,०४३
१९५४–५५	१,५६६	४८३	१३१	९५२

* इनमें पाच मुख्य तिलहनों—मूगफली, तिल, अलसी, अण्डी, राइ और सरसों का उत्पादन मिला हुआ है।

तालिका-१३

तेलों का अनुमानित उपयोग

सन् १९५३-५४ में समाप्त होनेवाली तीन वर्षों की अवधि में कुल अन्तरिम उपयोगिता का प्रतिशत

तेल	अखाद्य उपयोग के लिए (घरेलू और प्रसाधन)			
मूगफली	३ २	६४ १	३२ ७	—
तिल	१२ ९	७८ २	८ ९	—
अरण्डी	२ ४	—	—	९७ ६
राई और सरसों	० २	९८ ९	—	० ९
अलसी	० ७	३४ ३	—	६५ ०

स्रोत – भारत में तिलहन, सन् १९५३-५४, पृष्ठ संख्या १४

तालिका-१४

बाजारों में माहवार मूंगफली की आवक तथा रेलवे स्टेशनों से उसका लदान, जिसका कि वार्षिक औसत दिया गया है

	माल बाजारों में आया						निम्न स्टेशनों से माल बाहर भेजा गया				
	मद्रास	बम्बई	हैदराबाद	म० प्र०	मद्रास	मद्रास	मैसूर	बम्बई	हैदराबाद	म० प्र०	उ० प्र०
	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
अप्रैल	२९	२३	६१	२३	२०	—	११	६६	५५	३९	३४
मई	२७	२६	५१	२६	६२	—	३७	५५	९०	४६	५५
जून	४७	१८	३२	११	२९	—	२३	४०	५१	५६	२७
जुलाई	७८	०५	१७	०१	६१	—	२६	५८	५९	४४	४८
अगस्त	१०४	१२	१९	०३	८०	५२	२४	८०	४९	३२	१५
सितम्बर	७९	३०	१५	२५	५७	४२२	९०	३२	३९	६५	३,०
अक्तूबर	४७	२२४	२४	३९१	२५	१६२	१६४	५०	५३	१४८	२३
नवम्बर	९५	२४७	१२४	२८२	३४	९३	२८२	९०	९६	३२०	१२३
दिसम्बर	२३६	२०५	२४५	८९	१९८	२३८	१५४	२०९	२१६	१०६	३७४

	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
जनवरी	१३४	१०१	२०९	७५	२४६	१०	१५८	१८८	१७१	९४	११०
फरवरी	६६	५४	११६	४१	१५७	२४	६३	६१	६४	३४	९२
मार्च	५८	५५	८७	२८	६१	०९	४४	७१	६३	१६	५९
योग	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००
कुल माना वर्ष भर का विवरण (हजार टनों में)	३०७	१२	६९१	९३	—	—	—	—	—	—	—

१) निम्न स्थानों में १९४४–४८ में सन् आवक कुड्डुलोर, विल्लुपुरम, तिरुनोलियुप, तिरुविदेम्, उलुन्दुरपेट, त्रिचीछेल्म, पेनरुति और चिन्नसेलम् ।

२) आलमनगर और धुलिया में सन् १९४२–४३ से सन् १९४६–४७ तक का औसत ।

३) लादूर, रायचूर और वारगल में सन् १९४३–४४ से सन् १९४७–४८ तक का औसत ।

४) जामगाव और मल्कापुर म सन् १९४१–४२ से सन् १९४५–४६ तक का औसत ।

५) ४९ स्टेशन उत्तर अर्काट, दक्षिण अर्काट, कोयम्बतूर, सेलम, त्रिचनापल्ली, तंजोर, मदुराइ और रामनाद जिला।

६) पोलाची, ७) देवनगर तथा तुमकुर, ८) मारसी और दोण्डीचा, ९) लातूर तथा खमाम १०) अकोला, नागपुर तथा राण्टवा, ११) बरेली, शाहमतगज तथा माधोगज ।

टिप्पणी –लड़ाई से पहले के आंकड़ों पर आधारित ।

तालिका–१५

मूंगफली का अन्तरप्रदेशीय आयात तथा निर्यात

	औसत १९३३–३४ से १९३७–३८ तक		औसत १९३९–४० से १९४३–४४	
प्रांत/राज्य	आयात	निर्यात	आयात	निर्यात
१	२	३	४	५
आसाम	२३४	१२	२,०४०	४२
बंगाल (संयुक्त)	७ ४५६	८५३	३९,३३६	५,०३८
बिहार और उड़ीसा	१,७०४	५३९	११,४१९	८२२
बम्बई	१,४६,२६९	२,२४२	१,०९,२०८	२,४०५
मध्य भारत	१,००७	१,२५९	१,०१३	१,५६४
मध्य प्र० और बरार	१,५९९	१,७०९	२,७७०	१,१६५
हैदराबाद	११७	१,१७,४१७	८४	१,४३,४११
काश्मीर	५१	१	१२६	१
मद्रास	२९,७४८	४६,०३४	२३,३०४	१,१९,००२
मैसूर	२,४२९	१९,६१३	२,४५१	१५,७१२
पंजाब (संयुक्त)	०,९४२	६५६	२,८३६	२,२०६
राजपुताना	४३१	१,६००	१,००१	८१९
सिंद और ब्रिटिश बलूचिस्तान (पाकिस्तान)	२५	२३३	८९	४१५
संयुक्त प्रान्त	१,६५०	३,१९४	१,५४५	६,९०३
दिल्ली	–	–	१,२७३	१५७
उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त (पाकिस्तान)	–	–	१,१७२	१
योग	१,९५,६६२	१ ९५,६६२	२,९९,६६५	२,९९,६६५

तालिका-१६

सन् १९४८-४९ में हरदा और पिपरिया से बन्दरगाहों को भेजे तिल का औसत मासिक विवरण

महीना						माल भेजा गया	
						मन	प्रतिशत
जनवरी	—	—	—	—	—	९०४	२ ६
फरवरी	—	—	—	—	—	३,२०७	९ २
मार्च	—	—	—	—	—	८,९४४	२५ ६
अप्रैल	—	—	—	—	—	३,०६७	८ ८
मई	—	—	—	—	—	१,३१६	५ ५
जून	—	—	—	—	—	८८७	२ ५
जुलाई	—	—	—	—	—	१५५	० ४
अगस्त	—	—	—	—	—	६,५४१	१८ ७
सितम्बर	—	—	—	—	—	६,४१८	१८ ३
अक्तूबर	—	—	—	—	—	९११	२ ६
नवम्बर	—	—	—	—	—	१,५४७	४ ४
दिसम्बर	—	—	—	—	—	४८२	१ ४
योग						३,४९७९	१०० ०

तालिका – १७

विभिन्न बाजारों में सरसों तथा राई की आवक तथा मुख्य उत्पादक राज्यों से रेल द्वारा उनका लदान—वार्षिक योग के सन्दर्भ में प्रतिशत में प्रकट

महीना	बाजारों में आवक							मुख्य उत्पादक राज्यों से रेल द्वारा लदान औसत सन् १९३६–३७ से ३८–३९			
	संयुक्त प्रदेश (दो बाजार)	बिहार (एक बाजार)	बंगाल (तीन बाजार)	पंजाब		मध्य प्रदेश ३ बाजार	बम्बई (एक बाजार)	संयुक्त प्रदेश	बिहार	बंगाल	पंजाब
				३ बाजार	६ सहकारी आढ़तें						
	(अ)	(आ)	(इ)	(ई)	(उ)	(ऊ)	(ए)				
अप्रैल	२०५	२०६	११८	१४७	१०४	४३८	२०४	१९१	९३	१५६	१६५
मई	१०४	९२	१२९	५५	५०	२५	१९९	११९	८६	८५	९७
जून	८१	६७	४९	१५	२९	०८	६७	८७	८८	५५	८८
जुलाई	६३	४२	४८	०९	२४	०२	०८	६९	८१	९४	५०
अगस्त	८३	९०	४४	०९	०९	०३	१२	७२	६७	६४	३२
सितम्बर	५३	४८	५०	२०	११	—	०८	६१	५४	३१	३०

	(अ)	(आ)	(इ)	(ई)	(उ)	(ऊ)	(ए)				
अक्तूबर	४२	३६	४६	१३	२५	०३	३३	५६	६०	१५	४०
नवम्बर	३७	३१	४९	१२	१०	०६	३३	६८	६४	१४	५५
दिसम्बर	८९	८५	९०	१५	१२	१९	२५	६१	८६	८२	६६
जनवरी	७६	४०	१०५	८३	१६०	४२९	२९	६०	९१	१३८	१३९
फरवरी	५०	१०८	१२५	३२९	३३५	३३१	२५	५८	८४	१८७	१३४
मार्च	११७	१५५	१४७	२९३	२३१	१२७	३५७	९८	१४६	७९	१०४
कुल	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००

अ) रेल द्वारा कानपुर तथा आगरा में आवक।
आ) पटना में रेल से आवक।
इ) गोलुण्डो, जमालगंज में रेल से आवक।
ई) लायलपुर ठकारा तथा सरगोधा।
उ) लायलपुर डिस्ट्रिक्ट।
ऊ) जबलपुर, मण्डला तथा रायपुर।
ए) बेलगाव।

स्रोत – बाजारों का सर्वेक्षण करते समय आवक के संग्रहीत आंकड़े तथा भारतीय व्यापार का (रेल और नदियों के द्वारा ले जाया गया) विवरण।

तालिका–१८

जल — थल द्वारा मूंगफली का आयात–निर्यात
(औसत १९४२–४३ से १९४५–४६)

	निर्यात		आयात	
	रेल तथा नाव जहाज द्वारा	कुल का प्रतिशत	जल–थल द्वारा	कुल का प्रतिशत
	टन	प्रतिशत	टन	प्रतिशत
आसाम	१३	नगण्य	१,०९४	० ९
बंगाल (संयुक्त)	१,४४०	१ २	२७,०७०	२१ ९
बिहार	४५४	० ४	४,३४९	३ ५
उत्तर प्रदेश	१,२३९	१ ०	२१,६२१	१७ ५
उड़ीसा	४२५	० ३	३,०७७	० ३
पंजाब (संयुक्त)	१३०	० १	५,२९६	४ ३
दिल्ली	५९९	० ५	१०,१६६	८ २
उत्तर पश्चिम सीमा प्रांत	नगण्य	—	६६९	० ५
सिंध	६१७	० ५	२६२	० २
मध्य प्रदेश	४,३५५	३ ५	७,७८९	६ ३
बम्बई	१७,७५८	१४ ४	३३,७४९	२७ ३
मद्रास	६०,९६०	४९ ४	१,२९६	१ १
राजपुताना	६९	—	१,०१८	० ८
मध्य भारत	१५२	० १	३,०६६	२ ५
हैदराबाद	३३,७२८	२७ ३	१८१	० २
मैसूर	१,५२८	१ २	२,७९१	२ ३
काश्मीर	—	—	८	नगण्य
कुल	१२,४६७	१०० ०	१,२३,४६७	१०० ०

तालिका-१९

तिल का अन्तर्राज्यीय वार्षिक औसत आयात-निर्यात

राज्य	निर्यात		राज्य	आयात	
	१९३७-३८ से १९३९-४० तक	१९४०-४१ से १९४४-४५ तक		१९३७-३८ से १९३९-४० तक	१९४०-४१ से १९४४-४५ तक
	(हजार मन में)			(हजार मन में)	
आसाम	४७	२७	बंगाल	३८	२२
उड़ीसा	९१	६७	बिहार	५०	३०
उत्तर प्रदेश	४२३	४२४	उत्तर प्रदेश	४३	४५
मध्य प्रदेश	२६७	१९७	पंजाब	७३	८९
बम्बई	११२	१२०	मध्य प्रदेश	६२	४०
मद्रास	२९०	२४९	बम्बई	१११	१६५
मध्य भारत	१८२	८०	मद्रास	४०१	४६९
हैदराबाद	२५०	३६८	राजपूताना	२९०	११३
मैसूर	१२७	१८८	कलकत्ता	३९	१७
अन्य	२७९	४२८	बम्बई बन्दरगाह	२८२	२७६
			कराची	२८	३३
			मद्रास मुख्य बंदरगाह	३७०	३६५
			अन्य	३३१	४०४
कुल	२,०६८	२,१७८	कुल	२,०६८	२,१४८

स्रोत :- अन्तरप्रान्तीय (रेल-नदी द्वारा) भारतीय व्यापार सम्बन्धी विवरण, व्यापार वार्ता तथा सांख्यिकीय महा-निदेशक ।

तालिका-२०

वार्षिक औसत के हिसाब से मूगफली और फरनेल दोनों के औसत मासिक मूल्य में घटबढ़ का प्रतिशत
(औसत सन् १९४२-४३ से १९४६-४७ तक)

माह	बम्बई	धुलिया	कोल्हापुर	मद्रास	चिल्दपह	गुन्तूर	खामगाव	खण्डवा	मल्कापुर	देवनगिरी	रायचूर	लतूर
अप्रैल	−८ २	−४ ६	−६ १	−१ ४	−७ ६	−८ ४	−२ ८	−१ २	−५ ४	−१० ५	−४ १	−७ ६
मई	−० ७	+५ ०	−३ ३	−६ ६	−३ ३	−४ ५	+३ ०	−६ ७	−० १	−६ ३	+२ २	+० ६
जून	+२ २	+१ ७	+२ ५	−४ ६	−३ ५	−२ ०	+४ ७	−२ ७	+१ १	−३ ३	+५ ०	+२ ०
जुलाई	+३ ३	+१० ७	−२ २	+० १	+१ ३	−२ ४	+० ५	+३ ८	+० ३	−० ५	−१ ७	+० ७
अगस्त	+० २	+२ २	−६ १	+२ ४	+५ ८	+१ ८	+५ ०	+७ २	+० १	+३ ४	−३ ३	−१ ६
सितम्बर	−१ ६	−१ ८	−२ ७	+० २	+२ १	−१ १	−२७ ६	+१ २	−१५ ३	−० ७	−४ ३	−० ४
अक्तूबर	−२ ८	−२६ ७	−२ ३	−१ ७	+० ६	−४ ५	−११ ७	−३ ८	−१२ ४	−२ ५	−७ ५	−० १
नवम्बर	−४ ८	−५ १	−११ ५	−४ ३	−१ ४	+१ ५	−२ ०	—	−६ ८	−४ ४	−२ ५	−२ ३
दिसम्बर	−४ ७	−५ १	−२ ६	−२ ३	+६ १	+० ६	+१० ३	+१ ७	+६ ३	−३ ७	−० १	−४ ४
[illegible]	−२ ६	+० ५	+३ ६	+० ७	+१ ४	+० ७	+११ ३	+२ ६	+७ ६	+५ ८	+० ५	−१ ६
[illegible]	+३ २	+४ १	+१३ १	+७ २	−० २	−२ ४	+१० २	+१ २	+८ ४	+८ ३	+७ २	+४ २
मार्च	+१६ ६	+१२ ७	+१७ ८	+१७ ०	+१८ ८	+२१ ५	+१५ २	+४ ६	+१४ ४	+१४ ४	+१० २	+७ ७

तालिका-२१

सन् १९४९ में तिल का भारतीय मुख्य बाजारों में औसत मासिक मूल्य

माह	विजयनगरम्		सेलम		नागपुर		चांदा		कलकत्ता	
	मूल्य प्रति मन	औसत का प्रतिशत	मूल्य प्रति मन	औसत का प्रतिशत	मूल्य प्रति मन	औसत का प्रतिशत	मूल्य प्रति मन	औसत का प्रतिशत	मूल्य प्रति मन	औसत का प्रतिशत
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
	रु० आ०		रु० आ०		रु० आ०		रु० आ०		रु० आ०	
जनवरी	२७ १	९३ ३	२७ १	८७ १	२८ ०	८३ ३	२८ ०	९५ १	२४ २	८० १
फरवरी	२७ १	९२ ३	२८ १३	९२ ८	२९ ५	८७ २	२९ ०	९८ ५	२६ ५	८७ ३
मार्च	२७ १	९२ ३	३३ २	१०६ ६	३० २	८९ २	३० ०	१०१ ९	३२ ०	१०६ २
अप्रैल	—	—	३५ ४	११३ ५	३१ ०	९२ २	३१ ०	१०५ ३	३२ ०	१०६ २
मई	२९ १०	१०१ १	३६ १३	११८ ५	३३ १२	१०० ४	३० ०	१०१ ९	३० १२	१०२ १
जून	३० २	१०२ ८	३७ १०	१२१ १	३४ १४	१०३ ७	३० ०	१०१ ९	३१ १०	१०५ ०
जुलाई	३२ २	१०९ ६	२७ ४	८७ ७	३७ १२	११२ ३	३१ ०	१०५ ३	३२ २	१०६ ६
अगस्त	३१ २	१०६ २	२८ ०	९० १	३७ ८	१११ ५	३१ ०	१०५ ३	३२ ६	१०७ ५
सितम्बर	२९ १०	१०१ १	३१ ४	१०० ६	४० ०	११९ ०	३१ ०	१०५ ३	३२ ६	१०७ ५
अक्तूबर	२९ १०	१०१ १	२९ ४	९४ २	३५ ९	१०५ ७	३१ ०	१०५ ३	२९ ८	९७ ९
नवम्बर	२९ १०	१०१ १	२८ १३	९२ ८	३३ ५	९९ १	२५ ८	८६ ६	२८ ८	९४ ६
दिसम्बर	३० ५	१०० ०	२८ १२	९५ ८	३२ ५	९६ २	२५ ८	८६ ६	२९ १३	९१ ०
औसत	२९ ६	१०० ०	३१ १	१०० ०	३३ १०	१०० ०	२९ ७	१०० ०	३० २	१०० ०

तालिका–२२
भारत में मूंगफली इकट्ठा करने में विभिन्न एजेंसियों का तकरीबन हिस्सा

(बिक्री योग्य फालतू माल की बिक्री का प्रतिशत)

राज्य	उत्पादक	इकट्ठा किया गया ग्रामीण व्यापारी फेरीवाले व्यापारी तथा भू–स्वामी	थोक व्यापारी के एजेन्ट तिलहन कूटक संस्थाएं और तेल मिलें
१	२	३	४
	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत
मद्रास	६०	२०	२०
बंबई	६०	२५	१५
हैदराबाद	३०	६८	२
मध्यप्रदेश	६५	३२	१०
मैसूर	३०	६०	१०
उत्तर प्रदेश	३५	६०	५
अन्य	३५	६०	५
भारत के लिए औसत	५२	३३	१५

तालिका–२३
तिल इकट्ठा करने में विभिन्न एजेंसियों के प्रतिशत हिस्से

राज्य	वे उत्पादक जो अपना उत्पादन स्वयं एकत्र करते हैं	भू–स्वामी तथा किसान, जो दूसरे किसानों का माल खरीदते हैं	फेरीवाले तथा ग्रामीण व्यापारी (तेली तथा बनिये)	थोक व्यापारी
मद्रास	५०	—	३५	१५
हैदराबाद	५९	—	४१	—
बम्बई	५०	१५	३०	५
मध्य प्रदेश	५०	२०	२५	५
उड़ीसा	१०	—	९०	—
मैसूर	१०	—	३०	६०

स्रोत – भारत में तिल तथा रामतिल की बिक्री की रिपोर्ट (१९५२, पन्ना ३९)

तालिका-२४

भारत के उत्पादन क्षेत्रों में विभिन्न एजेंसियों द्वारा तीसी (अलसी) जमा करने के तकरीबन हिस्से

(बिक्री योग्य माल की प्रतिशत के रूप में दर्शित)

	संग्रह किये गये तिलहन का भाग					
	उत्पादक	ग्रामीण व्यापारी	फेरीवाले (खुदरा व्यापारी)	थोक व्यापारी	तेल पेरने वाले	सहकारी समितियां
	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत
बिहार	१०	३२	५५	१	२	—
बम्बई	६०	४०	—	—	—	—
हैदराबाद	७५	२५	—	—	—	—
मध्य भारत	७०	५	१५	५	५	—
मध्य प्रदेश	४०	८	४५	२	५	—
राजस्थान	७०	५	२५	—	—	—
उत्तर प्रदेश	४०	२५	२०	१०	५	—
पश्चिम बंगाल	३५	५	६०	—	—	—
विंध्य प्रदेश	२५	—	७५	—	—	—
अन्य	३०	३०	४०	—	—	—
भारतीय औसत	४७	१८	२७	६	३	—

(स्रोत – भारत में तीसी की बिक्री संबंधी रिपोर्ट—१९५६ पृष्ठ ८१)

तालिका-२५
मूगफलियों की बिक्री करने में हुआ खर्च

	रु०	आ०	पा०
माधोगंज में १८२ मन तथा ३४ सेर समूची मूगफली की कीमत ३ रु० तथा ३ पाई प्रति मन के हिसाब से	५५१	६	०
बाजार से गोदाम तक की गाड़ी द्वारा ढुलाई, जिसमें मूगफलियों का गोदाम में उतरना भी शामिल है, एक रुपया प्रति १०० बोरे के	२	५	०
२३० बोरों का मूल्य २० रु० ८ आने प्रति सैकड़ा बोरों के हिसाब से	४७	२	६
बोरे भरने का खर्च, तोलने तथा बोरों के सीने का खर्च, डेढ़ रुपया प्रति सैकड़ा बोरों के हिसाब से	३	७	९
सुतली का खर्च	०	९	३
गाड़ियों पर बोरों की लदाई का खर्च ८ आने प्रति १०० बोरों के हिसाब से	१	२	६
स्टेशन तक माल ढुलाई का खर्च एक रुपया प्रति सैकड़ा बोरों के हिसाब से	२	५	[illegible]
स्टेशन का खर्च	१	८	[illegible]
	६०९	१४	०
रेल्वे भाड़ा, १८९ मन तथा २० सेर का ८ आने और ५ पाई प्रति मन के हिसाब से	९९	११	०
	७०९	[illegible]	०
पन्ना स्टेशन पर बिल्टी छुड़ाने का खर्च	१	०	०
पन्ना स्टेशन में गाड़ियों पर माल लादने तथा वहां से तेल मिल तक ढुलाई का खर्च ३ पाई प्रति बोरी के हिसाब से	३	९	६
पन्ना में आढ़त का खर्च १ रु० ४ आने प्रतिशत	८	१३	९
धर्मार्थ खर्च एक आना प्रतिशत	[illegible]	[illegible]	०
तेल मिल में तौलाई खर्च १२ आने प्रति १०० बोरी के हिसाब से	१	११	[illegible]
पन्ना में मिल से गोदाम तक का कुल माल मिलाकर लागत	७२५	३	[illegible]

तालिका–२६

मलकापुर के एक मिल द्वारा जबलपुर के एक थोक व्यापारी को भेजी गयी तेल की बिल्टी की कीमत तथा खर्च का विवरण

	रु०	आ०	पा०
मलकापुर का खर्च			
२४० मन ३६ सेर तेल का ५९ रु० ८ आने प्रति मन के हिसाब से बिना भरे तेल का मूल्य	१४,८६९	०	६
खाली टीन ५८८, डेढ़ रुपये प्रति टीन के हिसाब से	८८२	०	०
टीन खरीदने पर दलाली दो पाई प्रति टीन के हिसाब से	६	२	०
खालिया टीनों की ढुलाई	३	२	०
टीनों की रगाई का खर्च डेढ़ आने प्रति टीन के हिसाब से	५५	२	०
मिल में पड़ी तेल की लागत	१५,८१५	६	६
मिल से ढुलाई, ३ रु० ९ आने प्रति १०० टीन के हिसाब से	२१	६	०
मिल से स्टेशन तक तेल की ढुलाई	१८	६	०
स्टेशन पर माल उतारने तथा फिर उसे रेल–डिब्बों में लादने का खर्च	२३	८	०
भूसा तथा अन्य प्रकार की लकड़ियों का खर्च (जिसका उपयोग माल भरने में किया जाता है)	५	०	०
आढ़त तथा दलाली	१२४	६	०
मल्कापुर तक की कुल लागत	१६,००८	०	६
जबलपुर की लागत			
पिछली लागत	१६,००८	०	६
रेलवे भाड़ा	२६६	१२	०
चुगी १० आने ६ पाई प्रति टीन के हिसाब से	३८५	१४	०
बिल्टी खर्च	१	०	०
माल उतारने का खर्च	२	१४	०
गाड़ी में टिनों के लादने का खर्च	९	२	६
स्टेशन से गोदाम तक का गाड़ी–भाड़ा	३६	१२	०
खरीदार की लागत (उसके गोदाम तक)	१६ ७१०	७	०

तालिका-२७

छिलके सहित मूंगफलिया

	लड़ाई से पहले वाले भाव (दर) पर अनुमानित			लड़ाई के पश्चात (१९४७) के भाव (दर) पर अनुमानित		
	उत्पादक धुलिया बाजार तेल मिल, धुलिया	उत्पादक खाम गांव बाजार मिल का एजेंट (खाम गांव) तेल मिल, नागपुर	उत्पादक माधो गंज बाजार थोक व्यापारी, माधो गंज, अढ़तिया, कानपुर तेल-मिल, कानपुर	उत्पादक मैन पुरी बाजार, थोक व्यापारी, मैनपुरी, थोक व्यापारी दिल्ली खुदरा उपभोक्ता दिल्ली	उत्पादक काडो राना, बाजार थोक, व्यापारी, काठेराना बेडी पोर्ट, अढ़तिया कराची, खुदरा उपभोक्ता, कराची	उत्पादक धुलिया बाजार तेल मिल धुलिया
१	२	३	४	५	६	७
	रु आ पा	रु आ पा	रु आ पा	रु आ पा	रु आ पा	रु आ पा
उत्पादक का प्रति मन दाम छिलके सहित मूंगफली का उसके खेत पर	३- ८- ० (२८०)	३- ४-० (६७७)	२-१५-६ (७७४)	३- ३-० (४९४)	२-१२-० (४२८)	१५-१४-११ (९६२)
ग्राम से एकत्र केन्द्र तक (बाजार या मूंगफली का छिलका उतारने वाली फैक्टरी तक)	०- ०- ९	०- ०-९	०- ०-९	०- १-०	०- ०-१	०- ४- ०
एकत्र केन्द्र पर उत्पादक का दाम	३- ८- ९ (८९१)	३- ४-९ (६८७)	३- ०-३ (७८७)	३- ४-० (५०४)	२-१३-० (४३८)	१६- २-११ (९७७)
एकत्र केन्द्र पर विक्रेता द्वारा चुकाया गया	०- ६- २	०- ८-७	०- १-८	०- ५-३	०- २-१०	०- ३- ४

१	२	३	४	५	६	७
खरीदार द्वारा समूह केन्द्र पर चुकाया खर्च	—	०– ०–३	०– ०–१०	—	—	०– ०– २
	०– ६– २	०–८–१०	०– २–६	०– ५–३	०– २–१०	०– ३– ६
समूह केन्द्र पर लागत	३–१४–११ (९८८)	३–१३–७ (८०२)	३– २–९ (८२७)	३– ९–३ (५५५)	२–१५–१० (४६५)	१६– ६– ६ (९९०)
समूह केन्द्र से खरीदार के गोदाम तक ले जाने का खरीदार का खर्च	०– ०– ९	—	०– ०– २	०– ०–६	०– १– ०	०– २– ७
थोक खरीदार अथवा छिलका उतारने वाली फैक्टरी या थोक खरीदार का मुनाफा	—	—	—	०– १–३	—	—
बोरा-बंदी, उठाने का दर तथा ढुलाई खर्च समूह केन्द्र से रेलवे स्टेशन तक	—	०– ५– ०	—	—	—	—
बोरा-बंदी, उठाने का दर तथा ढुलाई खर्च गोदाम से, निर्यातक की एजेंसी या छिलका उतारने वाली फैक्टरी से रेलवे स्टेशन तक	—	—	०– ३–११	०–४–११	१– ०– ०*	—
समूह केन्द्र से रेलवे स्टेशन तक पहुंचने का खर्च	—	४– २– ७ (८६७)	३– ६–१० (९४)	३–१५–११ (६२०)	४– ०–१०× (६३१)	—
रेलवे भाड़ा-एक मन छिलका सहित मूंगफली का रेलवे स्टेशन से मंजिल तक का खर्च	—	०– ७– ९	०– २–२	०– ५– २	०– ३– ०	—
उठाने तथा ढुलाई का खर्च	—	४–१०– १‡	३– ९–०‡	४– ५– १‡	४– ३–१०	—
रेलवे स्टेशन से उपभोक्ता अथवा निर्यातक	•	(०९४)	(०२९)	(६७०)	(६३०)	
या कमीशन एजेंट के गोदाम तक	—	०– २– ९	०– २–६	०– २– १	०– ४– ०	—

मंजिल पर बिक्री के लिए किया गया खर्च	—	—	०–१–१०	—	०–१–०	—
छिलका सहित १ मन मूंगफलियों का दाम उपभोक्ता केंद्र गोदाम या निर्यातक की पोर्ट गोदाम तक	३–१५–८ (१०० ०)	४–१२–१० (१०० ०)	३–१३–४ (१०० ०)	—	—	१६–९–० (१०० ०)
छिलका रहित १ मन मूंगफलियों का दाम, थोक बाजार में या कमीशन एजेंट के गोदाम पर	—	—	—	४–७–२ (६९ ०)	४–८–१० (७० ८)	—
थोक व्यापारी का मुनाफा तथा उठाने, नगर फुटकर व्यापारी की दुकान तक पहुंचाने का खर्चा	—	—	—	०–१२–०	०–१२–०†	—
फुटकर व्यापारी की दुकान का दाम	—	—	—	५–३–२ (८० ६)	५–४–१० (८२ ५)	—
फुटकर विक्रेता का मुनाफा	—	—	—	१–४–०	१–२–०	—
उपभोक्ता का दाम	—	—	—	६–७–२ (१०० ०)	६–६–१० (१०० ०)	—

० उत्पादक ने गाड़ी बन्दर तक का इसमें परिवहन खर्च और बाडी बन्दर पर हुआ खर्च भी शामिल है।

× स्टीमर का भाड़ा जिसमें करांची बन्दर पर हुआ खर्च भी शामिल है।

‡ चुंगी शुल्क भी शामिल है।

† करांची बन्दर का खर्च भी शामिल है।

टिप्पणी—कोष्ठ के आंकड़े उपभोक्ता के दामों का प्रतिशत सूचित करते हैं।

स्रोत—पन्ना २७–२८ भारत में मूंगफली बिक्री की रिपोर्ट से (१९५३)

तालिका–२८

वारंगल में उत्पादक से लेकर मद्रास में तेली तक तिल पहुंचने के खर्च का फैलाव

	विवरण	रु०	आ०	पाई	प्रतिशत
१	उत्पादक द्वारा एक मन तिल का गांव में लिया हुआ मूल्य	१७	१५	९	६८६
	१) संग्रह बाजार तक परिवहन खर्च	०	९	५	
	२) धरने–उठाने का खर्च	०	४	२	४४
	३) बोरे का अनुपातिक मूल्य	०	५	०	
२	संग्रह बाजार में कीमत	१९	२	४	७३०
	१) रिवाजी खर्च	०	१०	७	
	२) अढ़तिया का कमीशन	[illegible]	३	२	५५
	३) उठाने–धरने का खर्च	०	९	३	
३	वारंगल तक पहुंचने का खर्च	२०	९	४	७८५
४	वारंगल से मद्रास तक का रेल भाड़ा	[illegible]	१३	३	३१
५	१) मद्रास में थोक व्यापारी के गोदाम तक उठायी तथा ढलाई खर्च	०	४	२	
	२) थोक व्यापारी द्वारा किया गया खर्च	०	८	४	१२४
	३) थोक व्यापारी का मुनाफा	२	७	६	
६	थोक व्यापारी का बिक्री मूल्य	२४	१०	७	९४०
७	खुदराफरोश का मुनाफा	१	०	०	६०
८	तेली के तेल का मूल्य या उपभोक्ता द्वारा तेल खरीद का मूल्य	२६	३	[illegible]	१०००

तालिका–२९

सागर में तिल उत्पादक से लेकर मिल-तेल उपभोक्ता तक लागत का फैलाव

विवरण	रु०	आ०	पाइ	प्रतिशत
१ एक मन तिल का मूल्य जो उत्पादक को गांव में मिला	२४	०	३	७७ ३
१) संग्रह बाजार तक तिल के परिवहन का खर्च	०	०	८	
२) सागर में संग्रह का खर्च	०	१०	६	२ ८
३) थोक व्यापारी का कमीशन	०	२	७	
२ संग्रह बाजार में थोक व्यापारी का कमीशन	२४	१४	०	८० १
१) मिल–गोदाम तक का परिवहन खर्च	०	१	१०	४ ४
२) मिल में पेराइ का खर्च	१	४	०	
३ पेराई का कुल खर्च	२६	३	१०	८४ ५
४ १६ सेर तेल पेरने का मिल खर्च जो एक मन तिल पेर कर हुआ	२३	३		
१) तेल–पीपों का अनुपातिक मूल्य	१	३	०	
२) पीपों की रगाइ का खर्च	०	२	११	
३) मिल का मुनाफा	०	८	०	
४) परिवहन तथा आकस्मिक खर्च	०	८	२	
५ मिल का १६ सेर तेल बिक्री पर मुनाफा	२५	९	०	८४ ४
खुदराफोस का मुनाफा	१	१०	०	५ २
६ उपभोक्ता की तेल तथा तेल की खली की लागत	२७	३	७	८७ ६
७ मिल की २३ सेर खली की कीमत जो एक मन तिल पेर कर प्राप्त हुई	३	०	८	
१) बोरों का अनुपातिक मूल्य	०	[illegible]	०	
२) मिल का मुनाफा	०	२	८	
मिल का मुनाफा तेल तथा खली या ४ (३) तथा ७ (२)	०	१०	८	
३) परिवहन तथा अन्य आकस्मिक खर्चे	०	१	२	
८ मिल का बिक्री मूल्य २३ सेर खली का	३	९	६	
९ उपभोक्ता का २३ सेर खली का मूल्य	३	१३	६	१२ ४
१० कुल मूल्य तेल तथा खली का जो उपभोक्ता ने खरीदा किया	३१	०	०	१०० ०

तालिका–३०

बिक्री के लिए भरथाना (जिला इटावा उत्तर प्रदेश) के एक थोक व्यापारी द्वारा भेजी गयी लाही का उदाहरण, जो उसने हावड़ा के अढ़तीया को कमीशन पर बेचने के लिए सितम्बर सन् १९४१ में भेजी थी और जो एक तेल मिल को बेची गयी थी

	रु०	आ०	पा०
२२५ मन लाही का मूल्य (१०० बोरे) भरथाना के बाजार में ४ रु० २ आने प्रति मन की दर से	९२८	२	०
१०० बोरे का मूल्य	४३	०	०
२ रु० प्रति सैकड़ा की दलाली	१	२	०
१०० बोरों की भराइ–सिलाइ का खर्च प्रति बोरा २ पाई के हिसाब से	१	२	०
१०० बोरों के लिए ८ आने की सुतली	०	८	०
प्रति बोरी ४½ पाइ स्टेशन तक का परिवहन खर्च	२	५	६
रेल के डिब्बों में भरने का खर्च १½ पाइ प्रति बोरा	०	१२	६
स्टेशन का खर्च १½ पाइ प्रति बोरा	०	१२	६
भरथाना स्टेशन तक की कुल लागत –	८७०	१२	६
रेलवे भाड़ा हावड़ा तक का जिसमें ऊपरी खर्च भी शामिल है	१५३	४	०
कलकत्ता में स्टेशन पर का खर्च	०	१२	०
गोदाम तक माल ढोने (पल्लेदारी) का खर्च	०	१५	०
सफाई–खर्च	०	१	०
आढ़त खर्च सवा रुपया प्रति सैकड़ा	१५	०	०
प्रति मन दो पैसे के हिसाब से दलाली	७	०	०
८ आने १०० मन के हिसाब से तुलाइ	१	२	०
जलपानी का ४ आने प्रति १०० मन के हिसाब से खर्च	०	९	०
मुद्दत एक महीने के लिए ९ आने प्रतिशत के हिसाब से कुल खर्च	६	१२	०
४ आने प्रतिशत के हिसाब से कमीशन खर्च	४	०	०
धर्मादा खर्च सवा आने प्रतिशत के हिसाब से	०	१८	०
सभा का खर्च	०	१	०
चिट्ठी खर्च	०	४	०
रसीदी टिकट खर्च	०	१	०
कलकत्ता में खरीदार द्वारा अदा किया गया परिवहन का खर्च ३ आने प्रति बोरी के हिसाब से	१८	१२	०
कुल लागत	१,१८८	५	०

तालिका–३१

राई और सरसों को उत्पादक के पास से उपभोक्ता / निर्यातक के पास भेजने का कुल खर्च

	उत्पादक–लायलपुर बाजार–अढ़तिया तेल मिल, लायलपुर	उत्पादक ओकारा बाजार थोक व्यापारी ओकारा–अढ़तिया कराची निर्यातक, कराची	उत्पादक भरथाना बाजार थोक व्यापारी भरथाना आढ़तिया–कलकत्ता तेल मिल, कलकत्ता	उत्पादक जबलपुर बाजार थोक व्यापारी जबलपुर, आढ़तिया कलकत्ता तेल मिल, कलकत्ता
१	२	३	४	५
	रु आ पा	रु आ पा	रु आ पा	रु आ पा
उत्पादक का व्यय प्रतिमन मजदूरी (घर पर माल लाने की)	४–४–० (९३ १५)	४–१–६ (७५ ६)	३–१५–० (७४ १)	४–३–६ (७३ ६)
उठाने-धरने और बाजार तक गाड़ी से माल लाने का खर्च	०–२–० (२ ७४)	०–१–६ (१ ७४)	०–१–६ (१ ७७)	०–१–६ (१ ६४)
उत्पादक की बाजार दर	४–६–० (९५ ८९)	४–३–० (७७ ६८)	४–०–६ (७५ ८८)	४–८–० (७५ ४१)
उत्पादक द्वारा बाजार में होनेवाला खर्च	०–२–० (२ ७४)	०–१–३ (१ ४२)	०–१८–० (१ ७७)	०–३–० (३ २८)

तालिका–३०

बिक्री के लिए भरथाना (जिला इटावा उत्तर प्रदेश) के एक थोक व्यापारी द्वारा भेजी गयी लाही का उदाहरण, जो उसने हावड़ा के अढ़तीया को कमीशन पर बेचने के लिए सितम्बर सन् १९४१ में भेजी थी और जो एक तेल मिल को बेची गयी थी

	रु०	आ०	पा०
२२५ मन लाही का मूल्य (१०० बोरे) भरथाना के बाजार में ४ रु० २ आने प्रति मन की दर से	९२८	२	०
१०० बोरे का मूल्य	४३	०	०
२ रु० प्रति सैकड़ा की दलाली	१	२	०
१०० बोरों की भराई–सिलाई का खर्च प्रति बोरा २ पाई के हिसाब से	३	२	०
१०० बोरों के लिए ८ आने की सुतली	०	८	०
प्रति बोरी ४½ पाई स्टेशन तक का परिवहन खर्च	२	५	६
रेल के डिब्बों में भरने का खर्च १½ पाई प्रति बोरा	०	१२	६
स्टेशन का खर्च १½ पाई प्रति बोरा	०	१२	६
भरथाना स्टेशन तक की कुल लागत –	८७९	१२	६
रेलवे भाड़ा हावड़ा तक का जिसमें ऊपरी खर्च भी शामिल है	१५२	४	०
कलकत्ता में स्टेशन पर का खर्च	०	१२	०
गोदाम तक माल ढोने (पल्लेदारी) का खर्च	०	१५	०
सफाई–खर्च	०	१	०
आढ़त खर्च सवा रुपया प्रति सैकड़ा	१५	०	०
प्रति मन दो पैसे के हिसाब से दलाली	७	०	०
८ आने १०० मन के हिसाब से तुलाई	१	२	०
जलपानी का ४ आने प्रति १०० मन के हिसाब से खर्च	०	९	०
सूद्द एक महीने के लिए ९ आने प्रतिशत के हिसाब से कुल खर्च	६	१२	०
४ आने प्रतिशत के हिसाब से कमीशन खर्च	४	०	०
धर्मादा खर्च सवा आने प्रतिशत के हिसाब से	०	८	०
संघ का खर्च	०	१	०
चिट्ठी खर्च	०	४	०
रसीदी टिकट खर्च	०	१	०
कलकत्ता में खरीदार द्वारा अदा किया गया परिवहन का खर्च ३ आने प्रति बोरी के हिसाब से	१८	१२	०
कुल लागत	१,१८८	५	०

तालिका-३१

राई और सरसों को उत्पादक के पास से उपभोक्ता / निर्यातक के पास भेजने का कुल खर्च

	उत्पादक-लायलपुर बाजार-अढ़तिया तेल मिल, लायलपुर	उत्पादक ओकारा बाजार थोक व्यापारी ओकारा-अढ़तिया कराची नियातक, कराची	उत्पादक भरथाना बाजार थोक व्यापारी भरथाना आढ़तिया-कलकत्ता तेल मिल, कलकत्ता	उत्पादक जबलपुर बाजार थोक व्यापारी जबलपुर, आढ़तिया कलकत्ता तेल मिल, कलकत्ता
१	२	३	४	५
	रु आ पा	रु आ पा	रु आ पा	रु आ पा
उत्पादक का व्यय प्रतिमन मजदूरी (घर पर माल लाने की)	४-४-० (९३ १५)	४-१-६ (७५ ६)	३-१५-० (७४ १)	४-३-६ (७३ ६)
उठाने-धरने और बाजार तक गाड़ी से माल लाने का खर्च	०-२-० (२ ७४)	०-१-६ (१ ७४)	०-१-६ (१ ७७)	०-१-६ (१ ६४)
उत्पादक की बाजार दर	४-६-० (९५ ८९)	४-३-० (७७ ६८)	४-०-६ (७५ ८८)	४-५-० (७५ ४१)
उत्पादक द्वारा बाजार में होनेवाला लाभ	०-२-० (२ ७४)	०-१-३ (१ ४५)	०-१-० (१ ७७)	०-३-० (३ २८)

१	२	३	४	५
खरीददारोंवाले द्वारा आढ़त में दिया जानेवाला मार्केट चार्ज	०–०–५ (० ५७)	०–०–४ (० ३९)	—	—
बाजार से गोदाम या रेलवे स्टेशन ले जाने तथा पैकिंग आदी का खर्च	०–०–७ (० ८)	०–१–९ (२ ०३)	०–१–८ (१ ९६)	०–१–६ (१ ६४)
थोक व्यापारी का मुनाफा	—	०–१–६ (१ ७४)	०–२–५ (२ ८४)	०–१–८ (१ ६२)
रेलवे की गोदाम तक माल ले जाने पर मूल्य		४–७–१० (८३ २९)	४–६–१ (८२ ४५)	४–११–२ (८२ १५)
रेलवे भाड़ा प्रतिमन मंजिल तक	—	०–१३–२ (१५ २६)	०–१०–११ (१२ ८४)	०–१२–११ (१४ १२)
स्टेशन से उपभोक्ता / निर्यातक / आढ़तिया के गोदाम तक ले जाने का खर्च	—	०–०–६ (० ५८)	०–१–६ (१ ७७)	०–१–७ (१ ७३)
मंजिल पर दिया जानेवाला खर्च	—	०–०–९ (० ८७)	०–२–६ (२ ९४)	०–१–१० (२ ०)
प्रति मन का भाव जो (उपभोक्ता या निर्यातक तत्काल पहुंचने पर पड़ा)	४–९–० (१००)	५–९–३ (१००)	५–५–० (१००)	५–११–९ (१००)

टिप्पणी –कोष्टकों के आंकड़े प्रतिशत बताते हैं ।

तालिका–३२

लातूर बाजार (हैदराबाद राज्य) के एक थोक व्यापारी द्वारा १०१ बोरा अलसी खरीदने और उसे बम्बई में कमीशन एजेंट के पास भेजने में हुआ खर्च

		रु०	आ०	पा०	रु०	आ०	पा०
१	१०१ बोरे अलसी का दाम – वजन २३९ मन ३५ सेर (७९ पल्ला, ११५ सेर) – लातूर बाजार में ३ मन के प्रति पल्ला ५० रु० की दर से				३,९९७	१४	९
२	बाजार से व्यापारी के गोदाम तक माल ले जाने में होने वाला आकस्मिक खर्च						
	अ) व्यापारी का कमीशन प्रति १०० रु० पर १२ आने की दर से	१९	१५	९			
	आ) गोरक्षण (दान खाते) प्रति पल्ला ३ पाई	१	४	०			
	इ) धर्मादा (दान खाते) प्रति १०० रु० पर एक आना	२	८	०			
	ई) हमाली, प्रति १०० बोरे पर ८ रुपये	८	१	३			
	उ) सुतली और सिलाई, प्रति बोरा पर ६ पाई	३	२	६			
	ऊ) बिक्री कर, प्रति रुपया ३ पाई	६२	७	६			
	ए) हुण्डी–दलाली प्रति १०० रु० पर ३ पाई	०	१०	०			
	ऐ) बाजार से गोदाम तक माल ले जाने का खर्च प्रति १०० बोरा के लिए ८ रुपये	१८	१	३			
					११६	३	६

	रु० आ० पा०	रु० आ० पा०
३ सफाई के बाद गोदाम से रेल्वे स्टेशन ले जाने में होने वाला आकस्मिक खर्च । १०१ बोरे में से सिर्फ १०० बोरे ही प्राप्त हुए — १ बोरा सफाई में चला गया ।		
अ) मिश्रण और सफाई — प्रति १०० बोरे अलसी के लिए १३ रु० ८ आने	१३ ८ ०	
आ) १० नये बोरे के दाम प्रति १०० बोरे के लिए ११ रु० ८ आने	११७ ८ ०	
इ) सुतली और सिलाई प्रति बोरा ६ पाइ की दर से	३ २ ०	
ई) गोदाम से रेल्वे स्टेशन तक का ढुलाई खर्च और मजदूरी प्रति १०० बोरा पर १६—८—० रु०	१६ ८ ०	
उ) वैगन में चढ़ाने का खर्च प्रति १०० बोरे पर ६ रु०	६ ० ०	
ऊ) हुंडीकारी प्रति बोरा ३ पाई की दर से	१ ८ ०	
	१५८ ३ ०	१५८ ३ ०

		रु० आ० पा०	रु० आ० पा०
४	निर्यात चुगी शुल्क प्रति १०० रु० मूल्य पर ५ रु०		२१२ ८ ०
५	७९ पल्ला २० सेर पर प्रति पल्ला रु० २-१४-६ की दर से सरचार्ज		२३० ५ ०
६	लातूर से वाडी बन्दर तक का रेल्वे भाड़ा २३७ मन २० सेर का प्रति मन पर रु० ०-१४-९ की दर से		२२१ ४ ०
७	बम्बई (वाडी बन्दर) पहुचने तक माल की कीमत		४,९३६ ६ ३
८	बम्बई में खर्च		
	अ) माल उतराई तथा कमीशन एजेंट के गोदाम तक की ढुलाई प्रति १०० बोरा पर १० रु०	१० ० ०	
	आ) प्रति १०० रु० पर २ आने प्रति रुपये पीछे दलाली	६ ८ ६	
	इ) प्रति १०० रु० पर १ रु० कमीशन	५२ ४ ०	
	ई) प्रति १०० रु० पर १-९-० रु० बिक्री कर	८१ १० ३	
	उ) एक माह का भण्डार गृह का खर्च प्रति बोरा ४ आने की दर से	२५ ० ०	
	ऊ) अग्नि बीमा प्रति १०० रु० पर ४ आने की दर से	१३ १ ०	
		१८८ ७ ९	१८८ ७ ९
			५,१२४ १४ ०

स्रोत भारत में अल्सी के व्यापार की रिपोर्ट, १९५६, पृष्ठ ९७

तालिका-२३

उत्पादक द्वारा अपने गाव के व्यापारी को बेचा गया और फिर उससे उपभोक्ता को सतना (विन्ध्य प्रदेश) के एक तेल मिल द्वारा खरीदे गये अलसी के मूल्य का फैलाव

	रु०	आ०	पा०	प्रतिशत
१ उत्पादक को अपने ग्रामीण व्यापारी से ९ मन (४ बोरा) तिल्हन के लिए करवास २३ छटाक प्रति रु० की दर से प्राप्त हुआ।	१२८	०	०	८६ ०
२ गाव से रीवा बाजार—९ मील दूर—में तिल्हन लाने का यातायात खर्च	५	०	०	३ ३
३ ग्रामीण व्यापारी द्वारा रीवा बाजार में तिल्हन बेचने पर हुआ खर्च (रु० आ० पा०)				
प्रति घोड़ा बोझ पर ४ आने की दर से नगरपालिका की चुंगी — ० ४ ०				
पल्लेदारी २ छटांक प्रति बोरा — ० ३ १				
करदा ४ छटाक प्रतिमन — १ १४ १				
बेआइ (कमीशन) प्रति १०० रु० पर ७०-८-३ — ० ११ ८				
कुल — २ १ ४	२	१	४	१ ४
४ ग्रामीण व्यापारी की खरीद रीवां बाजार में	१३५	१	४	१००
५ ग्रामीण व्यापारी को ९ मन ३ सेर का मूल्य प्रति रुपया २ सेर ३ छटाक की दर से प्राप्त हुआ (३ सेर वजन तौलने में ज्यादा हुआ)	१४१	१०	७	९५ १
६ १३ प्रतिशत होने से दाम में कमी (रु० आ० पा० — १ १२ ४)				
७ ग्रामीण व्यापारी को प्राप्त खालिस कीमत	१३९	१४	३	९३,७
८ ग्रामीण व्यापारी को बचत	४	१२	११	३ २
९ रीवां के व्यापारी द्वारा किया गया बाजार खर्च				

		रु०	आ०	पा०	रु०	आ०	पा०	प्रतिशत
	आढ़त (कमीशन) १ प्रति	१	६	८				
	धर्मादा प्रति १०० रु० पर ६ पाइ	७	०	८				
	पल्लेदारी एक आना प्रति बोरा	०	४	०	१	११	४	१२
०	रीवा से सतना तक का प्रति बोरा पीछे ६ आने यातायात खर्च	१	८	०				१०
:१	व्यापारी द्वारा दिया गया बाजार खर्च							
		रु०	आ०	पा०				प्रतिशत
	प्रति १०० रु० पर ४ आने कमीशन	०	५	११				
	मुद्दत प्रति १०० रु० २ आने	०	३	०				
	करदा प्रति मन पीछे ४ छटाक	०	१४	९				
	पल्लेदारी प्रति बोरा २ छटांक	०	३	३				
	धर्मादा प्रति बोरा २ छटांक	०	३	३				
	मजदूरिनों को प्रति बोरा पीछे १ छटाक	०	१	८				
	गौशाला को प्रति १०० रु० पर ६ पाई	०	०	९				
	माल उतराई प्रति बोरा रु० ०-१-२	०	५	०				
	कुल	२	५	७	२	६	७	१६
:२	व्यापारी को पड़ा सतना में				१४५	७	२	९७ ७
१३	रीवा व्यापारी की बचत				३	७	७	२ ३
:४	तेल मिल द्वारा दी गयी कीमत २ सेर ७ छटाक के लिए १ रुपया				१४८	१४	९	१९०

तालिका – ३४

अण्डी तिलहन को बम्बई से हल भेजने में निर्यात खर्च तथा बम्बई और हल के मूल्य में विभिन्नता

(प्रति टन)

	लड़ाई के पहले (जून १९३९)		लड़ाई के समय (दिसम्बर १९४३)	
	रु आ पा	रु आ पा	रु आ पा	रु आ पा
१	२	३	४	५
बम्बई की औसत मासिक दर (आधार २ प्रतिशत कूड़ा को लेकर)	—	१२० ० ०	—	२५६ ४ ०
निर्यातक के गोदाम में सफाई और बोरा भराई	१ ८ ०	—	६ ० ०	—
गोदाम से सामान चढ़ाने और वहां से डाक में ले जाने का परिवहन खर्च	० १० ०	—	२ ८ ०	—
डाक में सामान उतराई	० ४ ०	—	० ४ ०	—
डाक में तौल	० ९ ०	—	० ९ ०	—
गोदी (डाक) खर्च	१ २ ०	—	१ २ ०	—
सरचार्ज (डाक चार्ज पर ४२ प्रतिशत)	० ७ ३	—	० १ ३	—
मुक्कदम खर्च	० ५ ०	—	० ५ ३	—
कृषि उपकर	—	—	१ १२ ६	—
जहाज का फगीशन (१ प्रतिशत)	१ ३ ६	—	३ ९ ०	—
बम्बई में हुआ कुल खर्च	५ १० ९	१२५ १० ९	१६ ७ ९	३७२ ६ ९

१	२	३	४	५
	शिलिंग	शिलिंग	शिलिंग	शिलिंग
बम्बई में पड़ी माल की कीमत प्रति टन, शिलिंग में	—	१८८ ९१	—	५५८ ६३
जहाज का भाड़ा	३० ००	—	१४६ ६७	—
जहाजी बीमा (½ प्रतिशत)	० ९४	—	२ ७९	—
देखभाल	० ५०	—	० ५०	—
लड़ाई का जोखम	—	—	३३ ५२	—
कुल भाड़ा और बीमा खर्च	३१ ४४	—	१८३ ४८	—
हल पहुचने पर लागत (२ प्रतिशत कूड़ा कचरा काटकर)	—	२१९ ९५	—	७४२ ११
बिक्री की दलाली (१ प्रतिशत)	—	२ २४	—	७ ५७
हल में लागत+बीमा+भाड़ा=		२२६ ७६	—	७६५ ८२
		या		या
		११–६–९ पौण्ड प्रति टन		३८–४–१० पौण्ड प्रति टन

तालिका–३५
सन् १९५१ में भारत में घानियों की संख्या

राज्य	घानियाँ और उनकी क्षमता		
	५ सेर या उससे ज्यादा	५ सेर से कम	घानियों की कुल संख्या
आंध्र	———मद्रास में संयुक्त———		
आसाम	१०४	७८१	८८५
बिहार	—	—	—
बम्बई	८,३११	३,४७८	११,७८९
मध्य प्रदेश	२,०६९	१०,७९१	१२,८६०
मद्रास (आंध्र को मिलाकर)	१,८३,०१०	४८,४२०	२,३१,४३०
उड़ीसा	—	—	—
पंजाब	२,२४४	४६६	२,७१०
उत्तर प्रदेश	२०,२०८	१,१३,५६६	१,३३,७७४
पश्चिम बंगाल	८,५३४	४,६४४	१३,१७८
हैदराबाद	७,२०९	५	७,२१४
जम्मू तथा काश्मीर	—	—	—
मध्य भारत	२	२	४
मैसूर	१,१३५	२,०३४	३,१६९
पेप्सू	१,५४६	९०९	२,४५५
राजस्थान	४,५१८	८,३५६	१२,८७४
सौराष्ट्र	५४४	२१२	७,६
ट्रावनकोर-कोचीन	—	—	—
अजमेर	—	—	—
भोपाल	—	५५१	५५१
कुर्ग	—	—	—
दिल्ली	९०५	२१	९२६
हिमाचल प्रदेश	१,३३८	७२०	२,०५८
कच्छ	७४	१२३	१९७
मणीपुर	—	—	—
त्रिपुरा	७६	४२७	५०३
विन्ध्य प्रदेश	६०६	८,४९०	९,०९६
योग	२,४२,४३०	२,०४,०६६	४,४६,४३६

स्रोत — पशु-गणना सन् १९५१ (पुनगन अवधि से पूर्व)

तालिका–३६

भारत में घानियों की संख्या

क्र०	राज्य	ग्रामीण १९५६ ५ सेर और ज्यादा	 ५ सेर से कम	शहरी ५ सेर और ज्यादा	 ५ सेर से कम	कुल ५ से और ज्यादा	 ५ सेर से कम	१९५१ कुल ५ सेर और ज्यादा	 ५ सेर से कम
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
१	आंध्र प्रदेश	७,६९३	४,०७४	१,१६०	६३७	८,८५३	४,७११	१,६९,८१८	४०,३००
२	आसाम	—	—	—	—	१०४	७८१	१०४	७८१
३	बिहार	७,५३८	३९,०५९	३३८	४५६	७,८७६	३९,५१५	अप्राप्त	अप्राप्त
४	बम्बई	८,३११	३,५६०	२,६६१	१,०८५	१०,९७२	४,६४५	११,४८४	४,४९५
५	केरल	१,४५४	२,२०४	४०४	१६२	१,८५८	२,३६६	६८६	९३९
६	मध्य प्रदेश[1]	४,५०८	२८,४४५	८५४	१,७६०	५,३६२	३०,२०५	२,१५७	१९,१९९
७	मद्रास	१०,६६५	४,५५६	१,८९१	९६३	१२,५५६	५,५१९	१४,६०९	६,२५७
८	मैसूर	२,७१२	९४३	७६९	२९८	३,४८१	१,२४१	४,९००	२,८६३
९	उड़ीसा	३,०११	५,२६७	१०७	४८	४,०१८	५,३१५	अप्राप्त	अप्राप्त

१०	पजाब	२,५६२	६०७	६६२	१८३	३,२२४	७९०	३,३७९	१,३७५
११	राजस्थान	७,८७६	३,२७४	२,२३९	६५७	१०,११५	३,९२१	४,४९५	८,३०२
१२	उत्तर प्रदेश	१४,१४६	९७,९७७	३,११३	३,२१९	१७,२५९	१,०१,११६	२०,२०८	१,१३,५६६
१३	प० बगाल	७,०५७	७,८२५	२१६	५८	७,२७३	७,८८३	८,५३४	४,६४४
१४	जम्मू और काश्मीर	२,१३०	१,८४४	६२	१०२	२,१९२	२,९४६	अप्राप्त	अप्राप्त
१५	दिल्ली	८	५	४२	५	५०	१०	९०५	२१
१६	त्रिपुरा	९२	७२	—	—	९२	७२	७६	४२७
१७	मणीपुर	अप्राप्त	अप्राप्त	अप्राप्त	अप्राप्त	अप्राप्त	अप्राप्त	अप्राप्त	अप्राप्त
१८	हिमाचल प्रदेश	२६१	५३०	१३	७	२७४	५३७	२७२	५८६
	योग	८०,९२४	२,०१,२४२	१४,५३१	९,५४०	९५,५५९	२,१०,६६३	२,०३,६९५	२,४१,६२७

(स्रोत —पशु गणना १९५६, 'भारत में कृषि अवस्था' में खाद्य और कृषि मंत्रालय द्वारा प्रकाशित)

तालिका-३७

हर राज्य की सुधरी घानियों की संख्या (३१-३-५८ तक)

१	आंध्र	२५३	
२	आसाम	८५	नवम्बर १९५७ तक
३	बंगाल	१५०	नवम्बर १९५७ तक
४	बिहार	९२७	
५	बम्बई	२५८	(सौराष्ट्र शामिल नहीं है)
६	हिमाचल प्रदेश	९	
७	जम्मू और काश्मीर	२२	
८	केरल	७६	
९	मध्य प्रदेश	४००	
१०	मद्रास	३६०	
११	मैसूर	७८	
१२	उड़ीसा	१४०	
१३	पंजाब	२१०	
१४	राजस्थान	२४०	
१५	उत्तर प्रदेश	६२३	
१६	मणीपुर	४७	
१७	त्रिपुरा	१३०	
	योग	४,००८	

तालिका–३८

प्रादेशिक घानियों की कार्य–क्षमता (तिल के बीज)

क्रम संख्या	स्थान	प्रदेश	राज्य	वास्तविक			अंदाजन प्रति दिन ८ घण्टे	
				कार्य घण्टे	प्रतिदिन के घान	तिलहन पेरा गया	घान संख्या	तिलहन पेरा गया (सेर में)
१	२	३	४	५	६	७	८	९
१	पंढरपुर	महाराष्ट्र	— बम्बई	८	४	४६	४	४६
२	भुसावल	खानदेश	,,	१०	३	२६	२	१४
३	साबरमती	गुजरात	,,	८	५	५०	६	६०
४	राजकोट	काठियावाड़	,,	१३	८	५६	५	३'
५	बम्बई	—	,,	८	४	३६	४	३६
६	मादक	—	उड़ीसा	९	३	२१	३	२१
७	बड़ाइगल	—	बंगाल	८	२	२५	२	२५
८	कोमिला	—	,,	१२	४	२५	३	१८
९	आरा	—	बिहार	१२	६	१८	४	१२
१०	चित्तूर	—	आन्ध्र	८	२	५४	२	५४
११	कुडप्पा	—	,,	११	३	४६	२	३०
१२	पीथापुरम्	—	,,	१०	३	१८	२	१२
१३	तिरुनल्लाइ	—	मद्रास	८	६	७६	५	७०
१४	बिजनौर	—	उत्तर प्रदेश	१२	८	१९	३	१६
१५	जालन्धर	—	पंजाब	७	२	२०	२	२०
१६	कालीकट	मलबार	केरल	९	२	३१	२	११

तालिका-३९
घानियों की क्षमता

(तिलहन टनों में)

क्रमांक	राज्य	प्रदेश	वास्तविक काम (प्रतिदिन ७-१३ घंटे तक) (टन में)	प्रतिदिन आठ घंटे
१	२	३	४	५
१	बम्बई	पंढरपुर	५६,३५७	५६,३५७
		भुसावल	२८,७७३	१८,७३६
		साबरमती	३४,२९१	३४,२९१
		राजकोट	४९,९३३	३१,१४६
		बम्बई	७,०६६	७,०६६
२	आंध्र	चित्तूर	४०,२४७	४०,२४७
		कुड्प्पा	३३,१२७	२२,०८४
		पीथापुरम्	७९,७१९	७०,५१३
३	उड़ीसा	भाद्रक	५४,४४३	५४,४४३
४	बंगाल	बडाडंगल	५२,४३०	५२,४३०
		कोमिल्ला	२,२९,३५०	१,६५,१३२
५	बिहार	छपरा	२,३७,१४५	१,४४,६३६
६	मद्रास	तिरुवन्नमलइ	३,७६,५६३	३,७६,५६३
७	उत्तर प्रदेश	बिजनौर	६,२५,६७९	४,९३,५६३
८	पंजाब	जालंधर	२२,३००	२२,३००
९	केरल	कालीकट	३६,३७३	३६,३७३
१०	आसाम	—	६,१५१	४,४२५
११	मध्य प्रदेश	—	१,७९,३६७	१,१८,५५६
१२	मैसूर	—	९८,३७८	९८,३७८
१३	राजस्थान	—	७८,०३३	७८,०३३
१४	हिमाचल प्रदेश	—	४,५०५	४,५०८
१५	त्रिपुरा	—	१,२४०	८२०
१६	जम्मू तथा काश्मीर	—	६१,०१२	६१,०१२
१७	दिल्ली		३३	३३
	योग		२३,८२४१२	१९३१,६३९

तालिका-४०

घानियों और मिलों में पेरे गये तिलहनों का प्रतिशत

क्रमांक	तिलहन का नाम	घानियों द्वारा पेरा गया (प्रतिशत)	मिलों द्वारा पेरा गया (प्रतिशत)
१	२	३	४
१	मूंगफली	२०	८०
२	खोपरा	२०	८०
३	अलसी	३०	७०
४	अण्डी	—	१०० (कुछ अंश घानी में भी पेरा गया)
५	बिनौला	—	१००
६	राई और सरसों	३७	६३
७	तिल	८३	१७

तालिका – ४१
भारत में तेल मिलों की संख्या

	राज्य का नाम	तेल मिलों की संख्या
१	आंध्र	४३८
२	आसाम	७२
३	बिहार	४२६
४	बम्बई	१,२३६
५	मध्य प्रदेश	२९०
६	मद्रास	८५८
७	उड़ीसा	३५
८	पंजाब	१,२०२
९	उत्तर प्रदेश	१,६८३
१०	पश्चिम बंगाल	२५४
११	हैदराबाद	२८०
१२	मध्य भारत	१९९
१३	मैसूर	१६३
१४	पेप्सू	१८०
१५	राजस्थान	३१५
१६	सौराष्ट्र	१५८
१७	ट्रावनकोर–कोचीन	१३८
१८	अजमेर	८
१९	भोपाल	२२
२०	दिल्ली	७३
२१	हिमाचल प्रदेश	४
२२	कच्छ	४
२३	मणीपुर	५
२४	त्रिपुरा	२०
२५	विन्ध्य प्रदेश	४१
	योग	८,२०१

मिल का अर्थ है—कोई भी ऐसा घर, जो पूरा का पूरा या जिसका कुछ हिस्सा, बिजली के जरिये तिलहन पेरने में काम में लाया जाता हो।

स्रोत :– तिलहन जांच समिति की रिपोर्ट सन् १९५१, पृष्ठ ६४

तालिका-४२

देश की शक्ति-चालित तेल मिलों की प्रेरक क्षमता

१	३,४७५ एक्सपेल्रों से २६५ दिनों में प्रतिदिन ८ घटे काम कर, १ घटे में ७ मन की दर से, (३,४७५×१४,८४० मन=६,२६,६९,००० मन)	१८,९४,५११ टन
२	१६,४३२ रोटरी घानियों से २६५ दिनों में प्रतिदिन ८ घटा काम कर १ घटे में ७ मन की दर से =१६,४३२×२६५×२१६ सेर = १६,४३२×५७,२४० सेर=१६,४३२×१,४३१ मन=२३५,१४,१९२ मन	८,६४,४१२ ३ टन
३	१५३ हाइड्रोलिक प्रेस से २६५ दिनों में ८ घटा प्रतिदिन काम कर, घटे में ६ मन की दर से=१५३×२६५×४८ मन २,१५३×१२,७२० मन=१९,४६,१६० मन	७१,५५०० टन
४	४,८८६ अन्य शक्ति-चालित घानियों से २६५ दिनों में प्रतिदिन ८ घटा काम कर, घटे में २७ सेर की दर से ४,८८६×२६५×२१६ सेर=३,८८६×४७,१२० सेर =४,८८६×१,४३१ मन = ६९,९१,८६६ मन	२५७,०५१.१ टन

(१) से (४) तक का जोड़ =३०,८९,०१५ ३ टन,

उपयोग किया गया = २०,७२,००० ०=६७ प्रतिशत

उपयोग नहीं किया गया =१०,१७,०१५ ३ टन=३३ प्रतिशत

स्रोत – तिलहन जांच समिति सन् १९५६ की रिपोर्ट, पृष्ठ संख्या ६०

तालिका–४२

भारत के चन्द राज्यों के तेल तिलों में रोजगारी पाने वाले लोगों की सख्या

राज्य का नाम	रोजगारी पाने वालों की सख्या
१ हैदराबाद	६,६६७
२ विन्ध्य प्रदेश	३७
३ उत्तर प्रदेश	५,०००
४ बम्बई	१०,०००
५ कच्छ	८५
६ मद्रास	३,३६४
७ सौराष्ट्र	३,२५९
८ मध्य भारत	३,९३२
९ पश्चिमी बगाल	३,०००
१० बिहार	४,०३६
११ आन्ध्र प्रदेश	११,३४५
१२ राजस्थान	१,१५०
१३ पजाब	१,८१५
१४ मैसूर	६००
योग	५४,२९०

अन्य राज्यों की जानकारी प्राप्त नहीं है ।

स्रोत तिलहन जाच समिति सन् १९५६ की रिपोट, पृष्ठ सख्या १०

तालिका–४४

घानिया और मिलों की रोजगारी देने की क्षमता

उत्पादन साधन	संख्या	तेलहन पेराइ			रोजगारी (लोगों की संख्या)		
		वर्तमान	सहकारी पाली ८ घंटे	८ से १३ घंटे काम के आधार पर	वर्तमान	एकहरी पाली	दुहरी पाली
१	२	३	४	५	६	७	८
घानियां	३,०७,२२२	१४ लाख	१९०१ लाख	२४० लाख*	५ लाख×	५ लाख@	५ लाख‡
मिलें	८,०११	२०२२	३०८९	५६०५	अप्राप्त	अप्राप्त	अप्राप्त

* अगर ५०,००० सुधरी घानिया और चलने लगें, तो २७ से ३० लाख टन।

× आंशिक रोजगारी पानेवाले लोग भी शामिल हैं।

@ पूरे समय में काम करनेवाले।

‡ तिलहन जांच समिति का अनुमान।

s योजना आयोग का अनुमान।

तालिका-४३

विभिन्न तरीकों से प्राप्त तेल का प्रतिशत

तिलहन का नाम	मिल में प्राप्त तेल का प्रतिशत	घानी से प्राप्त तेल का प्रतिशत	सुधरी वर्धा घानी से प्राप्त तेल का प्रतिशत
१	२	३	४
मूगफली	४० प्रतिशत	३५ प्रतिशत	३५ प्रतिशत
सरसों	३५ प्रतिशत	३० प्रतिशत	३२ प्रतिशत
अलसी	३५ प्रतिशत	३० प्रतिशत	३२ प्रतिशत
तिल	४२ प्रतिशत	३७ प्रतिशत	३९ प्रतिशत
खोपरा	६४ प्रतिशत	५८ प्रतिशत	६० प्रतिशत
अण्डी	४० प्रतिशत	३५ प्रतिशत	३७ प्रतिशत

(स्रोत – कानपुर के हारकोर्ट बटलर टेकनालाजिकल इन्स्टीट्यूट तिलहन जाच समिति की रिपोर्ट में प्रकाशित, सन् १९५६ पृष्ठ १)

तालिका—३६

खली में प्राप्त तेल का प्रतिशत

तिलहन का नाम	खली में * मिल में से	तक	घानियां से	तक	बीज में × मिल में से	तक	घानियों में से	तक
१	२	३	४	५	६	७	८	९
१ मूंगफली	५७	११६	८४	११६	१४	७०	५०	७०
२ तिल	१०७	२०४	१००	१८४	६४	७४	६०	११०
३ अरंडी	६७	७२	७१	१७	४०	४७	४१	५८

* अनन्तपुर के आईल टेक्नालाजिकल इंस्टीट्यूट के रिकार्ड के अनुसार।

× तिलहन के वजन के प्रतिशत के अनुसार।

तालिका-४७

खली में तेल प्रतिशत

प्रेरक इकाई	अलसी की खली	सरसों की खली	तिल की खली
बैल चालित घानी	१४ १५ प्रतिशत	१५ १६ प्रतिशत	१४ १५ प्रतिशत
बैल चालित सुधरी वर्धा घानी	१२ ५८ प्रतिशत	११ २ प्रतिशत	१२ ५४ प्रतिशत
बंगाल किस्म की शक्ति-चालित घानी	११ ० प्रतिशत	१० ५ से ११ प्रतिशत	११ से १२ प्रतिशत
बम्बई किस्म की शक्ति-चालित घानी	११ ०० प्रतिशत	१० ५ प्रतिशत	११ प्रतिशत
एक्सपेलर	७ से ७ ५ प्रतिशत	८ प्रतिशत	९ प्रतिशत
हाइड्रोलिक प्रेस	८ ९ प्रतिशत	८ प्रतिशत	८ प्रतिशत

स्रोत –तिलहन जांच समिति सन् १९५६ की रिपोर्ट में हारकोर्ट बटलर टेक्नालाजिकल इंस्टीट्यूट, कानपुर द्वारा बताये गये अनुसार, पृष्ठ २ ।

तालिका-५६

खली में प्राप्त तेल का प्रतिशत

तिलहन का नाम	खली में ● मिल में से	तक	घानियों से	तक	बीज में × मिल में से	तक	घानियों में से	तक
१	२	३	४	५	६	७	८	९
१ मूंगफली	५७	११६	८४	११६	३४	७०	५०	५०
२ तिल	१०७	२०४	१०.०	१८४	६४	७.४	६०	११०
३ अण्डी	६७	७२	७१	१७	४.०	४७	४१	५८

● अनन्तपुर के आईल टेकनालाजिकल इन्स्टीट्यूट के रिकार्ड के अनुसार।

× तिलहन के वजन के प्रतिशत के अनुसार।

तालिका-४७

खली में तेल प्रतिशत

पेरक इकाई	अलसी की खली	सरसों की खली	तिल की खली
बैल चालित घानी	१४ १५ प्रतिशत	१५ १६ प्रतिशत	१४ १५ प्रतिशत
बैल चालित सुधरी वर्धा घानी	१२ ५८ प्रतिशत	११ २ प्रतिशत	१२ ५४ प्रतिशत
बंगाल किस्म की शक्ति-चालित घानी	११ ० प्रतिशत	१० ५ से ११ प्रतिशत	११ से १२ प्रतिशत
बम्बई किस्म की शक्ति-चालित घानी	११ ०० प्रतिशत	१० ५ प्रतिशत	११ प्रतिशत
एक्सपेलर	७ से ७ ५ प्रतिशत	८ प्रतिशत	९ प्रतिशत
हाइड्रोलिक प्रेस	८ ९ प्रतिशत	८ प्रतिशत	८ प्रतिशत

स्रोत -निलहन जाच समिति सन् १९५६ की रिपोर्ट में हारकोर्ट बटलर टेक्नालाजिकल इन्स्टीट्यूट, कानपुर द्वारा बताये गये अनुसार, पृष्ठ २।

तालिका–४८

घानी और मिल में पेरे गये अपरिष्कृत तेल के बिना इस्तेमाल किये जाने की क्षमता

(टीन में ३७ सेण्टीग्रेट पर रखा गया)

तेल का नाम	नमी का प्रतिशत	*प्रारंभिक रंग लोवी बॉड यूनिट पीला	लाल	×शुरू में विटामिन 'इ' की प्राप्ति १०० ग्रामों में	शुरू में प्राप्य मुक्त स्नेहाम्ल (ओलिक एसिड के रूप में)	भाण्डारित रखने की अवधि में पेरोक्साइड चढ़ने की गति महीना १,	२,	३,
१	२	३	४	५	६	७	८	९
घानी तेल	०·२५	२६	०·३	३२५	१·५	२८	४१	६२
मिल तेल	०·१८	२२	०·२	२९२	१·५	३४	५१	७६

* लोवीबोनी टिन्टोमीटर में १ सेंटीमीटर सेल का व्यवहार कर प्राप्त किया गया परिणाम।

× इमुमेरिक और इंगल तरीके से निश्चित किया गया।

(निवारग-ग्राओ फिम (१९४८), ५७, १९५१

प्रति किलोग्राम चिकनाई पर मिलीनीत

परिशिष्ट

परिशिष्ट—१

प्रस्तावना

उद्योगवाद का अर्थशास्त्र, अपनी प्रणाली के संबंध में विज्ञान का सहारा लेते हुए भी, अपने अस्तित्व के लिए अधिकांशत प्रचार पर निर्भर रहता है, क्योंकि यह सभी के हित पर नहीं, बल्कि केवल पूंजीपतियों के हित पर आधारित रहता है। साधारण मनुष्य को यह विश्वास दिलाने के लिए कि यह उसके हित के लिए भी है, यह उन सभी प्रकार की सच्ची-झूठी बातों का प्रयोग करता है, जिन्हें अर्थशास्त्र जैसे शानदार शब्द की सज्ञा दी जाती है। जब विद्यार्थी छोटी आयु के होते हैं, तभी उनके भोले-भाले और कोमल मस्तिष्क में इस प्रकार का प्रचार भर दिया जाता है और इसीलिए यह अक्सर वेद-वाक्य मान लिया जाता है और जब वे परिपक्वावस्था के होते हैं, तब कच्ची आयु म भरी गयी उन गलत धारणाओं से उन्हें मुक्त करना असभव हो जाता है।

लोग हमसे कहते हैं कि यह यत्र युग है और सिर्फ मशीनें ही इस भारी परिमाण में माल तैयार कर सकती हैं कि जीवन जीने के योग्य हो सकता है। सिर्फ मशीनें ही उत्कृष्ट कोटि का उच्चस्तरीय उत्पादन करने की क्षमता रखती हैं, मशीनी उत्पादन में दक्षता एक विशेष गुण है आदि। वस्तुत वे मशीनों, सभ्यता और प्रगति, इन तीनों को एक जैसा ही समझते हैं। कम से कम पाश्चात्य देशों में लोगों के छोटे वर्ग औद्योगिकों ने इस प्रकार का लाभ उठाया है और अपने लिए अच्छा मुनाफा हासिल किया है। लेकिन भारत में इस प्रकार के सिद्धान्तों ने केवल एक हीनता की भावना लोगों में पैदा की है और हमारे देश को विदेशी माल के लिए एक सुरक्षित बाजार बना दिया है, जिससे यहां बेकारी, गरीबी और मुसीबत आ गयी है।

अखिल भारत ग्रामोद्योग सघ ने, जिसे कि मानवीय प्रतिमा

टिप्पणी यह प्रस्तावना, अखिल भारत ग्रामोद्योग सघ के तात्कालिक सचिव श्री जे० सी० कुमारप्पा द्वारा, श्री झवेरभाई पटेल द्वारा लिखित तेल घेरोई शीर्षक पुस्तक के लिए लिखी गयी थी।

और उसकी इस क्षमता में अटूट विश्वास है कि वह जनता की सारी आवश्यकताओं को सफलता पूर्वक और संतोषजनक रूप से पूरा कर सकती है, सत्य और अहिंसा के मार्ग में अपना विश्वास सिद्ध करने के लिए लोगों की पूर्वाभासित धारणाओं से संघर्ष किया है और वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति के संबन्ध में कुटीर उद्योगों की तथाकथित अयोग्यता और अनुपयुक्तता को गलत साबित किया है। कुटीर उद्योगों के विरुद्ध, जो तमाम गलत प्रचार किया गया है, उसका ऐसा जवाब इस पुस्तिका से मिलेगा, जो प्रयोग और अनुसंधान पर आधारित है। हम मानते हैं कि हमारा प्रयास क्षीण हो रहा है, हमारे साधन अल्प और हमारे उपकरण साधारण रहे हैं। फिर भी मुश्किल से ७ वर्ष के अल्प काल में कुछ उद्योगों से परदा हटाना और उन्हें बहु-प्रचारित दीर्घ-स्तरीय उद्योगों के मुकाबले निस्संकोच खड़ा करना संभव हो गया है। ग्राम और ग्रामीण उद्योगों का यह जो ह्रास होता आया है, वह इस कारण नहीं कि उनमें कोई दोष निहित है बल्कि समुचित अनुसंधान, मार्गदर्शन और संगठन के अभाव से ऐसा हुआ है। इस पुस्तक में श्री झवेरभाई पटेल इस धारणा के पक्ष में तर्क प्रस्तुत करते हैं, जो एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रामोद्योग-तेल पेराई के निरीक्षण पर आधारित है। हमें आशा है कि उनके संतोषप्रद प्रयोग अन्य उद्योगी और उत्साही युवकों को भी इस आकर्षक क्षेत्र में आने तथा मार्गदर्शन की ओर से उपर करने के लिए प्रेरित करेंगे। फिर से विश्वास जमाने के लिए बहुत काम करना होगा और लोगों को निस्संकोच इन उद्योगों को अपनाने के लिए खींच कर लाना होगा।

राजनैतिक क्षेत्र में हर व्यक्ति जनतंत्र की स्थापना के लिए प्रयत्नशील है, फिर भी वे यह नहीं देखते कि जब तक जनता का दैनिक जीवन जनतंत्र पर कायम न होगा, तब तक इस तरह का वैधानिक जामा पहन लेने मात्र से हमें वास्तविक सफलता नहीं मिलेगी। ग्रामोद्योग कार्यक्रम से ही वह आर्थिक जनतंत्र कायम हो सकता है, प्रशासन जो जनता का जनता के द्वारा और जनता के लिए होगा। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए हमें, निरंतर अनुसंधान और प्रयोग के द्वारा असत्य मतों और गलत प्रचार से उत्पन्न हुई गलती को दूर करना होगा। विश्वास है कि यह पुस्तक ऐसे ठोस कार्य को सहायता देगी, जिसमें कोरे भ्रम, अधविश्वास और निर्मूल धारणाओं के लिए कोई स्थान नहीं है।

— जे० सी० कुमारप्पा

मगनवाड़ी,
वर्धा,
१५ नवम्बर, ४३

परिशिष्ट—२

गांधीजी की समीक्षा*

एक समय था, जब ग्रामीण घानी, ग्रामीण चक्की, गाव का करघा और देहाती गन्ना पेरक, गाव के अविभाज्य अग थे। अखिल भारत चरखा सघ, और अखिल भारत ग्रामोद्योग सघ उनमें से कुछ को पुनर्जीवित करने का प्रयात्न कर रहे हैं। हम भलीभांति जानते हैं कि चरखा और करघा पुनर्जीवित किये जा सकते हैं। खादी वह विज्ञान बन गयी है, जिसके सभी पहलुओं के अध्ययन की आवश्यकता है। मगनलाल गाधी ने इस विज्ञान की नींव डाली है। ग्रामीण चक्की और ग्रामीण गन्ना पेरक को अभी अपने विज्ञान वेत्ता खोजना है। लेकिन घानी ने यह कर लिया है। मगनवाड़ी के श्री झवेरभाइ पटेल एक वैज्ञानिक उत्साह और निश्चिन्तता के सभी पहलुओं की दृष्टि से घानी का अध्ययन कर रहे हैं। उन्होंने ऐसे सुधार किये हैं, जिनसे उनका दावा है कि घानी पर काम करने वाले व्यक्तियों और पशुओं की मेहनत में बचत होती है और साथ ही उत्पादन का परिमाण भी बढ़ गया है। उन्होंने तेल बाजार और तिलहनों के स्थानान्तरण का अध्ययन किया है। फल यह हुआ है कि आज वे अपना तेल प्राय बाजार भाव पर बेच लेते हैं और इसी लिए उनके लिए हाट–व्यवस्था तत्काल प्रस्तुत रहती है। उनका तेल मशीन तेल की अपेक्षा उत्कृष्ट होता है, क्योंकि मशीन का तेल निश्चित रूप में मिलावटी होता है और ताजा भी नहीं होता है। लेकिन श्री झवेरभाइ पटेल को सिर्फ इतने से सतोष नहीं है कि वे वर्धा के स्थानीय बाजार मे सफलतापूर्वक स्पर्धा कर सकते हैं।

उन्होंने मालूम कर लिया है कि मशीनों द्वारा पेरा गया तेल, घानी तेल की

---

* २ सितबर सन१९३९ के 'हरिजन' में प्रकाशित महात्मा गांधी का 'मशीन का तेल और घानी' शीर्षक लेख, जिसे यहां उधृत किया जा रहा है, वस्तुत गाधीजी द्वारा ही लिखित तेल पेराई शीर्षक एक पुस्तिका की समीक्षा है, जिसे अखिल भारत ग्रामोद्योग सघ ने प्रस्तुत किया था।

अपेक्षा सस्ता होता है, तो क्यों होता है। इसका कारण है–पूंजी का बल और मशीनें की यह क्षमता कि वह अपेक्षतया कम समय में तेल की आखिरी बूंद तक तिलहन से निचोड़ लेती है। लेकिन इन सुविधाओं का लाभ यूं जाता रहता है कि मिल मालिक को कुछ कमीशन बिचवानियों को देना पड़ता है। लेकिन श्री झवेरभाई तीसरे कारण (मिलावट) से पार नहीं पा सकते, जब तक वे खुद भी वैसा ही न करें, किन्तु व तो स्वभावतः वैसा करने से रहे। इसीलिए वे सुझाव देते हैं कि कानून को मिलावट की समस्या से निपटना चाहिए। इसके लिए मिलावट–विरोधी कानून का पालन कराया जाना चाहिए और यदि ऐसा कानून नहीं है, तो वह बनाया जाना चाहिए और तेल–मिलों के लिए लाइसेंस जरूरी होना चाहिए।

श्री झवेरभाई ने ग्रामीण घानी के पतन के कारणों का भी निरीक्षण किया है। सबसे जोरदार कारण यह है कि तेली नियमित रूप से तिलहन प्राप्त करने में असमर्थ रहता है। मौसम निकल जाने के बाद गांव में तिलहन वस्तुतः बिल्कुल नहीं रह जाते। तेली के पास तिलहन का संचय करने के लिए पैसा नहीं रहता और शहर के बाजार से खरीदना तो उसके लिए और भी असाध्य होता है। इसीलिए तेली का धंधा ही लुप्त हो गया है अथवा शीघ्रता से लुप्त हो रहा है। आज लाखों घानियां बेकार पड़ी हैं, जिससे देश के स्रोतों की भारी बर्बादी हो रही है। निश्चय ही यह सरकार का कर्तव्य है कि वह मौजूदा घानियों को पुनर्स्थापित करे और इसके लिए उन तिलहनों को, जहां वे पैदा हों, वहीं जमा करना होगा और उसे उचित मूल्य पर तेलियों के लिए उपलब्ध करना होगा। ऐसी सहायता देने में सरकार को कोई घाटा नहीं होगा। जैसा कि श्री झवेरभाई का कहना है यह सहायता सहकारी समितियों द्वारा दी जा सकती है। श्री झवेरभाई का मत है और यह अनुसंधान पर आधारित है कि यदि ऐसा किया गया, तो घानी तेल, मशीन–तेल से सफल प्रतिद्वंद्विता कर सकता है और ग्रामीण को उस मिलावटी तेल इस्तेमाल करने की मजबूरी से बचाया जा सकता है, जो उसे आज मिल रहा है। यह बात भी ध्यान में रखने की है कि ग्रामीण को जो कुछ भी चिकनाई प्राप्त होती है, वह तेल से ही मिलती है। मैं आप उसके लिए शुद्ध पदार्थ है।